र्गकी सीढ़ी ।

महावीरप्रसाद गहमरी ।

स्वर्गमालाकी आठवीं पुस्तक ।

स्वर्गकी सीढ़ी ।

(पहला खंड)

अनुवादक और प्रकाशक

महावीरप्रसाद गहमरी

"शुभेच्छा रखना, अच्छा बर्ताव करना, ऊँचे उद्देशसे काम करना और अपने भाइयोंकी तथा देशकी सेवामें लगे रहना स्वर्गकी सीढ़ीकी सबसे सुगम पहली और अन्तिम पैड़ी है"

(प्राचीन ऋषियोंके सिद्धान्त)

स्वर्गमाला कार्यालय,
काशी ।

Printed by G. K. Gurjar, at Shri Lakshmi Narayan
Press Jatanbar, Benares City

पहली बार] संवत् १९७९ [मूल्य [illegible]

अनुवादकका निवेदन ।

पण्डित अमृतलाल सुन्दरजी पढ़ियारकी आठवीं पुस्तक-का हिन्दी अनुवाद आज मैं पाठकोंके सामने रखता हूं। यह स्वर्गकी सीढ़ी उनकी गुजराती पुस्तक "स्वर्गनी सीडी" से लिखा गया है। मैंने संवत् १९७२ में अनुवाद किया। ६ वर्ष लिखी पड़ी रहनेके बाद आज उसके प्रकाशनका अवसर आया है। मनुष्यके सद्गुण बढ़ानेकी ही शुभ इच्छा रखनेवाले, सबका शुभ मनानेवाले, शुभ इच्छामें ही जीवनकी सार्थकता समझानेवाले और लोगोंमें शुभ इच्छाकी प्रेरणा करनेके लिये ही लेखनी धारण करनेवाले पूज्य पढ़ियार जी स्वर्गकी सीढ़ीके पाँच सात खण्ड लिखनेवाले थे परन्तु वह केवल यही एक खण्ड लिख सके। अब वह इस संसारमें नहीं हैं किन्तु जितना लिख गये हैं वह भी कम नहीं है। शुभेच्छा रखने। अच्छा बर्ताव करने, ऊँचे उद्देशसे काम करने और देश सेवामें लगे रहनेकी इतनी बातें इसमें हैं कि उन पर अमल किया जाय तो भी अपार लाभ हो। इसके सिवा वह स्वर्गके विमान, कुंजी, खजाना, रत्न, सड़क, सुन्दरियां, आनन्द आदि अपनी 'स्वर्ग' ग्रंथावलीमें सद्गुण बढ़ानेके उपाय भिन्न भिन्न रूपोंमें मन लुभानेवाली रीतिसे बता गये हैं। आवश्यकता उन पर चलनेकी है। भगवान हम लोगोंको सद्बुद्धि दें कि जिससे ये सब बातें मौखिक ही न बनी रहें बल्कि आचरणमें प्रत्यक्ष दिखाई पड़ें और देशकी काया पलट जाय।

काशी।
बैशाख सुदी ११—१९७८

महावीरप्रसाद गहमरी।

स्वर्गकी सीढ़ीकी उत्पत्ति कैसे हुई ?

ज्यों ज्यों मेरा श्रीमद्भगवद्गीताका अध्ययन बढ़ता गया त्यों त्यों उसका रहस्य अधिकतासे मेरी समझमें आने लगा। इसके बाद मैं किसी किसी हितमित्रको प्रसङ्ग वश यह रहस्य समझाने लगा। फिर मकानके सामने संध्याको बैठ कर हर रोज एक घंटे गीताकी कथा बांचने लगा और इसके बाद गँवार लोगोंके भी समझने योग्य गीताकी सरल टीका लिखने लगा। गीताका अलौकिक तथा अद्भुत रहस्य देख कर मेरे जीमें यह विचार उठने लगा कि यह ऊँचेसे ऊँचे दर्जेकी लम्बी चौड़ी फलद्रुम भूमि जितनी ही अधिक जोती जाय उतना ही अच्छा; इस महासागरमें रत्न लेनेके लिये जितने अधिक गोते लगाये जायँ उतना ही अच्छा; इस विशाल आकाशमें गुबारा जितना ही ऊँचे जाय उतना ही अच्छा; इसके अमूल्य रत्नों पर जितनी ही पालिश चढ़े उतना ही अच्छा; यह ईश्वरी ज्ञानकी अग्नि जितनी ही अधिक प्रगट हो उतना ही अच्छा, इसमें कहा हुआ अभेदका महामंत्र जितना अधिक फैले उतना ही अच्छा; इसमें कहे हुए कर्त्तव्यका शौक जितना ही बढ़े उतना ही अच्छा; इसके 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' वाले ईश्वरी स्नेहकी बिजली, हम लोगोंके अन्तः करण-की बैटरीमें जितनी ही भरी जाय उतनाही अच्छा; इसकी आत्माका असली स्वरूप बतानेवाली तत्त्व ज्ञान रूपी दूरबीन का हमें जितना ही अधिक उपयोग करना आवे उतना ही अच्छा; मायाके मोहको उड़ा देनेके लिये इसमें मौजूद कर्तव्य-

की गोली बारूद हमारी जिन्दगीकी तोपमें जितनी ही भरी जाय उतना ही अच्छा; इसमें मौजूद स्वार्थत्याग सिखानेवाली, मनुष्यको देवता बनानेवाली, निष्काम कर्मकी कीमिया जितनी ही अधिक सीखी जाय उतना ही अच्छा; इसमें मौजूद जगतका असली स्वरूप दिखानेवाला बायस्कोप जितना ही विशेषतासे देखा जाय उतना ही अच्छा और जिन कृष्णके जन्मसे कंसके कठिन कैदखानेके किवाड वसुदेवके लिये आपसे आप खुल गये उन्हीं श्रीकृष्णका दिया हुआ गीताका ज्ञान हृदयमें जन्मनेसे—उपजनेसे मायाके कैदखानेके मल, विक्षेप और आवरण रूपी किवाड़ खुल जायँ और जीवात्माको उसकी पहलेकी स्वतन्त्रता फिरसे सदाके लिये मिल जाय तथा गीतामें मौजूद ईश्वरको प्रत्यक्ष करानेवाली और ईश्वरको हृदयमें ला देनेवाली तथा अन्तको ईश्वर रूप बना देनेवाली सात कोठरियोंके भीतर छिपाकर रखी हुई नाजुक सहज सुनहरी कुंजी हम लोगोंको मिल जाय तो अच्छा। इस प्रकारके विचारसे यह सोच कर विस्तार पूर्वक गीताका रहस्य लिखनेकी मुझे आपसे आप इच्छा हुई कि ये सब विषय सब लोगोंसे उनके अधिकारके अनुसार थोडी बहुत मात्रामें हो सकते हैं। इसी इच्छासे इस स्वर्गकी सीढ़ीकी उत्पत्ति हुई है।

इस पुस्तकमें धर्मका असली स्वरूप, ईश्वरके प्रति अपना कर्त्तव्य, जगतके जीवोंके प्रति अपना फर्ज, मनको जीतनेकी युक्तियाँ, इस संसारमें सफलता पानेके उपाय, आत्मिक बल विकसितकर आत्माका स्वराज्य स्थापन करनेके उपाय, भविष्य पीढ़ीके कल्याणके मार्ग, देशकी उन्नतिके उपाय, निर्भयता पानेकी युक्तियाँ और अपने गरीब भाई बहनोंकी सेवा

करनेका महामंत्र तथा अन्तमें ईश्वरका साक्षात्कार कर पानेके सहजसे सहज उपाय इत्यादि विषय बहुत साथ गीतासे ही—गीताके प्रमाणोंसे ही सिद्ध किये हैं।"

इस प्रकार धर्मके सब अङ्ग गीतासे ही लेनेकी और उनको स्पष्ट रीतिसे विस्तारपूर्वक समझानेकी मेरी इच्छा है। यह सब थोडेमें नहीं हो सकता। इससे धर्मके जुदे जुदे अंगोंका खुलासा करनेके लिये एक सौ आठ पैडियोंकी "स्वर्गकी सीढी" लिखनेका विचार हुआ। इसलिये गीताके तत्त्व समझाने-वाले इसके जो पाँच सात खंड होंगे उनमें बारह पैड़ियोंका यह पहला खड है। अगर इस प्रकार गीताके तत्त्व समझानेके फैशनकी पुस्तकें लोगोंको रुचेंगी तो इसके गहरे रहस्यवाले दूसरे भागोंको लिखनेमें मुझे बडा आनन्द होगा।

अन्तमें यही कहना है कि लोग ज्यों ज्यों गीताका रहस्य समझेंगे और ज्यों ज्यों भगवानके वचनोंको अपने जीवनमें उतारेंगे त्यों त्यों हमारे देशका और हमारी आत्माका कल्याण होता जायगा। इसलिये भाइयो और बहनो! मेरी यही विनती है कि जैसे बने वैसे गीताकी खूबी समझने और उसके अनु-सार चलनेके लिये परिश्रम कीजिये। तब सर्वशक्तिमान महान परमात्मा आपके शुभ उद्देशोंमें आपको अवश्य सहा-यता देंगे। पहले भगवानके वचनोंकी महिमा बतानेवाली ऐसी पुस्तकें पढनेकी कृपा कीजिये। कृपा कीजिये।

बम्बई।	वैद्य अमृतलाल सुन्दरजी पढियार
अधिक श्रावण सुदी २ संवत् १९६५	चोरवाड निवासी।

स्वर्गकी सीढ़ी।

पहला खंड।

—:*:—

पहली पैड़ी।

धर्म्मके विषयमें।

जगतके सब देशोंमें सब लोग किसी न किसी रूपमें धर्म्मको मानते हैं। एकदम पुराने जमानेसे लेकर आज तक ऐसी किसी जातिका पता नहीं लगा है, जो किसी रूपमें धर्म्मको न मानती हो। सारी दुनियाके सभी चतुर आदमी, जबसे दुनिया पैदा हुई, तबसे धर्म्म धर्म्म कहते आये हैं और मुझे जान पड़ता है, कि प्रलय होने तक भी चतुर मनुष्य धर्म्म धर्म्म कहते रहेंगे। इतना ही नहीं बल्कि प्रलयके बाद जब फिरसे सृष्टि होगी तब भी लोग धर्म्मको तो चाहेंगे ही। यद्यपि जुदे जुदे देशोंमें और जुदे जुदे समयमें धर्म्मके बाहरी रूप बदला करते हैं और बदला करेंगे, तो भी इन

माया माने क्या ?

इस प्रकार जीवको ईश्वरके रास्तेमें आगे बढ़ानेका नाम ही सत्य धर्म्म है; तिस पर भी हम सब मोहमें पड़ कर जीवको जगतकी वस्तुओंमें ही बांध रखते हैं। इसीका नाम माया है, इसीका नाम अज्ञानता है, इसीका नाम अधर्म्म है और इसीका नाम ईश्वरसे विमुखता है। इस समय हम जिन चीजोंके मोहमें पड़े हैं, वे ऐसी नहीं हैं कि जीवको अन्तिम शान्ति दे सकें। जैसे, हमें धन रुचता है परन्तु धन से जीवको सच्चा सन्तोष नहीं होता, हमें इज्जत हासिल करना पसन्द है, पर कोरी इज्जतसे जीव ईश्वरके सामने नहीं जा सकता; हमें लड़के-बाले रुचते हैं, परन्तु लड़के बालों की आसक्तिमें जीव अन्त तक नहीं पड़ा रह सकता; हमें वैभव पसन्द है परन्तु यह वैभव मोक्षके मार्गमें काम नहीं आता और हमें अभिमान रुचता है परन्तु अभिमान अन्त तक नहीं रह सकता। इस प्रकार कोई चीज अन्त तक जीव के काम नहीं आती; इस कारण उससे जीवको तृप्ति नहीं होती। तिस पर भी अफसोस है, कि ऐसी वस्तुओंके लिये हाय हाय करनेमें ही हम रह जाते हैं। ऐसी वस्तुओंकी आसक्तिमें न फंसने और जीवको उनके स्वाभाविक मार्गमें आने देनेका नाम धर्म्म है।

धर्म्मका उद्देश।

इस कारण धर्म्मके लिये हम जो कुछ क्रिया करते हैं, जो कुछ नियम पालते हैं और जो कुछ अध्ययन करते हैं वे सब ईश्वरकी तरफके मार्ग खोलनेके लिये ही हैं। जैसे, हम जो

व्रत करते हैं, दान करते हैं, तीर्थयात्रा करते हैं, यमनियम पालते हैं, योग साधते हैं, त्याग करते हैं, मूर्तिपूजा करते हैं, यज्ञ करते हैं तथा ईश्वरका गुणगान करते हैं वह सब जीवको ईश्वरकी तरफ धकेलनेके लिये ही करते हैं। यद्यपि ये सब क्रियाएं और रीतियां जुदी जुदी हैं तो भी सब का उद्देश एक ही है और जुदे जुदे अधिकारियोंको जुदे जुदे देशकालके अनुसार तथा जुदी जुदी प्रकृतियों और इर्दगिर्दके जुदे जुदे संयोगों के अनुसार जुदी जुदी किसकी क्रियाएं करनी पड़ती हैं। इसीसे जुदे जुदे महात्माओंने धर्मके जुदे जुदे नियम कहे हैं; परन्तु उन सबका मूल उद्देश है जीवको ईश्वरमय करना; क्योंकि जीव जब ईश्वरमय होता है तभी उसको सम्पूर्ण सुख मिलता है और तभी उसको अन्तिम शान्ति मिलती है। इसलिये जीवको ईश्वरमय करनेका नाम ही धर्म्म है।

धर्म्मका तत्त्व समझनेकी जरूरत ।

यह सब नियम हम जानें और कुछ थोड़ा-बहुत इनके अनुसार करें तो भी इससे कुछ यह नहीं समझा जाता, कि हमें धर्म्मकी कुञ्जी मिल गयी और जब तक धर्म्मकी कुञ्जी न मिले तब तक इन सब कामोंमें कुछ न कुछ स्वार्थ रह जाता है, कुछ न कुछ अधूरापन रह जाता है, कुछ न कुछ अभिमान रह जाता है, कुछ न कुछ पोल रह जाती है और जिस शुभ उद्देशसे ये काम होने चाहियें, जिस पवित्रता से ये क्रियाएं होनी चाहियें, जिस उत्साहसे इन नियमों को पालना चाहिये और जिस मुकाम पर दृष्टि रख कर जिस ठिकानेसे ये काम करना चाहिये उसके अनुसार हमें नहीं कर सकते। इससे हम जो कुछ थोड़ा बहुत करते हैं,

उन सबमें किसी न किसी प्रकारकी कचाई रह जाती है। यह कचाई दूर करनेके लिये तथा इन क्रियाओंसे मनमाना लाभ लेनेके लिये हमें धर्म्मकी कुञ्जी जाननी चाहिये और वह कुञ्जी हासिल करनी चाहिये ।

धर्म्मकी कुञ्जी क्या है ?

तो अब यह प्रश्न उठता है कि यह कुञ्जी क्या है ? जुदे जुदे देशोंमें जुदे जुदे महात्मा जुदे जुदे विषयोंको धर्म्मकी कुञ्जी बताते हैं। जैसे, कोई सत्यको धर्म्मकी कुञ्जी कहता है, कोई अहिंसाको धर्म्मकी कुञ्जी कहता है, कोई योगको धर्म्मकी कुञ्जी कहता है, कोई ज्ञानको धर्म्मकी कुञ्जी कहता है, कोई भावनाको धर्म्मकी कुञ्जी कहता है, कोई वर्णाश्रम धर्म्म तथा कर्म्मकाण्डको धर्म्मकी कुञ्जी कहता है और कोई त्यागको धर्म्मकी कुञ्जी बताता है। इस प्रकार अपने इर्दगिर्दके संयोग तथा देशकालके अनुसार जुदे जुदे महात्माओंने जुदी जुदी बातें कही हैं और ये सब सबके अधिकारके अनुसार योग्य समय पर योग्य ही हैं। इसलिये मैं धर्म्म की कोई नयी कुञ्जी ढूंढ़नेका दावा नहीं करता, बल्कि श्रीकृष्ण भगवानने महाभाग्यशाली अर्जुनको धर्म्मकी जो कुञ्जी बतायी है वही कुञ्जी मैं आप लोगोंसे कहता हूँ। वह यों है,—

महाभारतके युद्धके समय जब अर्जुनको मोह हुआ, कर्त्तव्य का होश न रहा, अच्छा-बुरा समझ में नहीं आया और ग्लानि, भय, वैराग्य तथा दया आदि वृत्तियोंकी पचमेल खिचड़ीसे जब वह परेशान होने लगे तब उन्होंने कृष्ण भगवानसे कहा,—

धर्म्मका पहला लक्षण।

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वा धर्म्मसमूढचेता।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

भ० गी० अ० २ श्लो० ७

हे प्रभु! मैं मोहमें पड़ा हुआ हूँ, बिगड़े हुए स्वभावका हूँ, स्वार्थी प्रकृतिका हूँ और इस समय हकाबक्का हो गया हूँ। इससे मेरा धर्म्म क्या है, यह मुझे मालूम नहीं पड़ता। इसलिये ऐसी बात ठीक करके बताओ कि जिससे मेरा कल्याण हो। क्योंकि मैं तुम्हारा शिष्य हूँ और तुम्हारी शरणमें आया हूँ। मुझे सच्चा रास्ता बतानेकी कृपा करो।

पहले जीवमें इस प्रकारकी असली दीनता आनी चाहिये। यह धर्म्मका पहला लक्षण है। जब तक दीनता नहीं आती तब तक मनमें अभिमान रहता है और जब तक अभिमान रहता है तब तक सच्चा धर्म्म दूर ही दूर रहता है। क्योंकि धर्म्म और अभिमानमें कभी नहीं पटती और सच्ची दीनता आये बिना पूरा पूरा अभिमान कभी दूर नहीं हो सकता। इस अभिमानको दूर करनेके लिये पहले अपनेमें सच्ची दीनता लानेकी जरूरत है। दीनता धर्म्मकी पहली कुंजी है। जो बड़े भाग्यशाली हरिजन होते हैं उन्हीं को यह कुंजी मिल सकती है; बाकी लोग तो ऊपरी बातोंमें और पोलमपोलमें रह जाते हैं। अभिमान ऐसी बलवान वस्तु है, कि बहुत आदमी इसें सहजमें नहीं छोड़ सकते; इतना ही नहीं, शुद्ध अन्तःकरणकी दीनता बिना अनेक प्रकारके उपायोंसे भी यह नहीं छूट सकता और इसको छोड़ने से ही पूरा पड़ सकता है; इसलिये इसको छोड़ना चाहिये। परन्तु सच्ची दीनता के

सिवा और किसी उपाय से यह नहीं छूट सकता। इसलिये दीनता हमारे पवित्र धर्मका पहला लक्षण है।

महात्माओंकी दीनता।

भाइयो! याद रखना कि दीनता बहुत बड़ी चीज है। इसीसे कहा है, कि जो झुका वह ईश्वरको पसंद आया। इसीसे जगत् के सभी महात्मा अतिशय नम्रता रखते थे और रखते हैं। नम्रताके विषयमें सन्तोंके असली विचार हम अगर जानें तो हमें आश्चर्य्य हुए बिना न रहे। इसके लिये एक दृष्टान्त है कि एक महात्मा थे। वह बड़े ही अच्छे, भक्तिमान, ऊँचे ज्ञानवाले और पवित्र आचरण वाले थे। उनके पास एक जिज्ञासु गया और उनका बखान करने लगा। तब उक्त महात्मा ने कहा, कि भाई! मैं किस गिनतीमें हूँ? मैं तो सिर्फ एक सुई की नोक बराबर हूँ, मुझसे कितने ही बड़े बड़े महात्मा इस दुनिया में हैं। यह सुनकर उस जिज्ञासु को बड़ा आश्चर्य्य हुआ। उसने सोचा, कि ओह! इतना बड़ा महात्मा इतनी बड़ी दीनता रखता है, कि अपनेको सुईकी नोक बराबर समझता है, और मैं कैसा मूर्ख हूँ, कि मुझ में कुछ तत्त्व नहीं है तो भी अपने को बड़ी भारी चतुर समझा करता हूँ। इसके बाद वह आदमी एक दूसरे महात्माके पास गया और वहाँ पहले महात्माकी बड़ाई करने लगा। बड़ाई करते करते बोला, कि वह महात्मा बहुत ही बड़े और बड़े ही परमार्थी है तो भी वह कहते थे, कि मैं तो सुईकी नोक बराबर हूँ। उनकी ऐसी दीनता देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य्य हुआ कि इतनी बडी दीनता बड़े आदमियोंमें कैसे आ जाती है; मैं तो उनके चरणोंमें गिर पड़ा और उनकी सेवा करने की मुझे बड़ी इच्छा हुई। यह बात सुनकर वह महात्मा रो

पड़े। यह देखकर उस जिज्ञासुने चकित होकर पूछा, कि क्यों महाराज! क्या हुआ? आप रोते क्यों हैं? महात्माने कहा, कि भाई! तुमने जिस सन्तकी बात कही वह मेरा मित्र है; इससे मुझे उस पर दया आती है। मुझे रुलाई आती है, कि हरे हरे! इतने वर्षोंसे भक्ति करते रहने पर भी वह अभी अपनेको सुईकी नोक बराबर समझता है। मैं तो जानता था, कि वह अपनेको कुछ भी नहीं समझता होगा और ईश्वरमें लीन हो जानेसे अपने आपको बिलकुल भूल गया होगा। इसके विरुद्ध वह अभी अपनेको सुईकी नोक बरा-बर समझता है, यह जान कर मुझे अफसोस हुआ। इससे मुझे रुलाई आ गयी। यह बात सुन कर वह जिज्ञासु और भी चकित हुआ।

भाइयो! याद रखना, कि जब ऐसी दीनता आवे तभी मोक्ष हो सकता है। परन्तु ऐसी दीनता सहजमें नहीं आती। ऐसी सच्ची दीनता तो तभी आ सकती है, जब जगतका मिथ्यापन समझमें आवे; देहका क्षणभंगुरपन समझमें आवे और महात्माओंके सत्संगमें रहा जाय। इसवास्ते सच्ची दीनता सीखनेके लिये, जिनको असली रङ्ग लग गया हो, उन हरिजनोंके सत्सङ्गमें रहना चाहिये। उनकी दीनता हम पर असर कर सकती है और हमें मिल सकती है। और अगर हम उनकी देखादेखी आपसे आप दीनता न सीख सकें तो वे सच्ची रीतिसे समझा कर भी हमें दीनता सिखाते हैं। इसके लिये एक महात्माका दृष्टान्त है और वह जानने योग्य है, इसलिये यहां कहता हूँ।

दृष्टिवाले थे। वह अपने ज्ञानध्यानमें इतने मस्त रहते थे, कि किसीकी रत्ती भर भी परवा नहीं करते थे। उन महात्मा का वर्णन सुनकर एक बड़ा अमीर उनसे मिलने गया। वह अमीर बड़ा अभिमानी था और मान मर्य्यादाका बड़ा भूखा था। इतना ही नहीं, दो एक किसमके खिताबोंकी दुम भी लगाये हुए था। और वह जहां जाता था, वहाँ उसकी बड़ी इज्जत भी होती थी। इससे वह समझता था, कि सर्व जगह ऐसा ही होगा; परन्तु उक्त महात्माने उसका कुछ भी ख्याल नहीं किया, क्योंकि उनके लिये तो गरीब अमीर सब बराबर थे, बल्कि जो गरीब वहां आता, वह बड़े अदबसे महात्मा की बड़ी इज्जत और भक्ति करते हुए आता और इस बातका विशेष ध्यान रखता, कि मेरे कारण महात्मा जीको किसी तरहकी अड़चल न हो। परन्तु यह अभिमानी सेठ तो भों-भों करती हुई मोटर गाडीमें बैठ कर वहां गया इससे मोटरकी आवाज और उसके बदबूदार धुएंसे सबको तकलीफ हुई। इतना ही नहीं; सेठजी सबको लांघते हुए महात्माके पास जा बैठे। तो भी महात्माने उनकी ओर न देखा और न उनका कुछ लिहाज ही किया। सेठजी ने समझा, कि इस महात्माने मुझे पहचाना नहीं, अगर पहचानता तो मेरे जैसे बड़े आदमीका आदर किये बिना न रहता। इससे उन्होंने उन महात्मासे कहा, कि महाराज! आप मुझे पहचानते हैं? आपको मालूम है कि मैं कौन हूं? महात्मा ने कहा कि हां भाई! मैं तुझे खूब पहचानता हूँ। यह सुनकर तिसमार खां सेठने सोचा, कि इसने अभी मुझे ठीक ठीक नहीं पहचाना है, अगर पहचाना होता, तो मुझे तू नहीं कहता। इससे सेठने महात्मासे कहा, कि अगर

आप मुझे पहचानते हैं तो बताइये मैं कौन हूँ ? महात्मा ने कहा, कि तेरी पूरी पूरी पहचान कहूँ, कि अधूरी ? जिस गन्दीसे गन्दी चीजका लोगोंमें नाम लेनेसे भी शरम आती है, उससे जन्मा हुआ तू । और दूसरी पहचान चाहिये ? जिससे तुझे ग्लानि होती है उस लहू, मांस और मलमूत्र का लोथड़ा लेकर हमेशा फिरने वाला तू । और पहचान चाहिये ? जहां गिद्ध और कव्वे रहते हैं, जो अपवित्र गिना जाता है और जहां भूत-प्रेत बसते हैं, उस मसान में फूंक दिया जाने वाला तू । बता और भी पहचान चाहिये ? यह पहचान सही है, कि गलत ? हम साधुओंको इससे बढ़ कर अच्छी पहचान और क्या होगी ? यह सुन कर वह सेठ चुप हो गया, उसका अभिमान उतर गया और उसमें दीनता आ गयी ।

सच्ची दीनता कब आती है ?

इस प्रकार जब अपनी कमजोरी, जगतका मिथ्यापन, आत्माका अमरपन और ईश्वरकी महिमा समझमें आती है तभी सच्ची दीनता आ सकती है । महात्मा अर्जुन ने महाभारतके युद्धस्थलमें खड़े होकर सोचा कि ओ हो ! इतने अधिक आदमी हमारे कारण मर जायंगे ! हरे हरे ! इसमें तो मेरे काका, मामा, भाई, साले, लड़केके लड़के और गुरु वगैरह सब स्नेही लोग ही हैं । ये सब मर जायंगे, तो फिर राज्य हमारे किस काम आवेगा ? और भोग भी किस काम का ? फिर मैं यह भी नहीं जानता, कि कौरव जीतेंगे, कि हम जीतेंगे । इस प्रकार जब उन्हें वैराग्य आया, अपने सगों का दुःख प्रत्यक्ष दिखाई पड़ा और अपनी मौत नजर के सामने खड़ी दीख पड़ी तब उनमें दीनता आयी थी । जब तक जगत-

का मिथ्यापन ऐसी उत्तम रीतिसे उनकी समझमें नहीं आया था, तब तक उनमें दीनता नहीं आयी थी। इसलिये याद रखना, कि बाहरी शिष्टाचारकी दीनतासे काम नहीं चलता। अपनी कमजोरी और संसारका मिथ्यापन समझ लेने के बाद जो दीनता आवे वही दीनता हमें तार सकती है और उसी दीनताको हम धर्मकी कुञ्जी कहते हैं। ऐसी दीनता बिना जीव ईश्वरी रास्तेमें आगे नहीं बढ़ सकता और जब तक जीव आगे नहीं बढ़ता तब तक उसे जैसा चाहिये वैसा सन्तोष नहीं होता। और जब तक सन्तोष न हो तब तक जीव अधूरा और तड़पता रहता है। इस वास्ते यह अधूरापन और तड़पना मिटानेके लिये पहले दीनताकी जरूरत है। क्योंकि अर्जुन कहते हैं, कि इस दुनिया में सुख की कौन कहे, स्वर्ग, पृथिवी और पाताल तीनों भुवन का राज्य मिले तो भी मेरी आत्माको सन्तोष होता नहीं दिखाई देता। अब विचार कीजिये, कि जिस समय अर्जुन ऐसा कहते थे, उस समय उनके पास करोड़ों आदमियों की सेना थी, हजारों हाथी उनकी सेना में झूमते थे, लाखों भड़कीले घोड़े वहां मौजूद थे, सहस्रों रथ थे और सैकड़ों महारथी थे। इतना ही नहीं, अर्जुन इन्द्रके पुत्र थे और महादेव का सामना करने वाले थे; तो भी दीनता बिना उनका पूरा न पड़ा। तब हम उनके हिसाब से किस गिनती में हैं? इस लिये इन सब विषयों को विचार कर हमें दीनता सीखनी चाहिये, क्योंकि दीनता धर्म का पहला लक्षण है।

धर्मका दूसरा लक्षण।

दीनताके बाद ईश्वरकी शरण ही धर्मकी दूसरी कुञ्जी

है; क्योंकि बिना शरण गहेकी जो दीनता है वह बहुत उपयोगी नहीं होती। जैसे, पराधीनताके कारण मनुष्योंमें दीनता आती है, दुःखके कारण कितने ही आदमियोंमें दीनता आती है, निराशाके कारण दीनता आती है, बचपनके कारण तथा बहुत बुढ़ापेके कारण कितने ही आदमियों में दीनता आती है और लम्बी बीमारी तथा दरिद्रताके कारण भी कितनी ही बार मनुष्योंमें दीनता आती है। ऐसी दीनता से बिना ईश्वर की शरण गये कुछ कल्याण नहीं होता; इस लिये अर्जुन कहते हैं कि:—

शिष्यस्तेऽहं, शाधि मा त्वां प्रपन्नम्।

हे प्रभु! मैं तुम्हारा शिष्य हूँ और शरणमें आया हूँ; इस लिये मुझे सच्चा रास्ता दिखानेकी कृपा करो। इस प्रकार एक अर्जुनने ही वह शरण नहीं पकड़ी है; बल्कि जगतमें जो जो भक्त हुए हैं, जो जो महात्मा हुए हैं, जो जो महान् धर्म्मगुरु हुए हैं और जो जो भावुक हरिजन हुए हैं उन सबने प्रेमपूर्वक ईश्वरकी शरण ली है और शरण लेनेसे ही वे तर सके हैं। इसलिये ईश्वरकी शरण लेना धर्म्मकी दूसरी कुञ्जी है।

ईश्वरकी शरण लेनेके माने क्या?

अब हमें यह विचार करना चाहिये कि शरण लेनेके माने क्या हैं। जब तक इसका भेद न समझ लिया जाय, तबतक पूरे पूरे बलसे सच्चे तौरपर शरण नहीं ली जा सकती। इसलिये इसका रहस्य समझना चाहिये कि शरण लेनेके माने क्या हैं। यह समझनेके लिये महात्माओंका जीवनचरित्र जानना चाहिये। जीवनचरित्र जानें तो उनमें पहले ही अचल

विश्वासका बल दिखाई देगा, इसके बाद पवित्रता दिखाई देगी, फिर स्वार्थत्याग नजर आवेगा, पीछे भगवत् इच्छाके अर्पण होना जान पड़ेगा और सब प्रकार ईश्वरमें ही तन्मय होना दिखाई देगा। इसके सिवा अपने धर्मके लिये वे अपना प्राण देनेमें भी पीछे पैर रखते नहीं दिखाई देंगे। ऐसा दृढता, ऐसा प्रेम, ऐसी पवित्रता, ऐसा विश्वास, ऐसा ज्ञान, ऐसा वैराग्य और ऐसी तन्मयता जब आजाय तभी सच्ची शरण लेना माना जाता है। यद्यपि यह सब धीरे धीरे होता है तो भी शरण लेनेके बलसे ही होता है। इसीलिये ईश्वरकी शरण पकड़ना धर्मका दूसरा लक्षण है। याद रखना कि जब जीवमें सच्ची दीनता आवे तभी ऐसी दृढ़तासे शरण ली जा सकती है; इसलिये दीनता धर्मका पहला लक्षण है" और ईश्वरकी शरण जाना दूसरा लक्षण है।

धर्मका तीसरा लक्षण।

दीनतासे शरण लेनेके बाद अपनी भूल तथा अपना पाप अपनी नजरके सामने खड़े हो जाते हैं। दीनतासे मालूम हो जाता है, कि मुझमें कुछ सत्त्व नहीं, मैं तो पापी स्वभाव वाला हूँ, जड़ बुद्धिवाला हूँ, कठोरवृत्ति वाला हूँ, अभिमानसे भरा हुआ हूँ, चञ्चल मनवाला हूँ, बहुत मोहवाला हूँ-और क्षण-भंगुर देहवाला हूँ। इस प्रकार जहाँ एक ओर अपनी पूरी पूरी कमजोरी दिखाई पड़ती है वहाँ दूसरी ओर जिसकी शरण पकड़ी है उस ईश्वरको देखनेसे उसके अद्भुत और अलौकिक गुण दिखाई देते हैं। उसकी दया, उसका प्रेम, उसका प्रकाश, उसका ज्ञान, उसकी शक्ति और उसकी महिमा देखकर जीव स्तब्ध हो जाता है और ऐसा लगता है, कि कहाँ वह महिमा और कहां यह कमजोरी? कहां वैसी पवित्रता और

कहां ऐसी मलिनता ? कहां उसकी सर्व्वशक्तिमत्ता और कहां मेरी अज्ञानता ? कहां उसका प्रेम और कहां मेरी कठोरता ? और कहां उसकी कृपा और कहां मेरी नालायकी ? यह सब देखनेसे जीवको असली पछतावा होता है और दूसरा उपाय न देख पड़नेसे उसको माफी मांगनेका मन होता है। इससे वह जी खोलकर सच्चे भावसे माफी मांगने लगता है। इस प्रकार अपनी कमजोरी समझ कर और शरणका विश्वास रख कर हृदयके भीतरसे ईश्वरकी माफी मांगना हमारे पवित्र धर्म्मकी तीसरी पैड़ी है।

भक्तकी माफी मांगनेकी रीति।

जब ऐसी दशा होती है तब भक्त सच्चे भावसे बहुत अदबके साथ शुद्ध अन्तःकरणसे झुक जाते हैं और अर्जुनकी तरह कहने लगते हैं कि—

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान् ।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्य प्रतिमप्रभावः ॥

अ० ११ श्लो० ४३

हे पिता ! तुम ऐसे हो, कि तुम्हें किसी तरहकी उपमा नहीं दी जा सकती, तुम महाप्रभाव वाले हो, प्राणी मात्रके पिता हो, सबके पूजने योग्य हो, सबके गुरु हो और बड़े से बड़े हो। हे प्रभु ! स्वर्ग, पृथिवी या पाताल—त्रिभुवन में तुम्हारे ऐसा और कोई नहीं है तुमसे बढ़कर तो क्या होगा ! इसलिये हे प्रभु !

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु ।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम् ॥

अ० ११ श्लो० ४२

हंसने बोलनेमें, बैठने उठनेमें, सोते वक्त, खाते वक्त, एकान्तमें तथा दूसरोंके सामने मैंने तुम्हारे साथ जो जो अपराध किये हैं उन सब अपराधों के लिये मैं तुम से क्षमा मांगता हूँ और हे अचिन्त्यप्रभाव वाले !

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम् ।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम् ॥
अ० ११ श्लो० ४४

हे स्तुति करने योग्य ईश्वर ! मैं तुमको नमस्कार करता हूँ और पैर पड़ कर प्रार्थना करता हूँ, कि हे प्रभु ! जैसे बाप अपने लड़केका कसूर माफ करता है, जैसे मित्र अपने मित्रकी भूल माफ करता है और जैसे पति अपनी प्यारी पत्नीका अपराध-क्षमा करता है वैसे ही तुम मेरे अपराध क्षमा करने की कृपा करो ।

ईश्वरसे माफी मांगनेका फल ।

इस प्रकार हृदयके भीतरसे, शुद्ध अन्तःकरणसे, सच्चीरीतिसे माफी मांगी जाय और ऐसी स्वाभाविक प्रार्थना हो जाय तो जीव हलका हो जाता है और उसको बड़ा ही आनन्द मिलता है क्योंकि जब ईश्वरकी महिमा और अपनी कमजोरी समझनेमें आजाय तब स्तुति होती है और जब पूर्ण प्रेमसे ईश्वरकी स्तुति हो तब हृदयका परदा हट जाता है और जिन्दगी में एक नयी रोशनी आ जाती है। प्रार्थना धर्म्म का जीवन है। इसलिये दुनियांके सब धर्म्मोंमें सब महात्माओंने ईश्वरकी प्रार्थनाको सबसे श्रेष्ठ माना है; क्योंकि इससे जो चाहिये वह मिलता है और इसीसे उद्धार हो सकता है। इसलिये अपनी भूल कबूल करके शुद्ध अन्तः-

करणसे ईश्वरकी माफी मांगना और उसकी प्रार्थना करना धर्म्मकी तीसरी कुञ्जी है।

इस प्रकार इन तीनों कुञ्जियोंसे काम लेना जिसको आता है उस भाग्यशाली हरिजनके हृदयका दरवाजा खुल जाता है, जिससे उसके हृदयका बोझ हलका हो जाता है, उसके संशय ढीले पड़ जाते हैं, उसके पापका जोर घट जाता है, उसकी जिन्दगी सुधरने लगती है और उसे एक तरह का स्वाभाविक आनन्द मिलने लगता है। इतना ही नहीं इन चाभियों से जिसको अपने भीतरका दरवाजा खोलना आता है उसके लिये भगवानका दरवाजा भी खुल जाता है, उस समय ईश्वर उसकी अर्जी सुनते हैं और दयालु पिता उसको उत्तर देते हैं कि—

> सर्व्वधर्म्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
> अहं त्वा सर्व्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥
>
> अ० १८ श्लो० ६६

तू अफसोस मत कर, मैं तुझे सब पापों से बचाऊंगा। तू सब धर्मोंको छोड़ कर एक मेरी ही शरण में आ जा। अब यह प्रश्न उठता है कि

सब धर्म्मोंको छोड़ कर भगवानकी शरण जानेके माने क्या।

यह प्रश्न स्वाभाविक है तो भी बड़ा गम्भीर है; क्योंकि सब धर्म्म छोड़ देना हो नहीं सकता। कुलका धर्म्म, वर्णका धर्म्म, आश्रमका धर्म्म, राज्यका धर्म्म, देशका धर्म्म, साधारण धर्म्म, विशेष धर्म्म और देहका धर्म्म आदि अनेक प्रकारके धर्म्म हैं और ये सब धर्म्म किसी न किसी रूपमें जिन्दगीके

लिये जरूरी हैं। कितने ही धर्म्म तो ऐसे हैं कि जब तक देह बनी रहे तब तक उनका पालन किये बिना चलता ही नहीं। और भगवान यह कहते हैं, कि सब धर्म्म छोड़ कर मेरी शरण आ तब मैं तुझे मुक्त करूंगा। इसलिये यह बात समझने लायक है, कि सब धर्म्म छोड़नेके माने क्या हैं? यह भेद समझ में आ जाय तभी असली खूबी आ सकती है, तभी जिन्दगीमें सरलता आ सकती है, तभी आसानीसे आगे बढ़ा जा सकता है और तभी धर्म्मका तत्व जिन्दगीमें उतर सकता है। इसलिये यह भेद समझनेकी खास जरूरत है।

सब धर्म्म कैसे छोड़े जा सकते हैं?

इसके लिये अनुभवी महात्मा कहते हैं, कि सब विषयोंकी आसक्ति घटा कर एक ईश्वरको ही मुख्य मानना और जो जो काम करना पड़े सब उसीके लिये, उसीको अर्पण करके करना और उसके फलकी इच्छा न रखना; इतना ही नहीं बल्कि—

(१) सब विषयोंसे आसक्ति घटा कर एक ईश्वरको ही मुख्य मानना। जैसे, अपने शरीर पर प्रेम रखने, कुटुम्ब पर प्रेम रखने, मित्र पर प्रेम रखने, देश पर प्रेम रखने और प्राणियों पर प्रेम रखनेमें कुछ अड़चल नहीं है; परन्तु इन सबसे अधिक प्रेम ईश्वर पर होना चाहिये। जरूरत पड़े तो ईश्वरके लिये यह सब प्रेम छोड़ दिया जाय; पर और किसी तरहके प्रेमके कारण ईश्वरके ऊपरका प्रेम न छोड़ा जाय। इस प्रकार बर्ताव करनेका नाम सर्वधर्म्मान्परित्यज्य मामेकशरणंव्रज है।

ईश्वरके लिये काम करनेके माने क्या?

(२) जिन्दगीका कर्त्तव्य पूरा करनेके लिये प्रसङ्गवश इस दुनियांमें छोटे बड़े जो काम करने पड़ें उन सबको ईश्वर

के लिये ही करना चाहिये। अर्थात् अपने स्वार्थके लिये नहीं, अपनी मानमर्यादाके लिये नहीं, अपने लोभके लिये नहीं, और अपने विकारोंको खुश करनेके लिये नहीं, बल्कि जिन्दगी के उत्तम उद्देशको समझ कर जगतकी सेवा करनेके लिये, अपना कर्त्तव्य पूरा करनेके लिये ही, जो जरूरी हो उसे करना चाहिये। इस प्रकार अपने लिये नहीं बल्कि ईश्वरके लिये सब कुछ करनेका नाम सर्वधर्म्मान्परित्यज्य मामेक शरण भज है। जैसे, लड़केका ब्याह करना हो तो खुशीसे करना; परन्तु अपना बड़प्पन दिखानेके लिये या मनमें ओछी किसको इच्छाएँ रखकर उन्हें पूर्ण करनेके लिये नहीं; बल्कि यह समझ कर कि यह लड़का ईश्वरका है, यह थाती ईश्वरने मुझे सौंपी है—इसलिये इसकी भलाईकी बात करना मेरा कर्त्तव्य है—ईश्वरके लिये ही यह काम करना चाहिये। इसी तरह अगर हम नौकरी करते हों या किसी तरहका गुजारे का काम करते हों तो ऐसा भाव नहीं रखना चाहिये कि यह सब सिर्फ अपनी ही जिन्दगीके सुखके लिये है; बल्कि ईश्वर के नियम पालनेके लिये और इस रास्ते किसी न किसी की मदद करनेके लिये तथा अपनी आत्माका कल्याण करनेके लिये ही उन सब जरूरी कामोंको करना चाहिये। इस प्रकार हर एक काम शुभ उद्देशसे करने और सिर्फ अपने लिये नहीं बल्कि ईश्वरके लिये करने और वह भी सिर्फ ऊपरी मनसे नहीं, बल्कि शुद्ध अन्तःकरणसे तत्व समझ कर तथा ईश्वरको हाजिर नाजिर जान कर करने और इस तरह चलनेका नाम सर्वं धर्म्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज है।

फलकी इच्छा रखे बिना काम करना चाहिये।

(२) सब धर्म्म छोड़नेके बारेमें दूसरी मुख्य बात यह

है कि जो कुछ करना वह फलकी इच्छा और आशा छोड़ कर ही करना चाहिये। जबतक फलकी इच्छा रखकर कर्म्म होता है तबतक वह कर्म्म मलीनतासे भरा हुआ होता है, अधूरा होता है और स्वार्थ मिला हुआ होता है। जब फलकी इच्छा न रख कर कर्म्म हो तब उसमें कुछ खास खूबी आ जाती है। इतना ही नहीं, उसमें जो अधूरापन होता है उसे परमात्मा पूरा कर देता है। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कृष्ण भगवानने कहा है कि

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ।
स्वल्पमप्यस्य धर्म्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥
अ० २ श्लो० ४०

निष्काम कर्म्मका आरम्भ व्यर्थ नहीं जाता और न निष्काम कर्म्म करनेमें कुछ दोष लगता; इतना ही नहीं अगर थोड़ा भी निष्काम कर्म्म किया हो तो इससे भी बड़े भयसे छुटकारा मिल सकता है। क्योंकि इस प्रकार निष्काम कर्म्म करनेका नाम ही योग है और ऐसे योगसे ही आत्माकी तथा परमात्माकी एकता हो सकती है। इसलिये ईश्वर भी कहते हैं कि—

योगस्थः कुरु कर्म्माणि सगं त्यक्त्वा धनञ्जय ।
सिध्यसिध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥
अ० २ श्लो० ४८

जो निष्काम कर्म्म करना हो उसको, चाहे जो हो, कुछ भी हर्ष शोक न करके फलकी आशा रक्खे बिना तू कर। हे अर्जुन! इस प्रकार समता रख कर कर्म्म करनेका नाम ही योग है।

कर्म्म करना ही तेरा काम है, उसके फलकी ओर देखना तेरा काम नहीं।

इस प्रकार निष्काम कर्म्म करनेसे जीव ईश्वरके साथ जुड़ता जाता है; इसलिये फलकी आशा रखे बिना आसक्ति त्याग कर अपना कर्म्म पूरा करनेका नाम सर्व्वधर्म्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज है। क्योंकि इसके सिवा सब धर्मोंको छोड़ देनेका दूसरा कोई रास्ता ही नहीं। प्रभुने स्वयं कहा है कि—

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म्मकृत्।
कार्य्यते ह्यवशः कर्म्म सर्व्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥

अ० ३ श्लो० ५

जगतके सब प्राणी प्रकृतिके गुणोंमें बंधे हुए हैं, इससे मनुष्य पराधीन है। इस कारण कोई आदमी एक क्षण भी बिना काम किये नहीं रह सकता।

जब ऐसा है तब सब धर्म्म नहीं छोड़े जा सकते, परन्तु, कर्म्मोंकी आसक्ति तथा कर्मोंके फलकी इच्छा छोड़ी जा सकती है। इसीसे भगवानने कहा है कि—

कर्म्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्म्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि॥

अ० २ श्लो० ४७

कर्म्म करना ही तेरा कर्त्तव्य है, उसका बदला पानेकी इच्छा रखना तेरा काम नहीं। इसलिये कर्म्मोंका फल पाने की कभी इच्छा मत रखना और कर्म्म न करनेका हठ भी मत रखना क्योंकि

दूरेण ह्यवरं कर्म्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः॥

अ० २ श्लो० ४९

निष्काम कर्मसे काम कर्म बहुत घटिया है, इतना ही नहीं फलकी इच्छा वाले तो कंगाल हैं। इसलिये हे अर्जुन! तू निष्काम कर्म कर।

अब यह एक प्रश्न है कि निष्काम कर्म कैसे किया जाय। इसके लिये ईश्वर ने कहा है कि—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैव पापमवाप्स्यसि॥
अ० २ श्लो० ३८

सुख हो चाहे दुःख, लाभ हो चाहे नुकसान और जीत हो चाहे हार; हर्ष या शोक न करना। इस प्रकार वृत्ति रखकर अगर तू अपना कर्त्तव्य पूरा करेगा तो तुझे पाप नहीं लगेगा। इस प्रकार निष्काम कर्म करनेका नाम सर्व्वधर्म्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज है।

ईश्वरके अर्पण हो जानेके विषय में।

(४) इसके बाद चौथा और अन्तिम सिद्धान्त यह है कि अपना हर एक कर्म परम कृपालु सर्व्वशक्तिमान् ईश्वरके अर्पण करना चाहिये। बल्कि अपनी सारी जिन्दगी ईश्वरके अर्पण कर देनी चाहिये। तभी उद्धार हो सकता है। यही धर्म्म का अन्तिम महातत्त्व है। जिन्दगी अर्पण करनेके बाद और कुछ अर्पण करनेको बाकी नहीं रहता, क्योंकि जिन्दगी अर्पण कर देने पर ईश्वरके कदम बकदम चलते हैं, उसके तालमें ताल मिलता है, उसके नादमें नाद मिल जाता है और उसकी इच्छामें अपनी इच्छा मिल जाती है। इससे जीवको बाँध रखनेवाला अभिमान या जुदाई नहीं रहती बल्कि लवलीनताकी स्थिति आ जाती है और उसी स्थितिमें जीव

असली आनन्द भोग सकता है। इसलिये आसक्ति कम रख कर, एक ईश्वरको ही मुख्य मान कर कर्म्म करनेके सिद्धान्त से भी अर्पण-विधिका सिद्धान्त उत्तम है। ईश्वरको मुख्य माना हो और जगत्‌की वस्तुओंमें आसक्ति कम हो तो भक्तकी यह आरम्भकी अवस्था है। इससे उसमें बहुत कुछ अधूरापन रहता है। जैसे, ईश्वरको मुख्य मानने पर भी स्वार्थ बना रहता है, मैंपन बना रहता है, मायाका परदा बना रहता है और ईश्वरकी जुदाईके कारण विरहकी आगसे जितनी विकलता होनी चाहिये उतनी नहीं होती। इससे यह स्थिति अपूर्ण है, परन्तु आरम्भ इसी रीतिसे हो सकता है। इसलिये ईश्वरको मुख्य मान कर तथा असक्ति छोड़ कर काम करना आरम्भकी पहली पैड़ी है और भक्तिकी पहली कोटि है। अर्पण विधिकी चौथी कोटिसे यह निचले दरजे की है; क्योंकि यह आरम्भ की कोटि है।

ईश्वरके लिये कर्म्म करने और ईश्वरको अर्पित कर्म करनेमें अन्तर।

इसके बाद दूसरी कोटि ईश्वरके लिये कर्म्म करने की है। इससे भी अर्पण विधि श्रेष्ठ है क्योंकि ईश्वर के लिये कर्म्म करने और ईश्वरको अर्पित करनेमें बहुत बड़ा अन्तर है। जैसे, श्रीमद्भगवद्गीता में दुर्योधन कहता है कि

अन्ये च बहवः शूरा मदर्थे त्यक्तजीविता।

अ० १ श्लो० ९

'मेरे-लिये प्राण देने को और भी बहुत से शूर वीर तय्यार हैं।' इसी प्रकार मांबाप अपने लड़कों के लिये कितने ही काम करते हैं, लड़के मा बाप के लिये कितने ही काम करते

हैं, मित्र अपने मित्रके लिये कितने ही काम करते हैं और नौकर अपने मालिकके लिये कितने ही काम करते हैं। परन्तु ये सब अपने कामोंको अपने स्नहियोंके अर्पण नहीं करते। इसी प्रकार ईश्वरके लिये काम करने और ईश्वरको अर्पित कर्म करनेमें बहुत भेद है। जैसे, एक सिपाही अपने अफसर के लिये बहुत दुःख सहता है परन्तु वह अपनी सब वृत्तियाँ सब शक्तियां और सब इच्छाएँ अपने अफसरको नहीं सौंप सकता। विद्वान् लोगों के लिये ग्रंथ लिखते हैं परन्तु अपना सर्वस्व लोगोंको नहीं दे सकते। इसी तरह कितने ही जवान आदमी अपने मावापके लिये बहुत कुछ करते हैं परन्तु उन्हें और भी कितनी ऐसी चीजों का चाव हो सकता है जो कितनी ही वार उनके मावापके पसन्द नहीं होती। इसके सिवा ईश्वरके लिये करने और ईश्वरके अर्पण करनेमें एक भेद यह भी है कि अपने लिये करनेमें कुछ उद्देश, कुछ स्वार्थ, कुछ अधूरापन, कुछ अभिमान, कुछ फलकी इच्छा और साफ दिखाई देने वाली कुछ बुराई रहती है। इससे बड़ा काम करने पर भी उसका फल थोड़ा मिलता है; परन्तु अर्पण–विधि में तो जरा भी किया हो तो उसका बड़ा फल मिलता है। जैसे, कोई सरदार अपने राजाके लिये कोई बड़ा काम करे तो राजा उस पर खुश होता है और उसको इनाम देता है, पर तो भी राजा अपने मनमें यह समझता है कि मेरे लिये करना इसका फर्ज है—इसलिये इसमें यह कुछ नई बात नहीं करता। परन्तु कोई गरीब आदमी उस राजाको कुछ छोटी सा चीज नजर कर जाय अर्थात् अर्पण कर जाय तो राजा उसकी बहुत कीमत समझता है। किसीके लिये करनेमें एक तरहका स्वार्थ है। किसीके लिये करना एक तरहका फर्ज है और

इसमें भी एक तरहका अभिमान है। परन्तु अर्पण करनेमें एक प्रकारकी दीनता है, एक प्रकारकी निःस्पृहता है और कर्त्तव्य पूरा करनेसे कुछ विशेषता है। इसलिये छोटी भेटोंसे भी बहुत लोगोंके भारी काम हो जाते हैं। ईश्वरके लिये करने और ईश्वरके अर्पण करनेमें भी ऐसा ही भेद है। इस कारण ईश्वरके लिये करनेसे ईश्वरके अर्पण करनेका सिद्धान्त अधिक ऊँचा है। परन्तु पूरी पूरी भक्ति हुए बिना अर्पण-विधिका रहस्य समझमें नहीं आता। इसलिये पहले ईश्वर-के लिये कर्म करना सीखना चाहिये और फिर अर्पण-विधि-में बढ़ना चाहिये। क्योंकि ईश्वरके लिये करना भक्तकी पहली कोटि है और ईश्वरको जिन्दगी अर्पण करना उत्तम भक्तों-की अन्तिम कोटि है।

कर्मका फल छोड़ने और ईश्वरके अर्पण हो जाने में भेद।

फलकी इच्छा त्याग कर कर्म करना भक्तको तीसरी कोटि है। यह पहली दो कोटियोंसे ऊँचे दरजेकी है, क्योंकि ईश्वरको मुख्य समझ कर कुछ करने और ईश्वरके लिये कर्म करनेमें कुछ अपना स्वार्थ रहता है, कुछ आसक्ति रहती है और फल पानेकी इच्छा रहती है; परन्तु इस फलत्यागकी तीसरी कोटिमें फलकी इच्छा ही नहीं रहती।

इसलिये पहली और दूसरी कोटिसे यह तीसरी कोटि श्रेष्ठ है। तो भी अर्पणविधिकी चौथी कोटिसे यह फलत्यागकी तीसरी कोटि निचले दरजेकी है; क्योंकि इसमें इतना अधूरापन रहता है कि फल पानेकी आशा और इच्छा तो घट जाती है, परन्तु यह काम जिसको सौंपना चाहिये

उसको अभी सौंपते नहीं बनता। जैसे, कोई ट्रस्टी अपने ट्रस्ट-के धनकी रक्षा करे और उसको आप अपने काममें न लावे तो भी जब तक वह धन जिसका हो उस हकदार वारिसको न सौंपे तब तक वह ट्रस्टीके पास पड़ा रहता है। यद्यपि ट्रस्टी उसे अपने काममें नहीं लाता तो भी जिस हकदारको वह धन मिलना चाहिये उसे जब तक न मिले तब तक ट्रस्टी-को उस धनके लिये फिकर करनी पड़ती है। इसी तरह कर्म्मोंके फलका लाभ हम न चाहते हों और उसकी आसक्ति अपने मनमें न रखते हों तो भी जब तक वे कर्म्म ईश्वरके अर्पण न कर दिये जायँ तब तक उनमें कुछ अधूरापन रह जाता है। इसके सिवा फलत्यागी कर्म्मयोग में बहुधा ऐसा होता है कि इस दरजेके ज्ञानी जगतके कल्याणके काम करनेमें जरा ढीले पड जाते हैं, परन्तु अर्पणविधि वाले भक्त विशेष उत्साहसे कर्म्म करते हैं। फलत्यागियों में कुदरती तौर पर एक प्रकारकी खास उदासीनता होती है, वैसी उदा-सीनता अर्पणविधि वालों में नहीं होती। इसका कारण यह है, कि फलत्यागी योगियों में वैराग्य का जोर अधिक होता है और अर्पणविधि वालोंमें प्रभु-प्रेमका बल अधिक होता है। इस लिये फलत्यागी कर्म्मयोग से अर्पणविधि श्रेष्ठ है। पर ये सब कोटियाँ एक एक करके अनुभवमें आती हैं इस वास्ते फलत्यागी कर्म्मयोग तीसरी कोटि है और अर्पणविधि अन्तकी चौथी कोटि है।

धर्मका अन्तिम ज्ञान।

इस तरह सब विषय समझ कर प्रेमपूर्वक अपनी जिंदगी ईश्वरके अर्पण करना धर्मकी मुख्य कुंजी है और यही सबसे बडा रहस्य है। अर्पणविधिसे ही जीवके सब पाप आ

सकते हैं। विना अर्पणविधिके, किसी एक विषयसे पूरा पूरा पाप नहीं जा सकता। ईश्वरको अपने सब काम दिये जा सकते हैं परन्तु अपना पाप ईश्वरको नहीं दिया जा सकता। ईश्वरको दिया हुआ एकका अनन्त गुना होकर अपनेको वापस मिलता है। कोई आदमी अपना पाप ईश्वर को दे और वह अनन्त गुना होकर उसे वापस मिले तो देने वालेका सत्यानाश ही हो जाय। इसलिये ईश्वरको अपना पाप नहीं दे सकते। इससे ईश्वरको मुख्य समझ कर कर्म करनेमें, ईश्वरके लिये कर्म करनेमें तथा फलकी इच्छा छोड़ कर कर्म करनेमें भी हमारी समझनेमें न आनेवाले, साफ न दिखाई देनेवाले और दोषके रूपमें न रह कर गुणके रूपमें घुसे हुए कितने ही छोटे छोटे पाप रह जाते हैं। परन्तु अर्पणविधिमें इन सब पापोंका नाश हो जाता है। अर्पणविधिमें सारी जिन्दगी ईश्वरके अर्पण कर देनी होती है, तब अपने तौर पर और कुछ भी बाकी नहीं रहता। इससे जो भक्त अपनी सारी जिन्दगी ईश्वरके अर्पण किये रहते हैं उन भक्तोंका पाप भी ईश्वर सम्हाल लेता है और माफ कर देता है। जैसे, किसी ब्राह्मण को चूहे छछूँदर और मल मच्छड़ नहीं दान देते परन्तु अपना समूचा घर दान कर दें तो उसमें चूहे छछूँदर और मल मच्छड़ भी आ जाते हैं। वैसे ही जो हरिजन अपनी सारी जिन्दगी ईश्वरके अर्पण कर देते हैं उनके पापको भी ईश्वर सम्हाल लेता और क्षमा कर देता है। इसलिये अर्पणविधि उत्तम है। जैसे समूचा घर दान किये बिना मल मच्छड़ या चूहे छछूंदरका दान ब्राह्मणको नहीं कर सकते वैसे अपनी जिंदगी ईश्वरके अर्पण किये बिना और किसी तरह अपना पाप ईश्वरको नहीं सौंप सकते। इसलिये अगर पूरे तौर पर पाप

से बचना हो, पवित्र जीवन बिताना हो, ऊंचे दरजेके प्रेमका लाभ लेना हो और अलौकिक अनुभव करना हो तो अपनी जिन्दगी ईश्वरको अर्पण करना सीखना चाहिये। यह भक्ति मार्गका मुख्य सिद्धान्त है और इसके लिये श्रीकृष्ण भगवानने भी कहा है कि—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

अ० ९ श्लो० २७

हे अर्जुन! तू जो कुछ काम कर, जो भोग कर, जो होम कर, जो दान दे और जो तप कर वह सब मेरे अर्पण कर। इस तरह अपनी जिन्दगीके सब कर्म्म ईश्वरके अर्पण करनेका नाम ही सन्न्यास है और इसीका नाम योग है। इसके सिवा ऐसा सन्न्यास लेने और ऐसा योग साधने से ही ईश्वर मिल सकता है और मोक्ष हो सकता है। इसलिये हमें अपनी जिन्दगी ईश्वरके अर्पण करना सीखना चाहिये। बन्धुओ! याद रखना कि यह कुछ हमारे घरकी बात नहीं है, वरंच श्रीमद्भगवद्गीता की बात है। इसके लिये श्रीकृष्ण भगवान ने कहा है कि—

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्म्मबन्धनैः
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥

अ० ९ श्लो० २८

हे अर्जुन! जब तू ऊपर कहे अनुसार अर्पणविधिका सन्न्यास पा लेगा तथा योग साधेगा तब शुभ और अशुभ फल वाले कर्मके बन्धनोंसे मुक्त होगा। और जब इन बन्धनों से पूरा पूरा छूटेगा तब तू मुझे पावेगा।

इस तरह अपनी जिन्दगी ईश्वरके अर्पण करके कर्तव्य पालने का नाम सर्वं धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज है।

भक्तों पर भगवानकी कृपा।

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेक शरणं व्रज" का ऊपर लिखे अनुसार हमने जो रहस्य समझा उसमें बड़ी भारी खूबी है; वह रहस्य बहुत ऊँचे दरजेका है, जिंदगी सुधार देने वाला है, अन्तिम है और मोक्ष देने वाला है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। तो भी आरम्भमें भक्तोंके जीवनमें अनुभव सहित यह ज्ञान नहीं आ सकता। इससे इस ज्ञान को अनुभवमें लानेके लिये कुछ दूसरी चीजोंकी जरूरत है। पहले छोटी दशाएँ भोगे बिना जीव एक बएक ऊपरकी दशामें नहीं जा सकता और इसमें उसका कुछ दोष भी नहीं है, क्योंकि जीवका ऐसा स्वभाव ही है और ईश्वरका ऐसा नियम ही है कि क्रम क्रमसे आगे बढ़ा जाय। इससे प्रभु जानता है कि सर्वधर्मान्परित्याज्य मामेक शरणं व्रज के हुकमकी तामील जीवोंसे एकबएक भली भाँति नहीं हो सकेगी और इसके बिना कभी कल्याण नहीं होने का। इसलिये भक्तवत्सल भगवान अपने भक्तों पर विशेष कृपा करके उन्हें अपने रास्तेमें लानेके निमित्त प्रेमपूर्ण रीतिसे कहता है कि—

सर्वगुह्यतम भूयः श्रृणु मे परमं वचः।
इष्टोऽसि मे दृढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितम्॥

अ० १८ श्लो० ६४

"तू मेरा बड़ा प्यारा है इससे तेरे कल्याणके लियेमैं अपना सबसे छिपा हुआ परम रहस्य फिर तुझसे कहता हूँ सुन।

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे॥

अ० १८ श्लो० ६६

मेरे मनका बन अर्थात् मेरी इच्छानुसार चलने वाला हो, मेरा भक्त हो, मेरे लिये कर्म करनेवाला हो और मुझे ही नमस्कार कर। तब, तू मेरा प्यारा है, इससे सच्ची प्रतिज्ञा करके तुझसे कहता हूँ कि तू मुझे ही पावेगा।

भक्तिके सफल न होनेका कारण।

भगवानका यह हुकम सुनकर आप कहेंगे कि इसमें नया पन क्या है? ऐसा तो हम हमेशा करते हैं। जैसे, मंदिरोंमें जाते हैं, पूजापाठ करते हैं, और मौके मौकेपर कुछ अच्छा काम भी करते हैं। तो भी इसमें कोई बड़ा फल हमें साफ तौरपर नहीं दिखाई देता। और भगवान कहते हैं कि इन्हीं विषयोंसे तुम मुझे पाओगे। तब इसमें क्या भेद है? इस तरह बहुत आदमियोंके जीमें यह सवाल उठता है। उसके जवाबमें जानना चाहिये कि आजकल हम जो कुछ भक्ति करते हैं और जो कुछ ईश्वर सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करते हैं वह सिर्फ तोतारटन्तू ज्ञान है, बाहरका ज्ञान है; शब्दोंकी चतुराई है; ऊपरी ज्ञान है, अकलकी चालबाजी है और बे तजरबेका सिर्फ जीभका लपरौनी ज्ञान है। और आजकल हम जो भक्ति करते हैं वह भक्ति भी पोल सी है, बाहर ही बाहर रह जानेवाली है, जीवको जगानेवाली नहीं है, लल्लोपत्तोवाली है, बिना भावनाकी है और अन्तःकरणसे जगी हुई नहीं है; वरंच रिवाजके मारे वंश परम्परासे चली आती हुई चालकी गुलामीकी और लेमगूपन की है। इस कारण यह भक्ति हमें जो

जीवन देना चाहिये वह नहीं दे सकती, जो प्रकाश देना चाहिये वह नहीं दे सकती, जिस उंचाईपर चढ़ाना चाहिये उसपर नहीं चढ़ा सकती, जो चरित्र सुधारना चाहिये उसे नहीं सुधार सकती और जो दिव्यदर्शन कराना चाहिये वह दिव्यदर्शन नहीं करा सकती तथा जो अलौकिक आनन्द देना चाहिये वह नहीं दे सकती। परन्तु ईश्वर जो कहते हैं वह भक्ति कुछ और ही किस्मकी है। जैसे. वह कहते हैं कि—

पहले, मन्मनाभव अर्थात् मेरे मनका बन। अब विचार कीजिये कि—

भगवानके मनका बननेके माने क्या ?

भाइयो! भगवानमें जो गुण हैं उन गुणोंको अपनेमें लानेका नाम है भगवानके मनका बनना। जैसे-भगवानमें अखण्ड दया है इसलिये हरिजनोंके मनमें दयाका सोता बहते ही रहना चाहिये। भगवान सब जीवोंका कल्याण चाहते हैं, वैसे ही हरिजनोंको सब जीवोंका कल्याण मनाना चाहिये। भगवान सबके ऊपर प्रेम रखते हैं, वैसे ही भक्तोंको सबके ऊपर प्रेम रखना चाहिये। जीवोंके कल्याणके लिये भगवान अपने दरजेसे नीचे उतरते हैं और अवतार लेते हैं वैसे ही महात्माओंको अपने दरजेका अभिमान छोड़कर अपने बन्धुओं के कल्याणका काम करना चाहिये। भगवान ज्ञानस्वरूप हैं, इसलिये हरिजनोंको ज्ञान प्राप्त करनेका कोई मौका न छोड़ना चाहिये। भगवानका हृदय सबसे, बड़ा है वैसे ही हरिजनोंको अपना हृदय बहुत विशाल रखना चाहिये। ईश्वर उदारसे उदार हैं वैसे ही हरिजनोंको अपनी हैसियतके अनुसार उदारसे उदार होना चाहिये। भगवानको हरिजन बहुत

पसन्द हैं वैसे ही हरिजनोंको हरिजन बहुत पसन्द आने चाहियें। भगवान ऐसा करते हैं कि सब जीवोंके लिये मोक्षका रास्ता खुले, वैसे ही सब हरिजनोंको ऐसा करना चाहिये कि भगवानका रास्ता खुले और भगवान प्रेम स्वरूप हैं वैसे हरिजनोंको प्रेमका ही रूप बन जाना चाहिये। इस तरह करने और ऐसा बर्ताव रखनेका नाम भगवानके मनका-बनना है। यह सब कह जाना तो सहज है परन्तु हो कैसे? इसके लिये।

मन्मा भवका दूसरा अर्थ

महात्मा लोग यह लगाते हैं कि मेरे मनका हो अर्थात् मेरी इच्छाके अधीन हो। जैसे, मुझे जो पसन्द है वही तुम्हें पसन्द होना चाहिये, मैं जिस रास्ते चलता हूँ उसी रास्ते तुम्हें चलना चाहिये, मैं जिस किसका विचार करता हूँ उसी किसका विचार तुम्हें करना चाहिये; मैं जीवों से जैसा बर्ताव करता हूँ वैसा ही बर्ताव तुम्हें जीवों के साथ करना चाहिये और बिना किसी स्वार्थ, लोभ या आलस के मैं जैसे काम करता हूँ वैसे ही तुम्हें भी काम करना चाहिये। मतलब यह कि मेरी इच्छा ही तुम्हारी इच्छा, मेरा सुख ही तुम्हारा सुख, मेरा मार्ग ही तुम्हारा मार्ग और मेरे नियम ही तुम्हारे नियम होने चाहियें। क्योंकि तुम पहलेसे ही मेरे हो, अन्तको भी मेरे ही हो और अब भी मेरे ही अंश हो। इसलिये मेरे सब गुणोंका लाभ लेनेका तुम्हें पूरा पूरा हक है और यह लाभ तभी मिल सकता है जब मेरी इच्छामें अपनी इच्छाको लीन कर दो। तुम अल्पज्ञ हो और मैं सर्वज्ञ हूँ इससे तुम अकेले अपनी मरजी मुताबिक चलकर ऐसा बल और ऐसा लाभ नहीं पा सकोगे। लेकिन मेरे मनके होगे अर्थात् मेरी इच्छा-

नुसार चलोगे तो मेरे बलसे तुम बलवान हो जाओगे। इसलिये हे हरिजनो! तुम मन्मनाभव मेरे मनके बनो। मेरे मनके बनो। मेरे मनके बनो।

हम अपनी मायाके मनके हैं।

तो क्या हम अभी भगवानके मनके नहीं हैं? उत्तर-नहीं। तब हम किसके मनके हैं? भाइयो! हम तो अपनी मायाके मनके हैं। इससे माया जैसे नचाती है वैसे हम नाचते हैं और मायाके पीछे पीछे फिरते हैं। जैसे, हमारा मन घड़ीमें मोचीटोले जाता है; घड़ीमें दुश्मनोंके विचारमें जाता है; घड़ीमें मौज शौकके विचारमें जाता है; घड़ीमें विकारोंके वश होता है; घड़ीमें आलसमें आ जाता है; घड़ीमें मलीनतामें समा जाता है; घड़ीमें किसीकी बुराई करने दौड़ता है; घड़ीमें तुच्छ कलहमें भिड़ जाता है और बारबार हमारा मन पापके काम या विचार करनेमें लग जाता है। अब बताइये कि यह मन मायाका कहलायगा या ईश्वरका कहलायगा? याद रखना कि यह मायाका ही मन है। और माया सदा ठगिन है इससे मायाके मनसे उद्धार नहीं हो सकता। हम जब तक मायाके मनके रहते हैं तबतक हमारी भक्ति पोलमपोल ही है और पोलपोलमकी भक्तिसे हम भवसागर नहीं तर सकते। अगर जन्म सार्थक करना हो और चौरासी लाख योनियोंके फेरेसे छूटना हो तो भगवानकी कही हुई सच्ची भक्ति करनी चाहिये। सच्ची भक्ति करने के लिये भगवानकी आज्ञानुसार भगवानके मनका होना चाहिये अर्थात् भगवानकी इच्छा अपनी इच्छामें मिलाकर भगवानका गुण अपनी जिन्दगीमें उतारना चाहिये। तभी उद्धार होगा। इसीसे भगवान कहते हैं कि 'मन्मनाभव' मेरे मनका बन।

अभी हम किसके भक्त हैं ?

जो मनुष्य भगवानके मनके नहीं हो सकते उनके लिये ईश्वरका दूसरा हुक्म यह है कि तुम मेरे भक्त बनो। तब क्या अभी हम भगवानके भक्त नहीं हैं ? उत्तर—नहीं। अभी तो हम अपने मैंपनके भक्त हैं; अभी तो हम अपने विकारोंके भक्त हैं; अभी तो हम अपने जोशके भक्त हैं और अभी तो हम ईश्वरके नहीं वरंच जीवके जीअपनमें ईश्वरसे जो कुछ जुदाई है उस जुदाईके ही भक्त हैं। इससे हमारे आचार-विचारमें, हमारी रीतिभांतिमें और हमारी भक्तिमें भी हमारा अभिमान ही आगे आगे रहता है। जैसे, हम पूजा करते हैं तो उसमें भी कुछ अभिमान होता है; मन्दिरमें जाते हैं तो उसमें भी कुछ अभिमान होता है; पाठ करते हैं या नाम स्मरण करते हैं तो उसमें भी कुछ अभिमान होता है; दान देते हैं तो उसमें भी कुछ अभिमान होता है; जरा-मरा व्रतनियम करते हैं तो उसमें भी कुछ अभिमान होता है; किसी पर स्नेह रखते हैं तो उसमें भी अभिमान होता है; अधिक क्या कहें ईश्वरका ज्ञान प्राप्त करते हैं या दूसरोंको देते हैं तो उसमें भी कुछ अभिमान होता है। जब अच्छे कामोंमें भी हमारा अभिमान आड़े आता है तब खराब कामोंके अभिमानका तो कहना ही क्या ? अब जरा गहरे उतर कर विचार कीजिये कि हम किसके भक्त हैं ? अभिमानके या ईश्वरके ? कहिये कि हम अहंकारके ही भक्त हैं। अहंकारके भक्तका क्या हाल होता है यह विचारना कुछ कठिन नहीं है। उसके लिये तो नरक तय्यार ही है। इस नरकसे हमें छुड़ानेके लिये प्रभु हमसे कहते हैं कि 'मद्भक्तो भव' मेरे भक्त बनो।

अभी हम भगवानके लिये नहीं वरंच अपने स्वार्थके लिये कर्म्म करते हैं।

पहले कहे श्लोकमें भगवानका तीसरा हुक्म यह है कि अगर तुमसे इस प्रकार मेरा भक्त होते न बने तो 'मद्याजी भव' अर्थात् मेरे लिये यज्ञ करने वाले बनो। अथवा मेरी पूजा करो। भगवानके लिये यज्ञ करनेका अर्थ है जगतके जीवोंके कल्याणके लिये अपना स्वार्थ त्यागना। इसलिये ईश्वरके निमित्त अपने स्वार्थका त्याग कर ऐसा कर्म्म करना चाहिये कि जिससे किसी जीवका कल्याण हो। यह प्रभुका तीसरा हुक्म है। अब यह प्रश्न उठता है कि क्या हम ईश्वरके लिये कर्म्म नहीं करते? उत्तरमें कहना चाहिये कि नहीं। हम ईश्वरके लिये कर्म्म नहीं करते वरंच अभी तो हम अपने स्वार्थ-के लिये ही कर्म्म करते हैं। और भगवानकी पूजा करने के बदले अपने स्वार्थकी ही पूजा करते हैं। जैसे, हम मन्दिरोंमें दर्शन या प्रार्थना करने जाते हैं तो वहां भी हमारे मनमें कुछ स्वार्थ होता है; परोपकारके काम करते हैं तो उसमें भी कुछ स्वार्थ होता है; श्राद्ध आदि क्रियाएं करते हैं तो उसमें भी कुछ स्वार्थ होता है; तीर्थयात्रा करते हैं तो उसमें भी कुछ स्वार्थ होता है; दूसरोंको कुछ मदद देते हैं या अपने ही कुटु-म्बकी भलाई करते हैं तो उसमें भी कुछ स्वार्थ होता है; मरों-के नामपर दानपुण्य करते हैं तो उसमें भी कुछ स्वार्थ होता है और मरते समय गरुड़ पुराण सुनते हैं या दान देते हैं तो उसमें भी हमारा कुछ स्वार्थ होता है। इस तरह हर विषयमें हमारा जीवन स्वार्थमय हो गया है और हम अपने ही स्वार्थ-की पूजा करनेवाले बन गये हैं। इसलिये भगवान कहते हैं कि अपना स्वार्थ त्याग करो और मेरे लिये कर्म्म करो।

अभी हम किसको नमते हैं ?

इसके बाद प्रभु कहते हैं कि अगर तुमसे यह न हो सके तो "मां नमस्कुरु" तुम मुझे नमस्कार करो। तो क्या हम अभी भगवानको नमस्कार नहीं करते ? नहीं। अभी तो हम लोकाचारके नियमोंको नमते हैं, अभी तो हम जातिके बंधनोंको नमते हैं, अभी तो हम बाहरी शिष्टाचारको नमते हैं; अभी तो हम चले आते हुए वंशपरम्पराके रिवाजोंको नमते हैं; अभी तो हम अपनी टेवोंको नमते हैं, अभी तो हम अपने मिजाजको नमते हैं अभी तो हम अपने हुक्कातमाखू, पानपत्ते और गांजाभांगके व्यसनोंको नमते हैं। अभी तो हम हाकिमोंके 'जो हुक्म' को नमते हैं; अभी तो हम अपनी अज्ञानताको नमते हैं और अभी तो हम अपनी देहको नमन करनेमेंही जिन्दगी खो डालते हैं। इस तरह खाली पोलमें रह जाते हैं। तिसपर भी यह डींग मारते हैं कि हम भगवानको नमते हैं ! ऐसी तुच्छ वस्तुओंको नमनेसे आत्माका कल्याण नहीं होता। इसलिये भगवान कहते हैं कि तुम मुझे नमस्कार करो।

भगवानके पास जानेकी चार सीढ़ियां।

बन्धुओ ! ईश्वरकी दया देखो ? पहले ही वह कबूलते हैं कि तुम मुझे बहुत प्यारे हो इससे मैं तुम्हारे कल्याणकी बात कहता हूं और वह यह कि तुम मेरी इच्छाके अधीन हो जाओ। अगर ऐसा न हो सके तो मेरी भक्ति करो अर्थात् अपना अहंकार छोड़ दो, अपनी जुदाई दूर करो। परन्तु यह करना बड़ा मुश्किल है। इसलिये आरम्भमें तुमसे यह न हो सके तो अपना स्वार्थ त्याग कर मेरे लिये कर्म करो, और अगर यह भी न हो सके तो जगतकी वस्तुओंका जितना आदर करते हो उससे अधिक मेरा आदर करना सीखो।

भगवान जो इस तरह हमसे कहते हैं उसमें उनकी खास दया है और बड़ा गहरा रहस्य है, क्योंकि वह जानते हैं कि जिज्ञासु एकदम ईश्वरके रास्तेमें जिस कदर चाहिये उस कदर आगे नहीं बढ़ सकते। इसलिये वह एक ही श्लोक में हमें चार किस्मके रास्ते बताते हैं। ये सब रास्ते क्रमसे एक एक करके आते हैं। इससे सब भक्तोंको इन रास्तोंसे होकर जाना पड़ता है। जैसे, जीव जब जगा नहीं रहता तब बड़ा ही मोहवादी होता है इससे जगतकी हर एक वस्तुमें आसक्ति रखता है और ईश्वरको नमनेके बदले वस्तुओं तथा रिवाजोंको नमा करता है। इसलिये भगवानका कहना है कि ऐसी पोलमें पड़े रहनेके बदले मुझे नमना सीख अर्थात् अपनी प्यारी वस्तुओं तथा अपने रिवाजोंसे मेरा अधिक आदर कर। शुरूमें इतना ही बने तब भी बहुत है यह समझ कर भगवान दयावश ऐसा कहते हैं। यह अवस्था बीतनेके बाद जीव एक कदम आगे बढ़ता है और एक सीढ़ी ऊंचे चढ़ता है। तब प्रभु कहते हैं कि अब तू मेरे लिये कर्म्म करनेवाला बन अर्थात् अपने स्वार्थका त्याग करना सीख। मनुष्य जब भक्ति करने लगता है तब पहले जगतकी सब वस्तुओंसे ईश्वरको बड़ा समझना सीखता है। फिर एक कदम आगे बढ़ने पर अपने स्वार्थका त्याग कर सकता है। तब प्रभु कहते हैं कि मेरे लिये कर्म्म कर। फिर जीव तीसरी सीढ़ी पर जानेको तय्यार होता है, तब प्रभु कहते हैं कि अपना अहंकार छोड़ कर मेरे पास आ। मनुष्य ईश्वरको बड़ा समझना और अपना स्वार्थ त्यागता है तो भी उसके मनमें अहंकार रहता है। इससे भगवान कहते हैं कि यह अहंकार छोड़ कर तू मेरे पास आ। क्योंकि जो हरिजन भग-

वानके लिये अपना स्वार्थ छोड़ सकता है वह भी मैंपनको नहीं छोड सकता। इसलिये मैंपन छोड़ना तीसरी सीढ़ी है। इसके बाद भक्ति मार्गकी अन्तिम या चौथी सीढ़ी आती है। उस समय प्रभु कहते हैं कि मेरी इच्छाके अधीन हो जा और मेरे मनको ही अपना मन बना डाल। यही भक्तकी सबसे उत्तम अवस्था है, यही अन्तकी दशा है, यही धर्मका फल है और यही जीवनकी सार्थकता है। भगवानकी इच्छाके अधीन होनेसे और उसीके मनमें अपना मन मिला देनेसे जीवकी छुटाई मिट जाती है और ऐसा करनेवाले भक्तको सच्चिदानन्दका आनन्द मिला करता है। परन्तु यह सब तभी होता है जब यह समझमें आवे कि जगतकी सब वस्तुओंसे ईश्वर मुख्य है; फिर अपना स्वार्थ त्यागा जाय; फिर अपना अहंकार छोड़ा जाय और फिर भगवद् इच्छाके अधीन हुआ जाय। यह सब रहस्य समझ कर अपनी जिन्दगीमें उतारना और उत्तम जीवन बिताना सीखना ही हरिजनोंकी मुख्य इच्छा होती है और यह प्रभुकी आज्ञा पालनेसे होती है। इसलिये जो भावुक हरिजन उत्तम होना चाहते हैं और सत्य वस्तुको जाननेके लिये ललचते हैं उनके जीमें अर्जुनकी तरह ये बातें सुननेके बाद यह प्रतिज्ञा होती है—

भगवानकी आज्ञा पालनेकी जीवकी प्रतिज्ञा।

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

अ० १८ श्लो० ७३

हे प्रभु! तुम्हारी कृपासे, मेरा मोह नष्ट हो गया, मेरा संशय मिट गया और मेरी स्मृति आगयी है इसलिये अब मैं तुम्हारा वचन मानूंगा।

ऐसा महानभक्त फिर क्या करता है? वह बारबार ईश्वरका उपकार माना करता है और शुद्ध अन्तःकरणसे पवित्र प्रार्थनाएँ किया करता है। क्योंकि मोह नष्ट हो जानेसे उसका मन और कहीं नहीं जाता; स्वरूपकी याद हो जानेसे वह उसीमें आनन्दी बना रहता है, संशय मिट जानेसे हृदयका बोझ हलका हो जाता है और वह अपनेको कृतार्थ मानता है। इससे बड़ी ही दीनतासे वह बारबार ईश्वरका उपकार माना करता है और दण्डवत् किया करता है। सारांश यह कि उसका सिर सदा झुका होता है। इसके बाद वह जब इस स्थितिसे दूसरी स्थितिमें जाना चाहता है तब उसकी नजरके सामने ईश्वरका हुक्म खड़ा होता है इससे वह खुले दिलसे शुद्धतापूर्वक कहता है कि हे प्रभु! तुम्हारा हुक्म पालनेको मैं तय्यार खड़ा हूँ। इसके बाद प्रभुसेवाके या जगतके व्यवहारके जो काम करने होते हैं उन सब कामोंमें वह मुख्य करके ईश्वरके हुक्मको ही देखा करता है और भगवद् आज्ञाको अपनी नजरके सामने रखकर ही सब काम करता है। वह आज्ञा यह है—

ईश्वरका हुक्म।

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

अ० ६ श्लो० ३२

जैसी मेरी आत्मा है वैसी ही सबकी आत्मा है, इसलिये जिस विषयसे मुझे दुःख होता है उस विषयसे दूसरोंको भी दुःख होता है और जिन वस्तुओंसे मुझे सुख होता है उन वस्तुओंसे दूसरोंको भी सुख होता है। जैसे मुझे दुःख पसंद नहीं वैसे किसी जीवको दुःख पसन्द नहीं है; इससे मुझे

किसी जीवको दुःख नहीं देना चाहिये; और जैसे मुझे सुख पसन्द है वैसे सब जीवोंको सुख पसंद है इसलिये जिससे सब जीव सुखी हों वैसा करना मेरा काम है। जो हरिजन ऐसा समझता और बर्ताव करता है उस योगीको हे अर्जुन! मैं श्रेष्ठ मानता हूँ।

यह नियम ध्यानमें रखकर ऊपर कहा ज्ञानी भक्त बर्ताव करता है, इससे उसको ऐसा लगता है कि जैसे मेरी वस्तुओंका चोरी चला जाना मुझे नहीं रुचता वैसे दूसरोंको अपनी वस्तुओंका चोरी जाना नहीं रुचता, इसलिये मुझे किसीकी चोरी नही करनी चाहिये। मेरे सामने कोई झूठ बोले तो मुझे नहीं सुहाता, वैसे ही दूसरोंको भी झूठ नहीं सुहाता इससे मुझे किसीके सामने झूठ नही बोलना चाहिये। मेरे ऊपर कोई क्रोध करे तो मुझे नहीं रुचता, इसी तरह दूसरोंको मेरा क्रोध करना नहीं रुचता इसलिये मुझे किसीपर क्रोध नहीं करना चाहिये। मैं अपने परिवारको पवित्र रखना चाहता हूँ वैसे ही सब मनुष्य अपने परिवारको पवित्र रखना चाहते हैं, इसलिये मुझे व्यभिचार न करना चाहिये, और मुझे कोई मारे तो मुझे बड़ा दुःख होता है वैसे ही दूसरे जीवोंको मारनेसे उनको भी दुःख होता है इसलिये मुझे किसी जीवको मारना नहीं चाहिये। इस तरह जो भक्त अपनेसे ही दूसरोंकी तुलना करता है वह किसीका बुरा नहीं कर सकता। इस रीतिपर ईश्वरसे जुड़े हुए योगियोंको भगवान श्रेष्ठ कहते हैं।

महात्माओंके लक्षण।

ऐसा उत्तम जीवन बितानेवाले समदृष्टि महात्माओंको स्वभावतः ऐसा जान पड़ता है कि—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥

अ० ६ श्लो० २९

परमात्मामें जगतके सब जीव तथा सब वस्तुएँ हैं और जगतके जीवोंमें तथा सब वस्तुओंमें परमात्मा आप रूपसे हैं। ऐसा उनको प्रत्यक्ष दिखाई देता है। जिनको ऐसा समदर्शन होता है उन महात्माओंके लिये प्रभु कहते हैं कि—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

अ० ६ श्लो० ३०

जो मुझे सब जगह देखता है और सबको मुझमें मौजूद देखता है उससे मैं किसी दिन अलग नहीं हूँ और वह मुझसे तनिक भी अलग नहीं है।

फिर ऐसे महात्मा एक कदम आगे बढ़ते हैं; उस समय उनको यह ज्ञान होता है कि 'वासुदेवः सर्वमिति' ये सब भगवानके ही रूप हैं। ऐसे महात्माओंके लिये भगवान कहते हैं कि—

बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥

अ० ७ श्लो० १९

बहुत जन्मपर-अन्तको ज्ञानी मेरी शरण आते हैं और यह अनुभव करते हैं कि सभी भगवानमय है। ऐसे अनुभवी महात्मा दुर्लभ हैं।

ऐसे महात्माओंको ही मोक्ष होता है। इसके लिये भगवान कहते हैं कि—

मामुपेत्य पुनर्जन्म दु खालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मान· संसिद्धि परमा गता·॥ अ० ८ श्लो० १५

पुनर्जन्म महादुःखदायक है और नाशवंत है, इसलिये जो महात्मा अन्तकी सिद्धिको पहुँच कर मुझे पाते हैं उनका फिरसे जन्म नहीं होता।

ऐसी पूर्णताको पहुँचना ही जिन्दगीकी सार्थकता है, यही धर्मका तत्त्व है, यही जीवकी अन्तिम इच्छा है और यही भक्तोंकी भाग्यशालिता है; क्योंकि जन्ममरणके बंधनसे छूटना और ईश्वरको पाना ही जीवकी अन्तिम गति है और यह सब ऊपर कहे अनुसार धर्मका रहस्य समझने तथा पालनेसे होता है। इसलिये सत्तेपमें यही कहना है कि—

यत्र योगेश्वर कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धर ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ॥ अ० १८ श्लो० ७८

जहाँ जीवोंको आनन्द देनेवाला तथा आकर्षण करनेवाला योगेश्वर भगवान है और जहाँ धनुषधारी अर्जुन है अर्थात् जहाँ जगा हुआ जीव है, जहाँ पुरुषार्थ करनेवाला जीव है, जहाँ पवित्र तथा वैराग्य स्वभाववाला जीव है, जहाँ ईश्वरका हुक्म पालनेकी प्रतिज्ञा करनेवाला जीव है और जहाँ अपने मनकी लगाम ईश्वरको सोंप देनेवाला अर्थात् भगवद् इच्छाके अधीन हुआ जीव है वहीं लक्ष्मी, बड़ी सफलता, वैभव और अचल नीति है यह मेरा मत है।

जिस हरिजनको धर्मकी यह कुंजी मिलती है उसे ईश्वरका ज्ञान प्राप्त करनेकी प्रबल इच्छा होती है, इससे ईश्वरी ज्ञान स्वर्गकी सीढ़ीकी दूसरी पैड़ी है। अब दूसरी पैड़ीमें ईश्वरी ज्ञानकी खूबी तथा उसे प्राप्त करनेकी आवश्यकताके विषयमें कहा जायगा।

दूसरी पैड़ी ।

ईश्वरी ज्ञान प्राप्त करनेके विषयमें ।

ईश्वरी ज्ञानकी खूबी ।

जबसे मनुष्य-जातिके अंदर धर्मकी रुचि जगी तबसे आजतक जगतके सब संत ईश्वरी ज्ञानकी महिमा गाया करते हैं। और एक देशके, एक कालके या एक धर्मके ही लोग नहीं वरंच जगतमें सब देशोंके, सब समयके और सब धर्मके महात्मा तथा हरिजन ईश्वरी ज्ञानकी खूबी बयान करते हैं, इतना ही नहीं पृथिवीके हर धर्मके शास्त्रोंमें ईश्वरी ज्ञानकी महिमा खास करके कही हुई है और स्वर्गके देवता भी ईश्वरी ज्ञानकी महिमा गाया करते हैं। ईश्वरी ज्ञान ऐसा उत्तम है। इसलिये उसकी खूबी समझना सब हरिजनोंका मुख्य कर्त्तव्य है।

ईश्वरी ज्ञान किसको मिल सकता है ?

अब हमें यह जानना चाहिये कि ईश्वरी ज्ञान प्राप्त करनेको तो लोग कहते हैं परन्तु यह ज्ञान किसको मिल सकता है ? और यह ज्ञान किस लिये प्राप्त करना चाहिये ? ये दो प्रश्न हैं। इनके लिये श्रीकृष्ण भगवान अर्जुनसे कहते हैं कि—

"इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात् ॥

अ० ९ श्लो० १

तू दोष दृष्टिवाला नहीं है वरंच गुणग्राहक शक्तिवाला

है, इसलिये तुझसे अनुभवमें आ सकने योग्य बहुत ही दिव्य ज्ञान कहता हूँ जिसको पाकर तू सब तरहकी खराबियोंसे बच जायगा।

ऊपर जो दो प्रश्न पूछे हैं उन दोषोंका खुलासा इस श्लोकमें होजाता है। पहला प्रश्न यह है कि ईश्वरी ज्ञानका अधिकारी कौन है? इसके उत्तरमें प्रभु कहते हैं कि जिसमें दोषदृष्टि न हो, गुणग्राहक शक्ति हो वही हरिजन ईश्वरी ज्ञानका अधिकारी होता है। कितनी ही साधारण वस्तुओंको रखनेके लिये भी खास खास क़िस्मके बर्तनोंकी जरूरत पड़ती है: तब ईश्वरी ज्ञानको रखनेके लिये भी मनुष्यमें कुछ विशेष प्रकारकी योग्यता होनी चाहिये, इसमें कुछ नयी बात नहीं है। जैसे, दही तांबेके बर्तनमें रखनेसे कलिया जाता है और वह बिगड जाता है परन्तु मिट्टीके, लकड़ीके या कलई किये बर्तनमें रखनेसे नहीं बिगड़ता। दूध खारवाले या खटाईवाले बर्तनमें रखनेसे बिगड जाता है परन्तु मट्टीके बर्तनमें नहीं बिगड़ता। तेल पीतलके बर्तनमें रखनेसे बिगड़ जाता है मगर चमड़े, लकड़ी, काच या मिट्टीके बर्तनमें रखनेसे नहीं बिगड़ता। बिजली भी खास ही खास चीजोंमें रहती है और खास खास चीजोंसे आप ही आप चली जाती है। इसी तरह जगतकी साधारण चीजोंको सम्हालनेके लिये भी उनके अनुकूल पात्रोंकी जरूरत पड़ती है तब ईश्वरी ज्ञानके लिये मनुष्यकी योग्यता देखना स्वाभाविक ही है। वह योग्यता यही है कि अच्छे विषयोंमें दोषदृष्टि न हो, सारग्राही हो। इतनी योग्यता हो तो ईश्वरी ज्ञान मिल सकता है। ऐसी योग्यता बिना ईश्वरी ज्ञान की खूबी समझमें नहीं आ सकती।

ईश्वरी ज्ञान प्राप्त करनेके लिये कितनी बड़ी योग्यता चाहिये जरा ख्याल तो कीजिये।

दूसरे हमें यह भी सोचना चाहिये कि साधारण चीजोंका ज्ञान प्राप्त करनेके लिये भी किस किसकी योग्यता दरकार है। जैसे, अच्छा वकील होनेके लिये छटादार रीतिसे बोलना आना चाहिये; मुख्य मुख्य बातें समझ जानेकी शक्ति होनी चाहिये; दूसरोंके मनकी बात निकाल लेनेकी युक्ति आनी चाहिये; स्मरण शक्ति प्रबल होनी चाहिये; मनुष्यको शककी निगाहसे देखनेकी आदत डालनी चाहिये; अटकल लगाना तथा अनुमान करना, आना चाहिये और अपने मवक्किलपर तथा विरुद्ध पक्षके साक्षियों पर और मजिस्ट्रेट पर अपने विचारोंकी छाप डाल देनेकी योग्यता होनी चाहिये; तब आदमी एक अच्छा वकील हो सकता है। इसी तरह जिसको खेतीबारीका अभ्यास करना है और इस विषयमें आगे बढ़ना है उसको, पहले शरीर-बलकी जरूरत है, फिर बैल, गाय, भैंस बछड़े आदि पर प्रेम रखना आना चाहिये; सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि सहनेके लिये सहनशीलता होनी चाहिये; स्वयं परिश्रम करनेमें शर्म न लगनी चाहिये; जमीनकी किस या बीज पहचाननेकी अकल होनी चाहिये; भिन्न भिन्न ऋतुओंका भिन्न भिन्न लाभ लेनेकी समझ होनी चाहिये; सादगीसे जिन्दगी बितानेकी आदत डालनी चाहिये; जंगलमें अकेले अपने खेतमें रहनेकी हिम्मत होनी चाहिये और इसी तरहके दूसरे गुण होने चाहियें। ये सब गुण हों, तभी आदमी पक्का खेतिहर हो सकता है। इसी तरह रसायन शास्त्र सीखनेके लिये वस्तुओंका कारण जाननेका शौक होना चाहिये; भिन्न

भिन्न पदार्थोंकी तुलना करना आना चाहिये, छोटी छोटी बातों पर भी खूब ध्यान देनेकी आदत होनी चाहिये, बहुत देर तक कुछ परिणाम न आता जाय तो भी धैर्य रखकर हमेशा अपने प्रयोगोंमें लगे रहना चाहिये, दूसरे लोगोंको बहुत तुच्छ लगने वाली वस्तुओंकी भी जी लगाकर जांच पड़ताल करनी चाहिये; नये आविष्कारकोंने जो नये अविष्कार किये हों उनका हाल चाल लेते रहना चाहिये और उनकी सफलता तथा असफलताका कारण समझना चाहिये, इसके सिवा ऐसी दृढ़ इच्छा रखनी चाहिये कि मुझे कुछ खास नया काम करना है। ऐसे ऐसे बहुतसे गुण हों तब इस विद्यामें सफलता मिल सकती है। इसी प्रकार डाक्टर शिक्षक, जासूस, हाकिम, व्यापारी, यात्री, मदारी, सर्कस चलानेवाले, नाटक खेलनेवाले आदिका काम सीखनेके लिये कुछ खास गुण और खास लियाकत चाहिये। तब विचार कीजिये कि जिस ज्ञानसे जिंदगी सुधर जाय, जिस ज्ञानसे जन्ममरणका बन्धन छूट जाय, जिस ज्ञानसे ईश्वरका साक्षात्कार हो और जिस ज्ञानसे अनन्त कालका अखण्ड आनन्द भोगा जाय उस ईश्वरी ज्ञानको प्राप्त करनेके लिये कितनी बड़ी योग्यता चाहिये। जरा ख्याल तो कीजिये। तिस पर भी प्रभुकी दया देखिये कि गुणग्राहक दृष्टिसे ही इस ज्ञानका अधिकार मिल जाता है।

दूसरोंका दोष ढूंढनेमें मत रह जाना।

सारग्राही दृष्टि पर प्रभु जो इतना अधिक जोर देते हैं उसका कारण यही है कि बहुत आदमी हमेशा अच्छी वस्तुओंको भी बहुत हलकी नजरसे देखते हैं और उनमें भी दोष ही ढूंढ़ा करते हैं, इससे उनको ईश्वरी ज्ञान नहीं मिलता। जैसे,

कोई महात्मा बहुत निस्पृह होकर जगतकी सेवा करते हों, बड़ी शान्तिसे पवित्रता सहित अपना जीवन बिताते हों मानसिक उत्तमता और भावनाओंके प्रदेशमें रमते हों, उनमें जगतका बहुत कुछ मोह घट गया हो और वह कुछ विशेष ऊंची दृष्टि रखकर काम करते हों तो उनके लिये भी बिना किसी सबूत या बिना किसी कारणके बहुत लोग यह कह देते हैं कि इनमें भी कुछ स्वार्थ होगा; आजके जमानेमें कोई बिल्कुल निर्दोष नहीं होता ये सभी बगला भगत हैं। ऐसी ऐसी नुक्ताचीनी किया करते हैं। ऐसे महात्माओंसे पहले किसी आदमीसे झगड़ा हुआ हो या उनसे कोई छोटी मोटी भूल हुई हो तो उसकी नकल उतार कर उनकी निन्दा किया करते हैं परन्तु उनमें जो अनेक प्रकारके गुण होते हैं उनसे वे लाभ नहीं उठाते। इससे ईश्वरी ज्ञान उनको नहीं मिलता। इसी तरह कोई पुस्तक बहुत अच्छी हो, उसके लेखकने बहुत परिश्रम किया हो और बहुत लोग उस पुस्तककी प्रशंसा करते हों तो भी दोष दृष्टिवाले उसमेंसे अपने पसन्द न आनेवाले कुछ वाक्य ढूंढ़कर उसकी निन्दा करते हैं परन्तु उसमें जो हजारों अच्छे वाक्य होते हैं उनको वे नहीं देखते। इसके सिवा कितनी ही बार तो उस पुस्तकके लेखककी खानगी जिन्दगी पर अनुचित आक्षेप किया करते हैं और कोई जरा सी बात न रुची हो तो उसके लिये समूची पुस्तककी और उसके लेखककी भी फजीहत किया करते हैं। जैसे श्रीमद्भगवद्गीता जैसी सर्वमान्य पुस्तकके बारेमें भी कितने ही कहते हैं कि कृष्णने क्या अच्छा किया, सबको मरवा डाला यही न था और कुछ? दूसरे कितने ही बालकी खाल निकालते हुए एकाध वचन पकड़ कर कहते हैं कि नायं हन्ति न हन्यते न कोई

मरता है और न मारा जाता है तब हिंसा करनेमें क्या पाप है? इस तरह भिन्न भिन्न शब्द पकड़ कर भिन्न २ मनुष्य अपनी अपनी कल्पनाके अनुसार और अपने अपने मिजाजके अनुसार तरह २ की बातें कहा करते हैं परन्तु उसका सार नहीं लेते। इसीसे उनको ईश्वरी ज्ञान नहीं मिलता। ईश्वरी-ज्ञान प्राप्त करनेके लिये सबसे बड़ी योग्यता यह चाहिये कि मनुष्य गुणग्राहक दृष्टिवाला बने, सारग्राही हो और शुभेच्छा रखे। मगर जैसे बड़े भारी और सुन्दर महलमें भी चींटी छेद ही ढूंढ़ती है और सारे शरीरकी सुन्दरता छोड़कर मक्खी जैसे दुर्गंधवाली जगह या जखम ढूंढती है वैसे बहुतेरे आदमी दूसरोंका दोष देखनेमें, दूसरों की भूल निकालनेमें, दूसरोंका भंडाफोड़ करनेमें और दूसरोंका पाप सोचते रहनेमें ही अपनी जिंदगी को डालते हैं इससे उनको ईश्वरी ज्ञान नहीं मिलता। अगर ईश्वरी ज्ञान प्राप्त करना हो तो ऐसे विषयोंमें मत रह जाना।

जो आदमी दूसरोंका दोष देखा करते हैं वे स्वयं दोषी होते हैं।

इसीसे उनको अपना दोष दूसरोंमें दिखाई देता है। जैसे, कोई बहुत कंजूस होनेसे किसीको कुछ देता लेता न हो और कोई गरीब आदमी उससे कुछ मांगने जाय तो वह उसको भी लोभी ही समझता है। बेचारे गरीब भिखमंगोंको लाचारी दरजे मांगना पड़ता है और ऐसे लाचारोंकी मदद करना जिनसे हो सके उनका फर्ज है, उनमें भी अमीरोंका तो यह खास धर्म है तथापि कंजूसीके मारे वह किसीको कुछ नहीं देता, और उलटे सामनेके आदमियोंको लोभी समझा करता है और कहता है कि आजके जमानेमें सब आदमी बड़े स्वार्थी होगये;

हैं, सब भिखमंगे हो गये हैं और सब लोभी होगये हैं। लेकिन आप साधन रहते हुए भी किसीको कुछ नहीं देते और अपना यह लोभ उनको नहीं दिखाई देता। उल्टे अपना लोभ दूसरोंमें देखते हैं। इसी तरह कोई आदमी बहुत क्रोधी हो तो उसके क्रोधसे क्रुद्ध होकर दूसरे आदमी भी उसपर मिज़ाज बिगाड़ते हैं। इस तरह अपने दोषके कारण वह दूसरे बहुत आदमियोंको मिज़ाज बिगाड़ते देखता है और समझता है कि सभी क्रोधी हैं। इसी प्रकार हर विषयमें मनुष्यको अपना अवगुण दूसरे मनुष्योंमें दिखाई देता है। इसलिये जो आदमी दूसरोंका बहुत दोष देखते हों, समझना कि उनके भीतर कुछ खास किस्मका गहरा पाप मौजूद है और उस पापके कारण ही उनको ईश्वरी ज्ञान नहीं मिलता। इसके लिये महाभारतमें दृष्टान्त है कि दुर्योधनसे श्रीकृष्णने एक सभामें कहा कि इस सभामें जो अच्छा आदमी हो उसका नाम मुझे बताओ। दुर्योधनने कहा कि मुझे तो कोई अच्छा आदमी नहीं दिखाई देता। इसके बाद श्रीकृष्णने वहीं युधिष्ठिरसे कहा कि इस सभामें जो खराब आदमी हो उसका नाम मुझे बताओ। युधिष्ठिरने कहा कि मुझे तो सभी अच्छे लगते हैं इनमें कोई खराब आदमी नहीं दिखाई देता। अब बताइये कि क्या उस सभामें सभी खराब आदमी थे? कहिये कि नहीं? तो क्या उस सभामें सब आदमी अच्छे ही थे? नहीं। परन्तु दुर्योधन तथा युधिष्ठिरका जैसा हृदय था वैसा ही उन्हें सब मनुष्य दिखाई दिये। इसी तरह हमें भी अपने ही दोष या अपने ही गुण दूसरे मनुष्योंमें दिखाई देते हैं। इसलिये हमें दूसरोंका दोष दिखाई दे तो समझना कि यह हमारी ही कमजोरी है, हमारी ही नालायकी है और हमीमें इस किस्मका भारी पाप मौजूद

है। याद रखना कि जब तक हममें ऐसा पाप है तब तक हमें उससे उत्तम ईश्वरी ज्ञान नहीं मिल सकता। इसलिये श्रीकृष्ण भगवान कहते हैं कि जब दूसरोंके गुणोंमें दोष नहीं देखोगे तभी तुम ईश्वरी ज्ञानके अधिकारी हो सकोगे।

हमें दूसरोंका दोष क्यों दिखाई देता है?

इससे समझना चाहिये कि हम अपनी भूलके कारण दूसरोंके जितने अवगुण देखते हैं उतने अवगुण उनमें नहीं होते परन्तु हमें कांवला हुआ है इससे सब पीले ही पीले दिखाई देते हैं। हम रंग व रंगके चश्मे पहने रहते हैं इससे हमारे चश्मेके रंगके अनुसार सामने के आदमीका तथा दुनियाका रंग दिखाई देता है; परन्तु ऐसा होना अपूर्णता है और ऐसी पोलमें पड़े रहना एक प्रकारकी अधोगति है। इस बातका ख्याल रखना कि अन्त तक ऐसे ही दोषदृष्टिवाले न रह जाओ।

दूसरे, इससे यह भी समझना चाहिये कि जब दूसरोंका दोष देखना बहुत बुरा है तब दूसरोंके गुणोंमें भी दोष देखना कितना बुरा है। बड़ा ही बुरा है। इसीसे भगवान कहते हैं कि जो दूसरोंके गुणमें दोष ढूँढ़ता है वह आदमी ईश्वरी ज्ञानका अधिकारी नहीं है। इसलिये अगर जिन्दगी सार्थक करनेवाला ईश्वरी ज्ञान प्राप्त करना हो तो सारग्राही दृष्टि रखो, गुणग्राहक बनो, शुभेच्छा रखना सीखो और यह ज्ञान पानेके लिये प्रभु जैसा कहते हैं वैसा करो। वह कहते हैं—

> तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
> उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः॥
>
> अ० ४ श्लो० ३४

ईश्वरी ज्ञान प्राप्त करनेके लिये ईश्वरको पहचाननेवाले महात्माओंको नमस्कार कर, उनसे बार बार पूछ और उनकी सेवा कर तब वे तुझको ज्ञानका उपदेश देंगे।

भाइयो ! याद रखना कि इस तरह महात्माओंका आदर मान किये बिना, उनका सत्संग किये बिना और उनकी सेवा किये बिना सच्चा ईश्वरी ज्ञान नहीं मिल सकता। अतएव ईश्वरी ज्ञान पानेके लिये महात्माओंका सम्मान करना चाहिये, उनके सत्संगमें रहना चाहिये और उनकी सेवा करनी चाहिये। इसके बिना मनमाने ढंगपर चलनेसे ईश्वरी ज्ञान नहीं मिल सकता। इसलिये दोषदृष्टि छोड़कर महात्माओंके संगमें रहो तब आसानीसे ईश्वरी ज्ञान मिल सकेगा।

ईश्वरी ज्ञान क्यों प्राप्त करना चाहिये ?

अब दूसरी मुख्य बात यह जाननी है कि ईश्वरी ज्ञान किस लिये प्राप्त करना चाहिये ? इसके जवाबमें श्रीकृष्ण भगवान अर्जुनसे कहते हैं कि अशुभसे बचनेके लिये यह ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। अशुभसे बचनेके लिये अर्थात् सब तरहकी खराबियोंसे बचनेके लिये, शैतानसे बचनेके लिये, पापसे बचनेके लिये, मायासे बचनेके लिये, गुलामीसे बचनेके लिये और सब तरहकी अलाबलासे बचनेके लिये यह ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जैसे, शरीरके रोगोंसे बचनेके लिये, मनके विकारोंसे बचनेके लिये, धनके मदसे बचनेके लिये, मायाके मोहसे बचनेके लिये, वाणीके कपट तथा दाव पेचसे बचनेके लिये, इन्द्रियोंकी विषयलालसाकी बाढसे बचनेके लिये, बुद्धिकी जड़ता तथा अभिमानसे बचनेके लिये, व्यावहारिक चोटोंसे बचनेके लिये, सुखदुःखके धक्कोंसे बचनेके लिये, कुदरती आफतोंसे बचनेके लिये और प्रारब्धके बन्धनसे

बचनेके लिये ईश्वरी ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जगतमें जितनी तरहकी आफतें हैं और जो कुछ अधूरापन है उन सबसे बचानेवाला ईश्वरी ज्ञान है। इसवास्ते सब प्रकारके अशुभसे बचनेके लिये तथा अपना और दूसरे लोगोंका कल्याण करनेके लिये हमें ईश्वरी ज्ञान प्राप्त करना चाहिये।

ईश्वरी ज्ञानकी महिमा।

इस प्रकार ईश्वरी ज्ञान सब तरहकी आफतोंसे बचानेवाला है; इसलिये महात्मा, ऋषि, मुनि और देवता भी इस ज्ञानकी स्तुति करते हैं; यहां तक कि स्वयं श्रीकृष्ण भगवान भी इस ज्ञानकी महिमा गाते हैं और कहते हैं कि—

राजविद्या राजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम्।
प्रत्यक्षावगमं धर्म्यं सुसुखं कर्तुमव्ययम्॥

अ० ९ श्लो० २

यह ज्ञान सब तरहकी विद्याओंसे श्रेष्ठ है, गुप्तसे गुप्त है, पवित्र है, उत्तम है, प्रत्यक्ष फलवाला है, धर्मवाला है, सहजमें पालने योग्य है और किसी दिन इसका नाश नहीं होता।

१. इस जगतमें अनेक प्रकारकी विद्याएं हैं। जैसे, आकाशकी विद्या (खगोल शास्त्र), पातालकी विद्या (भूस्तर शास्त्र) बिजलीकी विद्या, रसायन शास्त्र, भूत भविष्य जाननेकी विद्या, गणित विद्या, युद्धकला, वैद्यक शास्त्र, न्याय शास्त्र, खेतीबारीकी विद्या और पदार्थ विद्या तथा जंतु शास्त्र इत्यादि सैकड़ों प्रकारकी विद्याएं हैं। इन सब विद्याओंसे ईश्वरी ज्ञान श्रेष्ठ है। और किसी विद्यासे अन्तिम शान्ति नहीं मिलती न मोक्ष मिलता; परन्तु ईश्वरी ज्ञानसे मोक्ष मिल सकता है। इसलिये जगतमें सब ज्ञानसे ईश्वरी ज्ञान श्रेष्ठ है।

ईश्वरी ज्ञान सबसे ऊंचा है।

२. संसारमें जितनी ऊंची बातें हैं उन सबसे ऊंचा ईश्वरी ज्ञान है, इसमें सबसे अधिक रहस्य है और ऐसा है कि जल्द समझमें नहीं आता। और सब प्रकारके ज्ञानकी बात यह है कि कुछ ज्ञान बाहरी वस्तुओंसे मिलता है, कुछ ज्ञान मनकी मार्फत मिलता है, कुछ ज्ञान बुद्धिकी मार्फत मिलता है और कुछ ज्ञान किसी घटनासे तथा पूर्वके संस्कारोंसे मिलता है। ईश्वरी ज्ञान इस तरह नहीं मिलता; क्योंकि स्थूल वस्तुओंके ज्ञानसे सूक्ष्म वस्तुओंका ज्ञान प्राप्त करना कठिन है और उसमें भी कारण तथा महाकारणका ज्ञान पाना बहुत कठिन है। याद रखना कि ईश्वरका स्वरूप सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म है और कारण तथा महाकारणसे भी परे है; इतना ही नहीं, जगतकी और सब वस्तुओंका ज्ञान मन, वचन, कर्म और बुद्धि आदि साधनोंसे हो सकता है परन्तु ईश्वरका ज्ञान ऐसे साधनोंसे नहीं हो सकता; क्योंकि वहां कर्म नहीं पहुँच सकते, इन्द्रियां नहीं पहुँच सकतीं, वाणी नहीं पहुँच सकती, मन नहीं पहुँच सकता और वहां बुद्धि भी नहीं पहुँच सकती। परमात्माको तो सिर्फ हमारी आत्मा ही पकड़ सकती है और आत्मा तक पहुँचना बड़ा दुर्लभ है। इसलिये ईश्वरी ज्ञान गुप्तसे गुप्त और ऊंचेसे ऊंचा है। वह ज्ञान इन सब तहोंके भीतर है। इसलिये जो ज्ञानी भक्त इन सब तहोंको हटा कर अन्दर आ सकता है और गहरे उतर सकता है उसीको यह ज्ञान मिल सकता है। इसके लिये श्रीकृष्ण भगवानने भी कहा है कि—

> आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
> आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥
>
> अ० २ श्लो० २९

किसीको यह आश्चर्य सा दिखाई देता है, कोई इसको आश्चर्य सा कहता है, कोई इसको आश्चर्य सा सुनता है और कोई तो सुनने पर भी नहीं समझता।

ईश्वरमें एक दूसरेके विरुद्ध धर्म्म भी हैं इसलिये ईश्वरी ज्ञान समझना कठिन है।

आत्मा–परमात्माका ज्ञान ऐसा आश्चर्यकारक है और आसानीसे समझमें आने योग्य नहीं है; क्योंकि इसमें एक दूसरेके विरुद्ध धर्म्म भी हैं। जैसे, परमात्मा सब जगह है, लेकिन एक जगह भी रह सकता है। इसी प्रकार वह कुछ करता या कराता नहीं तिसपर भी वही सब कुछ करता है। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्त्तते॥

अ० ५ श्लो० १४

ईश्वर लोगोंके कर्म्मोंको नहीं बनाता न लोगोंसे कर्म्म कराता है और न कर्म्मका फल ही देता है; बल्कि यह सब स्वभावसे ही होता है।

एक ओर ईश्वरके लिये यह कहा है और दूसरी ओर उसी ईश्वरके लिये यह भी कहा है कि—

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया॥

अ० १८ श्लो० ६१

जैसे यंत्रके ऊपर बैठे हुए पुतलोंको अपनी इच्छानुसार घुमा सकते हैं वैसे ही हे अर्जुन! ईश्वर सब प्राणियोंके हृदयमें रहकर अपनी मायासे सब जीवोंको चलाते हैं।

ऐसे परस्पर विरुद्ध गुणवाले ईश्वरका ज्ञान साधारण लोगोंको आसानीसे नहीं मिल सकता; यहाँ तक कि किसीके सिखानेसे भी यह ज्ञान अनुभवमें नहीं आ सकता। यह ज्ञान तो जब भक्तमें योग्यता आती है तब आपसे आप ही उसमें प्रगट होता है। इसके लिये प्रभु कहते हैं कि—

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति।

अ० ४ श्लो० ३८

जिसका जीव ईश्वरके साथ भली भाँति जुड गया है उस महात्माके हृदयमें समय आनेपर आपसे आप ही ईश्वरी ज्ञान प्रगट होता है। इसीसे ईश्वरी ज्ञान बड़ा गूढ़ कहा जाता है। इसलिये

शुद्ध अन्तःकरणवाले हरिजनोंपर उच्च ईश्वरी ज्ञान समझानेसे ईश्वर बड़ा प्रसन्न होता है।

इसके लिये भगवान ने कहा है कि—

य इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥

अ० १८ श्लो० ६८

जो मुझमें पराभक्ति रखकर इस बहुत श्रेष्ठ और बड़े गूढ़ ज्ञानको मेरे भक्तोंके अंतःकरणमें बिठावेगा वह मुझे ही पावेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

इतना ही नहीं, ऐसा ज्ञान अपने जीवनमें दिखानेवाले तथा यह ज्ञान दूसरोंको देनेवालेके लिये भगवान और भी कहते हैं; वह भी सुन लीजिये—

न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

अ० १८ श्लो० ६९

प्रभु कहते हैं कि जो मनुष्य मेरा ज्ञान समझकर उसपर चलता है और दूसरोंको समझाता है उसके बराबर इस दुनियामें और कोई मनुष्य मुझे न तो प्यारा है, न हुआ और न होगा ।

ऐसा गहरा और गुप्त ईश्वरी ज्ञान है । इसलिये जिन्दगी सार्थक करनेवाले, हृदयका दरवाजा खोल देनेवाले और ईश्वरके हजूर ले जाकर उससे तन्मय करा देनेवाले इस ईश्वरी ज्ञानको पाने तथा फैलानेकी विशेष चेष्टा सब हरिजनोंको करनी चाहिये । इसीमें आत्माका कल्याण है । यह ईश्वरका प्यारा काम है । इसलिये ईश्वरी ज्ञानका रहस्य समझिये :

ईश्वरी ज्ञान पवित्र है और दूसरोंको पवित्र करनेवाला है ।

३. ईश्वरी ज्ञान स्वयं पवित्र है और दूसरोंको पवित्र करनेवाला है । जगतमें और भी अनेक प्रकारके ज्ञान हैं परन्तु उन सबमें अहंकार होता है, स्वार्थ होता है, तोड़फोड़ होती है, भेदभाव होता है और एकको चढ़ाने तथा दूसरेको गिरानेकी बात होती है; इतना ही नहीं उन सब ज्ञानोंमें कुछ अधूरापन होता है तथा उनके कामोंमें कुछ मामूली दोष मिला हुआ होता है । इसलिये ईश्वरी ज्ञानके सिवा जगतका और कोई ज्ञान जैसा चाहिये वैसा निर्मल नहीं होता । और किसी ज्ञानको जो आदमी प्राप्त करता है वह पूरा पूरा पवित्र नहीं हो सकता । परन्तु ईश्वरी ज्ञान सबसे पवित्र है, इसलिये जो इस ज्ञानको पा जाता है उस महात्माकी जिन्दगी पवित्र हो जाती है । इसके लिये प्रभुने भी कहा है कि—

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ॥

अ० ४ श्लो० ३८

इस जगतमें ज्ञानके ऐसा पवित्र और कुछ भी नही है; क्योंकि ईश्वरी ज्ञान सब कर्मोंको भस्म कर देता है। इसके लिये प्रभुने भी कहा है कि—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ॥

अ० ४ श्लो० ३७

जैसे सुलगी हुई आग लकड़ीको जलाकर राखकर देती है वैसे ही हे अर्जुन ! ज्ञानकी आग सब कर्मोंको जलाकर भस्म कर देती है। इस प्रकार ज्ञानकी आग सब कर्मोंको जला देती है। श्री कृष्ण तो यहाँ तक कहते हैं कि—

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥

अ० ४ श्लो० ३६

अगर तू सब पापियोंसे भी अधिक पाप करनेवाला हो तो भी ज्ञानरूपी जहाजसे सब पाप रूपी समुद्रको तू सहज ही पार कर जायगा।

ईश्वरी ज्ञान ऐसा पवित्र है और दूसरोंको पवित्र करनेवाला है, इसलिये अगर पवित्र होना हो, जिन्दगी सुधारना हो और सर्व शक्तिमान महान ईश्वरका प्रिय होना हो तो इस पवित्र ईश्वरी ज्ञानको प्राप्त करना चाहिये।

जगतके सब ज्ञानोंसे ईश्वरी ज्ञान उत्तम है।

४. जगतके हर एक ज्ञानसे ईश्वरी ज्ञान उत्तम है। क्योंकि जगतके और सब व्यवहारी ज्ञानोंसे तो धन मिलता है, मान मिलता है, मित्र मिलते हैं, वैभव मिलता है और कई तरहके

सुख मिलते हैं परन्तु उन विद्याओंसे परमात्मा नहीं मिलता और ईश्वरी ज्ञानसे स्वयं परमात्मा मिलता है। इसलिये ईश्वरी ज्ञान सर्वश्रेष्ठ है।

इस जगतकी चाहे और जितनी विद्याएं प्राप्त कर लीजिये उनसे जीवको अन्तिम आनन्द नहीं मिलता; क्योंकि ईश्वरी ज्ञानको छोड़कर और किसी तरहके ज्ञानसे ईश्वरका साक्षात्कार, नहीं हो सकता। इसीसे पहलेके पवित्र ऋषि कहते थे कि—

तत्रापरा ऋग्वेदोयजुर्वेद सामवेदोऽथर्ववेद शिक्षा कल्पो व्याकरणा।
निरुक्त छन्दा ज्योतिषामिति अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते॥

(मुण्डकोपनिषद्)

ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छंद और ज्योतिष—सब अश्रेष्ठ विद्याएं हैं। जिससे अविनाशी परमात्मा जाना जाय वही श्रेष्ठ विद्या है।

ईश्वरी ज्ञान मिलनेसे जगतके और सब ज्ञान मिल सकते हैं परन्तु और किसी ज्ञानसे ईश्वरी ज्ञान नहीं मिल सकता।

महात्मा लोग जो ईश्वरी ज्ञानको ऐसा श्रेष्ठ कहते हैं उसका कारण क्या है? ऐसी शंका बहुतोंके जीमें उठती है। इसके उत्तरमें जानना चाहिये कि और किसी किसकी विद्या जाननेसे वा जगतकी सब किसकी विद्याएं जाननेसे भी जगतका मूलतत्त्व मालूम नहीं होता। और सब विद्याएं जाननेसे भी जीवको अन्तिम शान्ति नहीं मिलती; और सब विद्याएं जाननेसे भी आत्मा परमात्माकी एकता नहीं हो सकती और दूसरी सब विद्याएं जानने पर भी उन सबसे परे

रहनेवाला जो परमात्मा है वह जाना नहीं जा सकता; परन्तु ब्रह्मविद्या अर्थात् ईश्वरी ज्ञानमें ऐसी खूबी है कि एक विद्या जाननेसे सब जाना जा सकता है; दूसरी सब विद्याएं जानने पर भी यह नहीं जाना जा सकता। इसके लिये भगवानने भी कहा है कि

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥

अ० ७ श्लो० २

ज़रा भी अधूरा न रहे इस प्रकार अनुभव सहित मैं यह ज्ञान तुझसे कहता हूँ जिसके जान लेनेके बाद इस दुनियामें और कुछ जाननेको बाकी नहीं रहता।

इसलिये जिसमेंसे सारा ब्रह्माण्ड निकला है और अन्तको सारे ब्रह्माण्डका जिसमें लय हो जाता है, इतना ही नहीं बल्कि जगतकी सब चीज़ोंको जिससे पोषण मिलता है और जिसकी सत्तासे यह सब चल रहा है उस सर्वशक्तिमान परमकृपालु परमात्माको जिससे प्राप्त कर सकें वही श्रेष्ठ विद्या है और उसीका नाम ईश्वरी ज्ञान है। इसलिये जगतकी सब विद्याओंसे ईश्वरी ज्ञान परम उत्तम है।

ईश्वरी ज्ञानका फल तुरत ही मिलता है।

५. जगतकी और सब तरहकी विद्याएं फल देनेमें वादा करनेवाली और उधार रखनेवाली होती हैं, पर ईश्वरी ज्ञान तुरत ही नगदा नगदी फल देता है। जैसे कर्मकाण्डी कहते हैं कि इस समय धर्म करोगे तो मरने पर तुमको स्वर्ग मिलेगा, पुराने ज़मानेके पादरी लोग अपने चेलोंसे धन लेकर उन्हें चिट्ठी लिख देते थे कि स्वर्गमें तुमको इन इन

चीजोंका आराम होगा । इसी प्रकार वेहरा वगैरह दूसरी कौमोंमें भी पुराने जमानेमें यह रिवाज था और अब भीहै। हिन्दुओंमें मर जानेके बाद खटिया, बिछौना, थाली, लोटा, घड़ा, छाता, जूता आदि देनेका रिवाज है। इस विषयमें भोले भाले गंवार लोगोंको उनके गुरु पुरोहित समझते हैं कि जो कुछ यहां दोगे वह सब मरने पर स्वर्गमें जीवको मिलेगा; इसलिये मरे हुएके सुखके लिये उसके पीछे उसकी जरूरत की सब चीजें देनी चाहियें। अगर कोई आदमी छाता, जूता वगैरह चीजें न दे तो उसे पुरोहित कहते हैं कि अगर यहां जूता नहीं दोगे तो वहां तुम्हारे बापको कांटेमें चलना पड़ेगा और यहां गोदान नहीं करोगे तो वहां तुम्हारी दादीको वैतरणी नदी उतरनेमें अड़चल पड़ेगी। इस प्रकार धर्मका फल पानेके विषयमें लोग वादे पर रहते हैं। जगतकी और सब विद्याओंमें भी ऐसा ही होता है; क्योंकि ईश्वरी ज्ञानके सिवा और सब विद्याएं अपूर्ण हैं, उनके फलसे सन्तोष नहीं होता और वह फल मनुष्योंसे या जड़ वस्तुओंसे मिलनेवाला होता है, इससे मनमाना फल नहीं मिल सकता। परन्तु ईश्वरी ज्ञानका फल देनेवाला स्वयं परमात्मा है, इससे एकका अनन्त गुना फल तुरत ही मिलता है। वह वादा करनेवाला या उधार रखनेवाला नहीं है, वह तो तुरत ही फल देता है। और यह बात भी नहीं कि पूरा ज्ञान मिले तभी फल दे; बल्कि जैसे भोजनके हर एक कौरमें भूखको तृप्ति और शरीर तथा मनको शक्ति मिलती जाती है वैसे ईश्वरी ज्ञानमें भी हर कदम पर तुरंत ही कुछ न कुछ फायदा होता जाता है। जैसे, ईश्वरी ज्ञान प्राप्त करते समय पहले मनमें प्रभुप्रेम आता है तो तुरत ही उस प्रेमका आनन्द भी मिलता है। इसके

बाद सब जीवोंकी भलाई चाहने और अपनेसे जितना बन सके उतना दान देनेका मन होता है और ऐसा करनेसे तुरत ही एक तरहका खास आनन्द मिलता है। इसके बाद सन्तोष आता है, उससे कई तरहकी उपाधियां आपसे आप घट जाती हैं, और उपाधियां जितनी घटती हैं उतना ही आनन्द बढता जाता है। इसके बाद खरी और खोटी वस्तुकी पहचान होती जाती है और सत्य वस्तुकी ओर जीव खिंचता जाता है। इससे कुदरती तौर पर जीवमें एक नये ढङ्गका बल और अलौकिक आनन्द आता जाता है। इसके बाद किसी व्यवहारी आदमीको जो ज्ञान नहीं मिलता वह अलौकिक ज्ञान उसको मिलता है जिससे उसके चित्तका सब संशय मिट जाता है, उसके ऊपरका भार हलका हो जाता है, वह मायाको पहचान सकता है और उससे दूर रह सकता है; इतना ही नहीं, बल्कि उसका जीव इतने ऊंचे चढ़ जाता है कि उसके सामने सारा जगत नीचे पड़ जाता है। इसके बाद उसको अलौकिक ज्योतिका दर्शन होता है। उस समय उसको इतना अधिक आनन्द होता है कि उसकी कल्पना भी नहीं कर सकते। इस प्रकार इन सबमें तथा ऐसी ही ऐसी दूसरी कितनी ही दशाओंमें उनके साथ ही साथ आनन्द मिलता जाता है; क्योंकि ईश्वरी ज्ञान प्रत्यक्ष फल देनेवाला है। इसलिये दूसरे ज्ञानोंकी आसक्ति कम रखकर ईश्वरी ज्ञान प्राप्त कीजिये। ईश्वरी ज्ञान प्राप्त कीजिये।

सब प्रकारके धर्म्मोंका फल ईश्वरी ज्ञान है।

६. ईश्वरी ज्ञान धर्म्मसे उत्पन्न होता है; इतना ही नहीं बल्कि यह धर्म्मका फल है; क्योंकि जो फल पानेके लिये धर्म्म करना है वह फल ईश्वरी ज्ञानसे मिलता है, इसलिये ईश्वरी

ज्ञान प्राप्त कर लेनेके बाद धर्म्मकी और सब बाहरी छोटी छोटी क्रियाएं करनेकी जरूरत नहीं रहती। और ऐसी क्रियाएं करने की जरूरत न रहे यह बहुत ऊंचे दरजेकी बात है: क्योंकि धर्म्मके कर्म्म करनेमें अर्जुन जैसे महान भक्त भी घबरा गये हैं और श्रीकृष्ण भगवानको भी स्वीकार करना पड़ा है कि कर्म्मकी गति गहन है। ऐसे गहनगतिवाले कर्म्मोंके पार जाना ही खूबीकी बात है। यह ईश्वरी ज्ञानसे ही हो सकता है। इसलिये ईश्वरी ज्ञान धर्म्मके फल स्वरूप है; क्योंकि पहले तो कर्म्मोंकी गति ही ऐसी नहीं कि समझमें आ सके तब उसके पार जाना तो क्यों कर हो सकता है? पर ईश्वरी ज्ञानमें ऐसी महिमा है कि वह सब कर्म्मोंके पार जा सकता है। इसका कारण यह है कि धर्म्मकी जुदी जुदी क्रियाएं करनेसे जो फल मिलता है वह सब ईश्वरी ज्ञानसे मिल जाता है। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः॥

अ० २ श्लो० ४६।

थोड़ा पानीवाली जगहसे जो फायदा हो सकता है वह फ़ायदा चारों ओरसे भरे हुए बहुत पानीवाले बड़े तालाबसे भी हो सकता है। वैसे ही सब वेदोंमें कहे हुए धर्म्मके कर्म्म करनेसे जो फल मिलता है वह फल ईश्वरको जाननेवाले हरिजनको भी मिलता है।

इस प्रकार ईश्वरके आनन्दमें और सब आनन्द समा जाता है और ईश्वरी ज्ञानमें और सब कर्म्मों की तथा सब प्रकारके ज्ञानकी समाप्ति होजाती है, इसलिये ईश्वरी ज्ञानमें धर्म्मका फल आ जाता है। जैसे, तीर्थ करनेसे जो फल

मिलता है, व्रत करनेसे जो फल मिलता है, दान देनेसे जो फल मिलता है, शास्त्रका पाठ करनेसे जो फल मिलता है और सेवा करनेसे जो फल मिलता है तथा जो आनन्द होता है वह सब फल और आनन्द ईश्वरको पहचनवानेवाले ईश्वरी ज्ञानमें आ जाता है। इसलिये सब हरिजनोंको ईश्वरी ज्ञान हासिल करना चाहिये।

ईश्वरी ज्ञान धर्म्मके फल स्वरूप क्यों है ?

ईश्वरी ज्ञान धर्म्मके फल स्वरूप है इसका मुख्य कारण यह है कि इस ज्ञान से भेदभाव मिट जाता है, इस ज्ञानसे सब वस्तुओंमें एक ही महातत्त्व मालूम पड़ता है और इस ज्ञानसे जीवको अन्तिम शान्ति मिलती है। इससे इस ज्ञानके बारेमें श्रीमद्भगवद्गीतामें भी कहा है कि—

> सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते।
> अविभक्त विभक्तेषु तज्ज्ञानं विद्धि सात्विकम्।
>
> अ० १८ श्लो० २०

जिस ज्ञानसे सब वस्तुओंमें तथा सब जीवोंमें एक ऐसा तत्त्व अखण्डित रूपसे व्याप्त दिखाई दे जिसका कभी नाश न हो उस ज्ञानको सत्वगुणी जानो।

भाइयो ! जो ऐसा तत्त्व समझनेवाला सत्वगुणी ज्ञान है वही ईश्वरी ज्ञान कहलाता है और ऐसा ख्याल ज्ञान हो जाने-पर, धर्म्मकी शुरूकी ऊपरी छोटी छोटी क्रियाएं करनेकी जरूरत नहीं रहती। इसलिये ईश्वरी ज्ञान धर्म्मके फलरूप गिना जाता है। जगतके और सब व्यवहारी ज्ञानोंमें ऐसा नहीं होता; क्योंकि वे ज्ञान रजोगुणी और तमोगुणी होते हैं, इससे उनमें अधूरापन, संकीर्णता और कितने ही तरहके दोष

होते हैं। इसलिये ईश्वरी ज्ञानके सिवा और कोई ज्ञान धर्मके फलस्वरूप नहीं गिना जाता'। सिर्फ पेट भरनेके लिये जो व्यवहारी विद्याएं होती हैं वे रजोगुणी और तमोगुणी होती हैं। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान्।
वेत्ति सर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्धि राजसम्॥

अ० १८ श्लो० २१

जिस ज्ञानसे जुदी जुदी वस्तुओंके जुदे जुदे गुण तथा जुदे जुदे जीवोंके जुदे जुदे स्वभाव जाने जाते हैं उस ज्ञानको तू रजोगुणी जान। अर्थात् जिससे यह ज्ञान पड़ता है कि यह विभिन्नता ही वास्तविक है: पर इस विभिन्नताके अन्दर जो एकता है, जो एक तत्त्व व्याप रहा है और जिस तत्त्वकी सत्तासे विभिन्नता दिखाई देती है वह अन्दर पड़ा हुआ असली तत्त्व जिस ज्ञानसे नहीं दिखाई देता, सिर्फ बाहरकी विभिन्नता दिखाई देती है, यानी जिस ज्ञानसे सिर्फ बाहरका बर्तन दिखाई देता है मगर अन्दरका माल नहीं दिखाई देता उस ज्ञानको भगवान रजोगुणी कहते हैं।

तमोगुणी ज्ञानके लिये भगवान कहते हैं कि—

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकम्।
अतत्त्वार्थवदल्पं च तत्तामसमुदाहृतम्॥

अ० १८ श्लो० २२

जिस ज्ञानसे चाहे जिस कर्ममें या चाहे जिस चीजको परिपूर्ण और सब कुछ समझ कर उसीमें आसक्ति हो जाती है तथा जो बिना उद्देश समझे हुए है, वे तत्त्वका है और बहुत थोड़ा है वह ज्ञान तमोगुणी कहलाता है। अर्थात् किसी एक ही आदमीमें, एक ही मूर्तिमें या ऐसी ही किसी एक ही चीजमें

सब तत्त्व मानकर उसीमें आसक्त होजाना और उसके सिवा कोई महातत्त्व न समझना तमोगुणी ज्ञान कहलाता है।

ईश्वरी ज्ञान मिल जानेपर और कोई कर्तव्य करनेको बाकी नहीं रहता।

भाइयो! जगतकी दूसरी विद्याओंमें और दूसरे ज्ञानोंमें इस प्रकारकी अपूर्णता तथा कचाई होती है; इसलिये ईश्वरी ज्ञानके सिवा और सर्व ज्ञान धर्म्मके फलस्वरूप नहीं गिने जाते। यद्यपि और कई तरहके ज्ञान भक्तिके आरम्भमें धर्म्मको मदद देते हैं तथापि वे धर्म्ममेंसे पैदा हुए नहीं होते और न धर्म्मके फलस्वरूप ही होते हैं, इसलिये जगतके और सब ज्ञान धर्म्मके फलस्वरूप नहीं माने जाते; पर ईश्वरी ज्ञान धर्म्मके फलस्वरूप माना जाता है। दूसरे ज्ञान मिल जानेपर भी कई तरहके कर्त्तव्य करनेको बाकी रहते हैं, पर ईश्वरी ज्ञान मिल जानेके बाद और कुछ कर्त्तव्य करनेको बाकी नहीं रहता। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें भी कहा कि—

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतप।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते॥

अ० ४ श्लो० ३३

हे अर्जुन! जुदी जुदी वस्तुओंसे जो यज्ञ किये जाते हैं उन सब यज्ञोंसे ज्ञान-यज्ञ अर्थात् ईश्वरका ज्ञान प्राप्त करना श्रेष्ठ है; क्योंकि जितने तरहके कर्म्म हैं वे सब पूर्णरीतिसे ज्ञानमें समा जाते हैं।

इस प्रकार धर्म्मके सब ज्ञान ईश्वरी ज्ञानमें समा जाते हैं, इसलिये ईश्वरी ज्ञान धर्म्मके फलस्वरूप है। जब ऐसी दशा हो अर्थात् कुछ भी कर्त्तव्य करनेको बाकी न रहे तभी जीव

ईश्वरके साथ तन्मय हो सकता है और तभी वह धर्म का पूरा पूरा फल भोग सकता है। ऐसा ज्ञान मिल जानेपर तथा ऐसी स्थिति होनेपर फिर और कुछ भी करनेको बाकी नहीं रहता। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें भी कहा है कि—

यस्त्वात्मरतिरेव स्यादात्मतृप्तश्च मानव।
आत्मन्येव च सन्तुष्टस्तस्य कार्यं न विद्यते॥
नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थ व्यपाश्रय॥

अ० ३ श्लो० १७–१८.

जो हरिजन आत्मामें प्रेम किये हुए हैं, आत्मामें तृप्ति पाये हुए हैं और आत्मामें संतोष पाये हुए हैं उनको और कोई काम करनेको बाकी नहीं रहता, क्योंकि कर्म करने और न करनेमें उनको लाभ या हानि नहीं है और सारे जगतमें किसीसे उनका किसी तरहका स्वार्थ नहीं है।

ऐसी दशा ईश्वरी ज्ञानसे होती है, इसलिये ईश्वरी ज्ञान धर्मके फलस्वरूप गिना जाता है। जिनको ऐसा ज्ञान होता है तथा ऐसी दशा होती है उन हरिजनोंको महात्मा लोग सच्चा ज्ञानी कहते हैं। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें भी कहा है कि—

यस्य सर्वे समारम्भा कामसंकल्पवर्जिता।
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तमाहु पण्डितं बुधा॥

अ० ४ श्लो० १९

जिनके सब कर्म बिना इच्छा तथा बिना संकल्पके हैं और ज्ञानकी अग्निसे जिनके कर्म जल गये हैं उनको चतुर आदमी पण्डित कहते हैं।

ऐसा ज्ञान तथा ऐसी स्थिति ही धर्म्मका फल है। इसलिये जिससे ऐसा संतोष, ऐसी तृप्ति, ऐसी समझ, ऐसा वैराग्य और ऐसा आनन्द मिले वह ज्ञान ईश्वरी कहलाता है और वही ज्ञान धर्म्मसे उत्पन्न हुआ तथा धर्म्मके फलस्वरूप गिना जाता है।

ईश्वरी ज्ञान पाये हुए महात्मा निखट्टू नहीं बन जाते बल्कि उल्टे जगतके हितके कितने ही अधिक काम करते हैं।

भाइयो ! याद रखना कि ऐसी तृप्ति पाये हुए ज्ञानी निखट्टू नहीं बन जाते बल्कि और अधिक काम करते हैं। अब उनको अपना काम करनेको बाकी नहीं रहता, परन्तु अपने भाइयोंके लिये और ईश्वरके लिये उनको बहुत काम करनेको रहता है और उनका स्वार्थ मिट गया होता है इससे वे दूसरों के लिये बहुत अधिक काम कर सकते हैं। वे ईश्वरके कदम ब कदम चलनेवाले होते हैं; इससे उसके हर एक हुक्मको हृदयके उत्साहसे पालते हैं और ईश्वरने तो कहा है कि—

न मे पार्थास्ति कर्त्तव्य त्रिषु लोकेषु किंचन।
नानवाप्तमवाप्तव्य वर्त्त एवच कर्मणि॥

अ० ३, श्लो० २२

हे अर्जुन ! स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों लोकोंमें मुझे कुछ भी करना नहीं है, क्योंकि ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो मुझे न मिली हो और न ऐसी कोई वस्तु है जिसे मुझे प्राप्त करना है; तो भी मैं अपना कर्त्तव्य पूरा करता हूँ और कर्म्म करता हूँ।

इसीके अनुसार आपको भी कर्म्म करना चाहिये। उसमें

सिर्फ इतना ध्यान रखना है कि आसक्ति रखकर कर्म न करें बल्कि फलकी इच्छा छोड़कर कर्म करें। यही ज्ञानीका लक्षण है। इसके लिये भगवानने भी कहा है कि—

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वंति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥

अ० ३ श्लो २५

हे अर्जुन! जैसे अज्ञानी आदमी फलकी इच्छासे आसक्ति रखकर कर्म करते हैं वैसे लोगोंका कल्याण करनेकी इच्छा-वाले ज्ञानियोंको बिना आसक्ति रखे कर्म करना चाहिये।

क्योंकि आसक्ति त्याग कर लोगों के कल्याणके लिये ही जो कर्म होता है वह कर्म बन्धन रूप नहीं मालूम होता, इससे ऐसे कर्म करनेमें कुछ दोष नहीं लगता। इसके लिये प्रभुने भी कहा है कि—

त्यक्त्वा कर्म फलसंगं नित्य तृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित्करोति सः॥

अ० ४ श्लो०-२०

जो आदमी कर्मके फलकी आसक्ति छोड़कर सदा तृप्त रहता है और दूसरे किसीके बलका भरोसा नहीं रखता वह कर्मोंमें लीन होनेपर भी कुछ नहीं करता यह समझना।

इस प्रकार जो निःसाधन होकर लोगोंके कल्याणके लिये कर्म करते हैं उन ज्ञानियोंको ऐसे कर्म करनेसे कुछ बन्धन नहीं होता। बल्कि शास्त्रमें कहा है कि ऐसे कर्म करनेसे उल्टे उनको मोक्ष होता है। इसलिये मोक्ष पानेका ऐसा अच्छा सुबीता और मौका ज्ञानी महात्मा नहीं गँवाते। उनको अपने लिये कुछ करना न हो और तृप्ति आ गयी हो तो भी लोगोंके कल्याणके लिये और उन्नीके अपना उद्धार

करनेके लिये वे कर्म्म किया करते हैं । इसके लिये भगवानने कहा है कि—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म्म परमाप्नोति पूरुषः ॥

अ० ३ श्लो० १६

बिना आसक्ति रखे तू हमेशा अच्छी तरह कर्म्म कर; क्योंकि जो आदमी आसक्ति छोड़कर कर्म्म करता है वह कर्म्म करते हुए भी मोक्ष पाता है।

ऐसा ज्ञान ही ईश्वरी ज्ञान कहलाता है और वही धर्म्मके फलस्वरूप गिना जाता है, इसलिये ऐसा ज्ञान प्राप्त करनेकी चेष्टा कीजिये।

ईश्वरी ज्ञान प्राप्त करना सबसे सहज है।

ईश्वरी ज्ञान सहजमें और सुखसे मिल सकता है; क्योंकि आत्माके सबसे नजदीक ईश्वर हैं। इसीसे शास्त्रोंमें कहा है कि ईश्वर पाससे भी पास हैं। ईश्वरके बहुत पास होनेसे उनका ज्ञान प्राप्त करना भी सहजसे सहज है। ईश्वरसे जीव उत्पन्न हुआ है और जीव ईश्वरका अंश है, इसलिये जगतकी और सब चीजोंसे जीव ईश्वरके अधिक निकट है और जो बहुत निकट होता है उसका ज्ञान बहुत आसानीसे मिलनेमें कुछ आश्चर्य नहीं है। इसीसे महात्माओंने कहा है कि दुनियादारीके और सब ज्ञानोंसे ईश्वरी ज्ञान प्राप्त करना बहुत सहज है। जगतके और सब जितने ज्ञान हैं वे सब ज्ञान तथा वे सब विद्याएँ जड़ वस्तुओंसे सम्बन्ध रखती हैं और जड़ वस्तुएँ आप ही स्थूल हैं, अपूर्ण हैं और मायाके बन्धन वाली हैं; इसलिये ऐसी वस्तुओंका ज्ञान प्राप्त करनेमें जीवको अधिक कठिनाई पड़ती है क्योंकि वे जीवकी जातिकी चीजें नहीं हैं बल्कि वे

तो मायाकी वस्तुएँ हैं और माया तथा जीवमें तो एक तरह-का परस्पर विरोध है; क्योंकि माया जड़ है और जीव चैतन्य है। जीव मायाकी जातिका नहीं है और माया जीवकी जातिकी नहीं है; इससे जीव मायाके जालसे छूटना चाहता है और माया अपने जालमें जीवको फँसा रखना चाहती है। इस कारण जीव और मायामें युद्ध होता है। इससे मायाके कामोंमें जीव तदाकार नहीं हो सकता। मायिक पदार्थोंके सम्बन्धका जितना ज्ञान इस संसारमें है उसको प्राप्त करनेमें जीवको एक प्रकारकी खास कठिनाई पड़ती है, क्योंकि यह उसके स्वभावके विरुद्ध काम है, इससे मायिक पदार्थके ज्ञान-को महात्मा लोग कठिन समझते हैं और ईश्वरी ज्ञानको सहज समझते हैं। जीव ईश्वरका अंश है, इसलिये ईश्वरी ज्ञान उसका अपना ही ज्ञान है और जो अपना ही स्वाभाविक ज्ञान होता है उसके पानेमें कुछ कठिनाई न होना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है। इसलिये ईश्वरी ज्ञान सुखपूर्वक मिल सकता है।

ईश्वरी ज्ञान स्वाभाविक है इसलिये वह सहजमें और आनन्दपूर्वक मिल सकता है।

दूसरे, श्रीकृष्ण भगवानका यह कहना है कि ईश्वरी ज्ञान न केवल सहजमें मिल सकता है बल्कि वह अच्छी तरह और सुखपूर्वक मिल सकता है। ईश्वरी ज्ञान स्वाभाविक है और जो काम स्वाभाविक होता है उसके करनेमें जरा मिहनत पड़े तो वह मिहनत भी सुखदायक लगती है। जैसे, जीमनेमें भी एक तरहकी मिहनत करनी पड़ती है। पहले भोजनको तय्यार करना पड़ता है, फिर हाथ उठाना पड़ता है, दाँत चलाने पड़ते हैं, गलेके नीचे उतारना पड़ता है और अँतड़ीको

पचाना पड़ता है; तो भी यह सब मिहनत भारी नहीं जान पड़ती बल्कि और उसमें आनन्द होता है। इसी प्रकार सुन्दर वस्तुओंको देखनेमें भी आँखोंको मिहनत पड़ती है, आँखोंको उघाड़े रखना पड़ता है, आँखोंकी नसें खिचती हैं; आँखोंको जो रूप दिखाई दे उसकी खबर ज्ञान तन्तुओंकी मार्फत मगजको पहुँचानी पड़ती है और जिस चित्रको आँखें देखती हैं उसका हाल मनको पहुँचाना पड़ता है। इस प्रकार कोई सुन्दर चित्र देखनेमें भी आँखोंको कई तरहकी मिहनत पड़ती है। पर यह सब मिहनत स्वाभाविक है, उस मिहनतसे आँखोंको कुछ थकावट नहीं मालूम होती बल्कि उल्टे आनन्द होता है; क्योंकि सुन्दरताकी तरफ देखना आँखका स्वाभाविक काम है, इसलिये इसमें उसको कोई खास कठिनाई नहीं पड़ती। इसी प्रकार ईश्वरी ज्ञान प्राप्त करना जीवका कुदरती स्वभाव है, इसलिये ईश्वरी ज्ञान हासिल करनेमें जो मिहनत पड़ती है वह मिहनत जीवको मालूम नहीं देती, बल्कि जैसे खानेकी मिहनतसे जीभको आनन्द होता है और देखनेकी मिहनतसे आँखोंको आनन्द होता है वैसे ही ईश्वरी ज्ञान प्राप्त करनेकी मिहनतसे जीवको एक प्रकारका अलौकिक आनन्द होता है। इसीसे महात्माओंने कहा है कि ईश्वरी ज्ञान सुखपूर्वक और आनन्दसहित प्राप्त हो सकता है। ऐसे सहज, सुखदायक और कल्याणकारी ईश्वरी ज्ञानको हासिल कीजिये, ईश्वरी ज्ञानको हासिल कीजिये।

दूसरे ज्ञान नष्ट हो जाते हैं पर ईश्वरी ज्ञानका कभी नाश नहीं होता।

ईश्वरी ज्ञान ऐसा है कि उसका कभी नाश नहीं होता,

इसलिये बड़े चावके साथ जगतके और सब ज्ञानोंके बदले ईश्वरी ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। बहुत मिहनत करनेसे शायद ऐसी कीमिया भी मिल जाय कि जिससे सच्चा हीरा बनाना आ जाय परन्तु वह ज्ञान भी मरनेपर किस काम आवेगा ? आकाशमें उड़नेकी कला मालूम हो जाय और उससे आकाशमें घूमनेकी शक्ति मिले तो भी वह ज्ञान मरनेपर किस काम का ? अनेक प्रकारके रोगोंके जन्तु पालने तथा नाश करनेकी विद्या मालूम हो और उससे जगत्के रोगोंमें उथलपुथल किया जा सके तो भी अन्तको वह ज्ञान किस काम आवेगा ? वायुमण्डलके नियमोंका बहुत गहरा ज्ञान हासिल किया हो, अग्निका असर, शब्दके नियम, शरीरकी रचनाएँ परमाणुकी गति, रसायनशास्त्रके गहरे भेद, वनस्पति-शास्त्रकी खूबियां और जमीनके अन्दरकी वस्तुएँ जाननेकी कला आदि अनेक प्रकारके नये नये ज्ञान प्राप्त हुए हों तो भी वे सब ज्ञान अन्तको नष्ट ही हो जाते हैं क्योंकि इन सब ज्ञानोंका सम्बन्ध जगतकी वस्तुओंसे है; ईश्वरी-ज्ञानके सिवा जगतके किसी ज्ञानसे जीवको तृप्ति नहीं होती। जगतके और सब ज्ञान देहके नाशके साथ नष्ट हो जाते हैं, पर ईश्वरी ज्ञान ईश्वरके दरबारतक और अनन्त कालतक जीवके काम आता है; इसलिये महात्मा लोग कहते हैं कि ईश्वरी ज्ञानका नाश नहीं होता।

इसके सिवा यह भी याद रखने योग्य है कि जीवको अनेक जन्म लेने पड़ते हैं और हर जन्ममें आसपासके संयोगोंके अनुसार उसको जगतके जुदे जुदे ज्ञान हासिल करने पड़ते हैं, पर एक जन्मका ज्ञान दूसरे जन्ममें पूरा पूरा काम नहीं आता; इसलिये हर जन्मके समयका ज्ञान अधूरा ही रहता है; वह

ज्ञान इतनी ही सीमातक रहता है कि उस समयकी जिन्दगी-की कुछ मदद करे, परन्तु अन्ततक उसका असर नहीं पहुँचता। परन्तु ईश्वरी ज्ञान सब दशाओंमें एक ही होता है और मरनेके बाद भी हमेशा काम आ सकता है; इससे ईश्वरी ज्ञान ऐसा समझा जाता है जिसका कभी नाश नहीं। इसलिये कभी नष्ट न होनेवाला ईश्वरी ज्ञान प्राप्त कीजिये। ईश्वरी ज्ञान प्राप्त कीजिये।

अन्तमें इन सब विषयोंका सार यही है कि हम सब भाई बहनोंको जैसे बने वैसे जल्दसे जल्द और अधिकसे अधिक ईश्वरी ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। ईश्वरी ज्ञान मिलनेसे सब प्रकार-की आफतोंसे बच सकते हैं और मोक्ष पा सकते हैं। और यह ज्ञान ऐसा उत्तम होते हुए भी सबको बहुत सहजमें मिल सकता है। सिर्फ इतना ध्यानमें रखना उचित है कि दोष-दृष्टि न रखें बल्कि गुण-ग्राहक हों। अगर इतना ही बन सके तो यह ज्ञान आसानीसे मिल सकता है। ईश्वरकी सब जीवों पर इतनी अधिक दया है जिसकी सीमा नहीं; इससे सब जीवोंको तारनेके लिये उसने कृपा करके ईश्वरी ज्ञानको ऐसा रखा है कि आनन्दसे तथा सहजमें मिल सके। इतना ही नहीं बल्कि ईश्वरी ज्ञानमें ऐसे अलौकिक गुण हैं और उससे इतना बड़ा लाभ है कि किसी हरिजनको यह ज्ञान प्राप्त करनेकी इच्छा हुए बिना नहीं रहती; क्योंकि जगतकी और सब विद्याओंसे ईश्वरी ज्ञान श्रेष्ठ है और ऊंचेसे ऊंचा है। इस ज्ञानको पानेके लिये गहराईमें जानेसे स्वभावतः नये नये ढङ्गका आनन्द मिला करता है। इसके सिवा यह ज्ञान आप पवित्र है और दूसरोंको पवित्र करनेवाला है, उत्तमसे उत्तम है, तुरत ही नगद फल देनेवाला है, धर्मके फलस्वरूप

है, आसानीसे मिल सकता है और कभी नष्ट नहीं होता। इसलिये हजार काम छोड़कर ईश्वरी ज्ञान हासिल कीजिये। ईश्वरी ज्ञान हासिल कीजिये।

बन्धुओ! ईश्वरी ज्ञानकी ऐसी ऐसी अनेक खूबियां हैं पर उन सब खूबियोंका वर्णन करनेसे बहुत बढ़ जायगा जिससे बहुत आदमी ऊब जायँगे और साधारण व्यवहारी आदमी उसकी कीमत नहीं समझ सकते, इसलिये इस समय इस विषयको यहीं बन्द करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि हे सच्चिदानन्द परमकृपालु परमात्मा! हमारे भाई बहनोंमें अपना ऐसा उत्तम ज्ञान फैलानेकी कृपा कर, कृपा कर, कृपा कर।

इस प्रकार जो हरिजन ईश्वरी ज्ञानकी खूबी समझें और उसे प्राप्त करनेकी चेष्टा करें उन ईश्वरके कृपापात्र हरिजनों-का पहला लक्षण क्या है यह जाननेकी खास जरूरत है। इसलिये अब स्वर्गकी सीढ़ीकी तीसरी पैडीमें ईश्वरके कृपा-पात्र हरिजनोंका पहला लक्षण बताया जायगा।

तीसरी पैड़ी।

—:*:—

ईश्वरके कृपापात्र हरिजनोंका पहला लक्षण।

ईश्वरके कृपापात्र माने क्या?

भाइयो! आजके विषयका नाम सुनकर बहुत आदमी सोचेंगे कि ईश्वरके कृपापात्र माने क्या? इसके उत्तरमें महात्मा लोग कहते हैं कि ईश्वरकी कृपा दो प्रकारकी है। एक मामूली कृपा और दूसरी विशेष कृपा। मामूली कृपा सब पर होती है पर विशेष कृपा तो हरिजनों पर ही होती है; इसलिये वे कृपापात्र कहलाते हैं। इसके लिये प्रभुने भी कहा है कि—

> समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
> ये भजंति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥
>
> अ० ६ श्लो० २६

'मुझे कोई प्यारा नहीं है और न कोई ऐसा है जो मुझे प्यारा न हो। मैं तो सब प्राणियोंमें समान रीतिसे मौजूद हूँ, तो भी जो मुझे प्रेमपूर्वक भजता है वह मुझमें है और मैं उसमें हूँ।

इस कारण जो हरिजन भगवानको भजते हैं उनमें भगवान होता है, अर्थात् उनमें ईश्वरका ऐश्वर्य तथा ईश्वरके गुण होते हैं। जैसे, किसी भक्तमें ईश्वरका गुण गानेकी अद्भुत शक्ति होती है इससे वह महात्मा सूरदास, तुलसीदास

आदिकी तरह नये नये भजन बना सकता है। किसी भक्तमें अतिशय उदारता होती है इससे उसकी मार्फत कितने ही बड़े बड़े परमार्थके काम हुआ करते हैं। किसी भक्तमें मनुष्य जातिके साथ बड़ा ही अभेदभाव होता है इससे वह पतित श्रेणीके लोगोंको भी सुधार कर आगे बढ़ा देता है। किसी भक्तमें कुछ अद्भुत चमत्कार करनेका बल होता है इससे उस चमत्कारके कारण ही वह हजारों आदमियोंमें ईश्वरी सत्ता जगा देता है। किसी भक्तमें तितिक्षा-सहन करनेका महान बल होता है इससे वह अपने आस पास बहुत मजबूत असर फैला सकता है। किसी भक्तमें अतिशय प्रेम होता है, उसके प्रेमके झरनेसे हजारों हृदयोंमें प्रेम भर जाता है। किसी भक्तमें अजीब ज्ञान होता है इससे वह अपनी मरजीके मुताबिक बड़े बड़े चक्कर फेर देता है। और हर एक भक्तमें कुछ खास खूबी होती है इससे वह अपनी जिन्दगी सुधार सकता है और दूसरोंका मददगार हो सकता है। जिनमें ऐसा बल हो कि वे आप सुधर सकें और दूसरोंको सुधार सकें वे महात्मा ईश्वरके कृपापात्र कहलाते हैं। इसके सिवा ऐसे कृपापात्र दैवी सम्पत्तिवाले भी कहलाते हैं। जो ईश्वरसे विमुख होते हैं वे आसुरी सम्पत्तिवाले कहलाते हैं। इसके लिये भगवानने भी कहा है कि—

द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च।

अ० १६ श्लो० ६

हे अर्जुन! इस जगतमें दो प्रकारके प्राणियोंकी सृष्टि है दैवी सम्पत्तिवाले और आसुरी सम्पत्तिवाले।

दैवी सम्पत्तिवाले महात्मा अनन्य भावसे ईश्वरका भजन किया करते हैं। इसके लिये प्रभुने कहा है कि—

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजंत्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम् ॥

अ० ६ श्लो० १३

हे अर्जुन! जो महात्मा हैं वे दैवीप्रकृतिके आधार पर रहते हैं। वे मुझे प्राणीमात्रका कारण जान कर तथा अविनाशी समझकर और कहीं मन न रखकर मुझको ही भजते हैं।

इस प्रकार अनन्य मनसे ईश्वरको भजनेवाले दैवी सम्पत्ति वाले महात्माओंका उद्धार होता है। इसके लिये प्रभुने कहा है कि—

दैवीसम्पद्विमोक्षाय निबधायासुरी मता।
मा शुचः संपदं दैवीमभिजातोऽसि पांडव ॥

अ० १६ श्लो० ५

हे अर्जुन! दैवीसम्पत्तिसे मोक्ष होता है और आसुरी सम्पत्तिसे बन्धन होता है। इसलिये तू अफसोस मत कर क्योंकि तू दैवी सम्पत्तिमें जन्मा है।

दैवी सम्पत्ति ऐसी उत्तम है, इसलिये दैवी सम्पत्तिवाले जन ईश्वरके कृपापात्र कहलाते हैं।

दैवी सम्पत्ति वालेके लक्षण।

अब हमें यह जानना चाहिये कि ऐसी उत्तम सम्पत्तिका— जिससे मोक्ष हो जाता है—पहला लक्षण क्या है, उसकी पहली परीक्षा क्या है, उसकी सहज कुंजी क्या है और उस सम्पत्तिका मूल क्या है। यह मालूम हो जाय तो दैवी सम्पत्ति हाथ आ जाय; इसलिये हमें इसका मूल ढूंढना चाहिये। इसको गीताके सोलहवें अध्यायके आरम्भमें तीन श्लोकोंमें कहा है—

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति संपदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥

अ० १६ श्लोक १, २, ३,

अर्थ—१ अभय अर्थात् न डरना, २ अन्तःकरणकी शुद्धि, ३ ज्ञानयोगमें अच्छी तरह स्थिर होकर रहना, ४ दान, ५ इन्द्रियोंको वश करना, ६ यज्ञ करना अर्थात् अपनी प्यारी वस्तुएं ईश्वरके अर्पण करना, ७ स्वाध्याय यानी धर्म्मका अभ्यास, ८ तप, ९ सरलता, १० अहिंसा यानी किसी जीवको न मारना, ११ सत्य, १२ क्रोध न करना, १३ त्याग, १४ शान्ति १५ निन्दा न करना, १६ सब जीवों पर दया रखना, १७ विषयकी लालसा न रखना, १८ मार्दव यानी नम्रता, १९ लज्जा, २० मन तथा इन्द्रियोंकी स्थिरता, २१ तेजस्विता, २२ क्षमा, २३ धीरज, २४ पवित्रता, २५ अद्रोह—नुकसान करनेवालेका भी बुरा करनेकी इच्छा न रखना और २६ अपने लिये बहुत इज्जतकी रुचि न रखना—हे अर्जुन! जो दैवी सम्पत्ति प्राप्त करके जन्मे हुए होते हैं उनमें ये सब गुण होते हैं।

निडरता दैवी सम्पत्तिकी नींव है।

बन्धुओ! दैवी सम्पत्तिके इन २६ लक्षणोंमें पहले ही श्लोकमें पहला लक्षण यह है कि किसीसे न डरना। और यह निडरता ही दैवी सम्पत्तिका मूल है। क्योंकि जिसमें निडरता होती है उसीमें दूसरे सद्गुण आ सकते हैं। इस

लिये जिस हरिजनको ईश्वरी रास्तेमें आगे बढ़ना हो उसको पहले सब तरहके डरसे छूटना चाहिये, निडर होना चाहिये, निर्भय होना चाहिये, हिम्मतवर होना चाहिये, बहादुर होना चाहिये और भयंकर आसुरी सम्पत्तिका महाभारत युद्ध जीत सकने योग्य अर्जुन सा विजयी योद्धा होना चाहिये। डरपोकसे या हिजड़ेसे धर्मका पालन नहीं हो सकता। इसलिये भगवानने कहा है कि—

पौरुषं नृषु

अ० ७ श्लो० ८

यानी पुरुषोंमें पुरुषार्थ मैं हूँ। इतना ही नहीं, भगवान कहते हैं कि—

तेजस्तेजस्विनामहम्।

अ० ७ श्लो० १०

अर्थात् तेजस्वियोंका तेज मैं हूँ। और कहते हैं कि—

बलं बलवतामस्मि

अ० ७ श्लो० ११

बलवानोंका बल मैं हूँ।

दण्डो दमयतामस्मि।

अ० १० श्लो० ३८

दण्ड देनेवालोंका दण्ड मैं हूँ और

जयोऽस्मि व्यवसायोऽस्मि।

अ० १० श्लो० ३६

जय करनेवालोंमें जय मैं हूँ और उद्यमीमें उद्यम मैं हूँ।

इन सब महान गुणोंमेंसे—जिनके अन्दर परमात्मा आप रूपसे हैं—एक गुण भी अगर ठीक ठीक खिला हो तो उस एक गुणसे भी ईश्वरका दर्शन हो सकता है। ऐसे महान गुण

निडरताके अन्दर हैं। पहले जिसमें निडरपन हो उसीमें ये सब गुण आ सकते हैं। इससे दैवी सम्पत्तिके छब्बीस लक्षणोंमें निडरताको पहला नम्बर दिया है। इसलिये हर एक हरिजनको अपना धर्म पालनेमें हमेशा निडर रहना चाहिये। बिना निडर हुए, कोई ईश्वरके सामने नहीं जा सकता और न उसको मोक्ष हो सकता। इसलिये किसीसे न डरनेको भगवानने दैवी सम्पत्तिका पहला लक्षण माना है। सब हरिजनोंको यह गुण प्राप्त करनेकी खास चेष्टा करनी चाहिये। निडरता दैवी सम्पत्तिकी नीव है, इसलिये जब नीव मजबूत होगी तब इमारत टिक सकेगी। जब नीवका ही ठिकाना न होगा तब ऊपरकी सब छाजन निकम्मी हो जायगी। इसलिये ऐसा कीजिये कि नीव मजबूत हो।

हम अपनी आत्माका बल नहीं जानते इससे डरा करते हैं।

भाइयो! दैवी सम्पत्तिका मूल पाया अभय है यह बात सच है पर यह अभयपन कब आता है यह आपको मालूम है? और इस समय जो हममें अभयपन नहीं है इसका कारण आप जानते हैं? अगर ये दो मूल बातें हमारी समझमें आ जायँ तो हम आसानीसे निडर हो सकते हैं। इसलिये यह भेद समझनेकी कोशिश करनी चाहिये। इसके लिये महात्मा लोग कहते हैं कि हमने अपने मालिकको नहीं पहचाना है इससे हमको डर, हुआ करता है, हमने अनन्त ब्रह्माण्डके नाथकी शरण नहीं ली है इससे हम मेंढकोंसे डरा करते हैं और हम असली वस्तुको नहीं पहचानते इससे हजारों तरहकी नाहककी दहशत रखते हैं। अगर हमारी समझमें आजाय कि हम

कौन हैं, हमारा मालिक कौन है और जिन चीजोंसे हम डरा करते हैं उन चीजों का बल कितना है—इन सब विषयोंको अगर हम ठीक ठीक समझ लें—तो फिर किसी चीजसे हमें डर न हो। क्योंकि हम आत्मा हैं, हम परमात्माके अंश हैं, हम ईश्वरके बालक हैं, सर्वशक्तिमान महान परमात्मामें जितने गुण तथा जितनी शक्तियाँ हैं वे सब गुण तथा वे सब शक्तियाँ हमारी औकातके अन्दाजसे हममें भी हैं और ये सब दैवी गुण तथा अलौकिक शक्तियां जगतकी और सब चीजोंसे हजार गुनी श्रेष्ठ हैं। जगतकी सब चीजोंपर राज्य करनेके-लिये परम कृपालु परमात्माने हमें यहाँ भेजा है, कुछ चीजोंसे डरकर रोया करनेके लिये हमें यहाँ नहीं भेजा है। इसलिये हमें बेडर होकर इस संसारमें रहना चाहिये और सब वस्तु-ओंको प्रभुके नामसे, प्रभुके लिये हमें अपने अधिकारमें रखना चाहिये। इसके बदले छोटी छोटी वस्तुओंसे डरा करना हमारी कितनी बड़ी नालायकी है? हे भगवान! ऐसी कमजोरीसे, ऐसी अज्ञानतासे और ऐसी पोलसे हमें छुड़ानेकी कृपा कर, कृपा कर।

डर मिटानेका सबसे उत्तम और सहज उपाय।

अगर इस प्रकार आप अपनी आत्माका बल न समझ सकें और उसके अनुसार न चल सकें तो एक दूसरा विचार कीजिये। वह यह कि हमारा मालिक कौन है? हमारा मालिक अनन्त ब्रह्माण्डका नाथ है। हमारा मालिक चंद्र-सूर्यको बनानेवाला है; हमारा मालिक आकाश पातालकी सारी हकी-कत जाननेवाला है; हमारा मालिक रत्ती, रत्तीका हिसाब करनेवाला तथा बदला देनेवाला है; हमारा मालिक सब-

जीवोंको जीवन देनेवाला है; हमारा मालिक सब प्रकारके ऐश्वर्यका मालिक है; हमारा मालिक सदा रहनेवाला है, हमारा मालिक प्रेमस्वरूप है, ज्ञानस्वरूप है और आनन्द स्वरूप है; हमारा मालिक रूपवान से रूपवान है; बड़ेसे बड़ा है, भलेसे भला है; चतुरसे चतुर है और शान्तिका समुद्र है; इतना ही नहीं, वह वर्षा करनेवाला है, फलोंमें रस डालनेवाला है; फूलोंमें सुगंध डालनेवाला है और सब प्राणियोंको प्रेरणाशक्ति देनेवाला है। उस परम कृपालु पिता परमात्माने कौल किया है कि—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

अ० ९ श्लो० २२

जो आदमी, और किसी जगह मनको न रखकर एक मेरा ही चिन्तन करते हैं और पूरे तौरपर मुझे ही भजते हैं उन हमेशा मेरे साथ जुड़े हुए मनुष्योंका योगक्षेम मैं करता हूँ, अर्थात् उनकी जरूरतकी चीजें मैं जुटाता हूँ और जो रक्षा करने योग्य चीजें हैं उनकी रक्षा मैं करता हूँ।

बताइये, अब इसमें फिकर करनेकी बात कहाँ रही? भय रखनेकी गुंजाइश कहाँ रही? और रँडरोना रोनेकी जगह कहाँ रही? यह सब तभी होता है जब हम अपने मालिकका बल नहीं समझते। इसलिये अपने मालिकके बल, उसकी महिमा, उसके गुण, उसके आकर्षण, उसके सौन्दर्य और उसके बड़प्पनका विचार कीजिये तब आपको सब तरहकी दहशत तुरन्त ही मिट जायगी, भाइयो! अपने मालिक सर्वशक्तिमान महान परमात्माका बल समझिये।

जिन चीजोंसे आप डरते हैं वे चीजें बड़ी हैं या आप बड़े हैं?

अब तीसरी बात यह विचारिये कि जिन चीजोंसे आप डरते हैं उनका बल कितना है? वे चीजें आपसे बड़ी हैं या आप उन चीजोंसे बड़े हैं? अगर चीजें आपसे बड़ी हों तो आपका डरना वाजिब हो सकता है, पर चीजोंसे आप बड़े हों तो फिर उनसे डरनेकी कोई जरूरत नहीं है। अब हमें यह समझना चाहिये कि जगतकी चीजोंका बल अधिक है कि हमारी आत्माका बल अधिक है? इसके लिये शास्त्र तथा महात्मा लोग कहते हैं कि जगतकी हर एक चीज तथा हर एक घटना नाशवंत है परन्तु आत्मा अमर है; जगतकी सब चीजें जड़ हैं पर आत्मा चैतन्य है; जगतकी हर एक वस्तुके रूप तथा गुण बदल जाते हैं पर आत्मा हमेशा एक ही स्वरूपमें रहती है; जगतकी हर एक वस्तु मिथ्या है पर आत्मा सत्य है; जगतकी वस्तुएं कमजोर मनके मनुष्योंकी इन्द्रियों तथा मन पर किसी कदर असर कर सकती हैं पर आत्मा इन्द्रियों, मन तथा और सब चीजों पर हुकूमत कर सकती है, और जगतकी हर एक वस्तुका मायासे सम्बन्ध है परन्तु आत्माका परमात्मासे सम्बन्ध है; इससे जगतकी हर एक चीजके बलसे हमारी आत्माका बल करोड़ों गुना अधिक है। इसलिये जगतकी किसी चीजसे हमें कभी डरना नहीं चाहिये।

जो ईश्वरसे डरता है उसको और किसी चीजसे डरना नहीं पड़ता।

इस प्रकार विचार करनेसे हमारी समझमें आ जाता है कि हम कौन हैं। यों सोचें तो भी हमको डरनेकी कोई

बात नहीं मालूम देती। हमारा मालिक कौन है यह विचारें तो भी कोई जरूरत डरनेकी नहीं जान पड़ती और चीजोंके बलके सामने देखें तो भी डरनेका कोई कारण नहीं जान पड़ता। तिस पर भी हम अपनी जिन्दगीके रोजके अनुभवमें देखते हैं कि छोटी छोटी बातोंमें भी हम बार बार डरा करते हैं। इसका कारण क्या है? यही कि अभी तक हमने ईश्वरको पहचाना नहीं है। हम मायाकी गुलामीमें ही पड़े रहते हैं; इसीसे हम छोटी छोटी बातोंसे भी डरा करते हैं। परन्तु जो आदमी मजबूत मनके हैं, जिनमें धर्मका बल है, जिन्होंने अपने मालिकको पहचाना है, जिन्होंने अपनी आत्माका बल समझा है; जिनका जीव जगा हुआ है; जिन्होंने जगतका मिथ्यापन समझा है; जिनके हृदयमें ईश्वरकी ताली लग गयी है; जो विरहकी आगमें तपते हैं और जो पानीसे बिछुड़ी हुई मछलीकी तरह अपने उछलते प्रेमके कारण छटपटाते हैं उनको लोकलाजकी परवा नहीं होती, उनको कुलके बन्धन नहीं रोकते और उनको शास्त्रके विधि-निषेध भी बाधा नहीं डालते। वे अपने अन्तःकरणकी आज्ञानुसार ही चलते हैं, अपने नाथकी इच्छानुसार ही चलते हैं, अपने विश्वासकी डोर पर ही चलते हैं, अपनी भावनाओंमें ही मस्त रहते हैं और वे अपने अलौकिक महान आनन्दमें जगतकी छोटी छोटी बातोंका ख्याल भूल जाते हैं। इससे प्रेममग्न ब्रजकी गोपियोंकी तरह उनके सब तरहके बन्धन टूट जाते हैं और हर एक विषयमें वे निर्भय हो जाते हैं। वे शरीरके दुःखोंसे नहीं डरते, खाने पीनेकी बातोंसे नहीं डरते, इन्द्रियोंके जोशसे नहीं डरते, मनके विकारोंसे नहीं डरते, वाणीके विलास या वाणीके बाणसे नहीं डरते, मनको

हिला देनेवाले संकल्प विकल्पके बलसे नहीं डरते, बुद्धिके तर्क वितर्कसे नहीं डरते, धनकी वृद्धि या नाशसे नहीं डरते, शरीरके रोगसे नहीं डरते, भूत प्रेत या देवी देवताओंसे नहीं डरते, मसान या लड़ाईके मैदान आदि भयंकर जगहोंसे नहीं डरते, जुल्मी हाकिमों या ठग, डाकू आदि भयानक अत्याचारियोंसे नहीं डरते, विरोधियोंके कठोर वचनसे नहीं डरते, स्त्रियोंके प्रेम या कुटिलतासे नहीं डरते, जातिपांतिके बन्धनोंसे नहीं डरते, कुटुम्बके सुबीते असुबीते या रिवाज रस्मसे नहीं डरते, अपने आगे बढ़नेके अनुशीलनमें पड़नेवाली अड़चलोंसे नहीं डरते, अच्छे काम करनेमें पड़नेवाली शुरूकी कठिनाइयोंसे नहीं डरते और जीनेकी इच्छासे लोग मौतसे डरा करते हैं पर वे मौतसे भी नहीं डरते और इज्जतके डरसे लोक लाजके अनुसार पोलमपोल चला कर वे नरकमें आना पसन्द नहीं करते, बल्कि इन सब बातोंमें तथा ऐसी ही दूसरी हजारों बातोंमें वे अपना रास्ता निकाल लेते हैं और बेडर होकर रहते हैं। इस तरह वे किसी किसके डरके अधीन नहीं होते, बल्कि अपने अन्तःकरणकी प्रेरणाके अनुसार, अपनी शुद्ध भावनाओंके अनुसार निर्भयतासे आगे बढ़े जाते हैं। अपने अन्तःकरणकी आवाजके सामने या भगवद् इच्छाके सामने या अपने नाथके हुक्मके सामने या अपने जगे हुए जीवकी उत्कण्ठाके सामने या अपने महान विश्वासके बलके सामने या अपने आत्मिक बलके सामने उनको जगतकी सब बातें बहुत छोटी मालूम देती हैं, इससे वे किसी चीजसे नहीं डरते; वे सिर्फ इतनी बातसे डरते हैं कि हम अपने धर्ममें न चूक जायं। इसके सिवा वे और किसी बातसे नहीं डरते। वे अनन्त ब्रह्माण्डके नाथसे डरते

हैं, इससे-कीड़े मकोड़ोंसे, मेंडकोंकी टर्र टर्रसे, अंधेरी जगहों-से या अपने अन्तःकरणके विरुद्धके रिवाजोंसे नहीं डरते, बल्कि ब्रजकी प्रेमपगी गोपियोंकी तरह अपने नाथके प्रेममें मस्त होकर बेधड़क धर्मके मार्गमें अपने प्रभुके कदम बकदम चला करते हैं। याद रखना कि जिनमें ऐसी निडरता हो, जो जगतके सब विषयोंके बीच भी अपने अन्तः करणकी प्रेरणा-ओंको रास्ता दे सकते हों और लोकलाज या घर गृहस्थीकी छोटी छोटी बातोंसे जो महान ईश्वरके पवित्र हुकमको अधिक अच्छा समझते हों वे ही ऐसे निडर हो सकते हैं। जो हरि-जन ऐसे निडर हो सकते हैं उनको दैवी सम्पत्तिके और सब गुण आपसे आप मिलते जाते हैं; क्योंकि दैवी सम्पत्तिके सब गुणोंका मूल अभयपन है, इसलिये जहां अभयपन हो वहां सब तरहके गुण स्वभावसे ही आ मिलते हैं।

सब गुणोंका मूल है निडर होना।

जैसे सत्य पर चलनेकी रुचि हो पर यह डर हो कि इस प्रकार सच सच कह देनेसे लोगोंके पसन्द नहीं आवेगा या सच बोलना नातेदारों या किसी जातिके छोटेसे स्वार्थके विरुद्ध जाता है या सच बोलनेसे मकड़ीके जाल जैसे कानूनमें फंसना पड़ता है या सच बोलनेसे किसी मित्रको बुरा लगता है वो ऐसे मौकेपर डरपोक आदमी सच नहीं बोल सकते। परन्तु प्रभुप्रेमके कारण जिनमें आत्मिक बल आगया है और जिनमें अपने नाथका बल आगया है उन्हींमें दैवी सम्पत्तिका पहला महान गुण अभयपन--आता है, और जिनमें अभयपन आगया है वे हरिजन ऐसे मौकोंपर भी बेखटके सच बोल सकते हैं। इसी प्रकार नम्रता रखना दैवी

सम्पत्तिका लक्षण है, पर जो बड़े पोजीशन (शान) की पोलमें फस गये हैं वे समझनेपर भी नम्रता नहीं रख सकते; क्योंकि नम्रता रखनेमें उनको उनका दरजा रोकता है, उनकी दौलत रोकती है, उनका वैभव रोकता है, उनकी संगत रोकती है, और उनको लोकलाज या खान्दानका ख्याल रोकता है। परन्तु जिन हरिजनोंमें प्रभुप्रेमके बलसे निर्भयपन आगया है वे ऐसी छोटी छोटी बातोंको लात मारकर दूर रखते हैं और नम्रताको सामने रखते हैं। ऐसा कब हो सकता है यह आपको मालूम है? जब मनमें अभयपन आता है तभी ऐसा हो सकता है। इस प्रकार अन्तःकरणमें निडरपन आजानेसे सब तरहके सद्गुण पाले जा सकते हैं; क्योंकि किसी सद्गुणके पालनेके लिये जो बल चाहिये वह बल अभयपनमें है। इसलिये जिनमें अभयपन आता है उनमें आपसे आप कितने ही सद्गुण आ सकते हैं। इसीसे अभयपन दैवी सम्पत्तिका मुख्य लक्षण है और यही ईश्वरके कृपापात्र हरिजनोंका पहला लक्षण है। अगर ईश्वरका कृपापात्र होना हो, ईश्वरी धर्म्म पालनेका सच्चा बल हासिल करना हो, अपने भाइयोंका मददगार होना हो और अपनी आत्माका कल्याण करना हो तो लल्लो चप्पोमें और पोलमपोलमें मत पड़े रहिये, बल्कि अपनी आत्माका और सर्वशक्तिमान महान ईश्वरका बल समझकर तथा अनुभव कर निर्भय हूजिये, निर्भय हूजिये।

निडरपन दैवी सम्पत्तिका मूल है और वह ईश्वरके कृपापात्र भक्तका पहला लक्षण है—यह जाननेके बाद अब यह जाननेकी जरूरत है कि ऐसे भक्तको अपनी भक्तिका पहला फल क्या मिलता है। इसलिये स्वर्गकी सीढ़ीकी चौथी पैड़ीमें भक्तिका पहला फल बताया जायगा।

चौथी पैड़ी।

भक्तिका पहला फल।
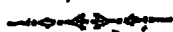
बिना फलके कोई काम नहीं होता।

"इस संसारमें सुखी जीवन बिताना भक्तिका पहला फल है।"

प्रकृतिका यह महा नियम है कि बिना फलके कोई चीज नहीं होती; क्योंकि हर एक कार्य्यका परिणाम कुछ न कुछ होता ही है। यह नियम होनेसे छोटी बातोंमें छोटा बदला मिलता है और बडी बातोंमें बड़ा बदला मिलता है। तो अब हमें यह विचार करना चाहिये कि भक्तिका पहला फल क्या है? हम आँख पसार कर देखते हैं कि जो आदमी पेड लगाता है उसको भी फल या छाया मिलती है: जो आदमी पशुओं या पक्षियोंको पालता है उसको भी फायदा होता है, जो आदमी आगके पास बैठता है उसको भी गर्मी मिलती है और जो मजदूर अच्छे आदमियोंकी मजदूरी करता है उसको भी बहुत फायदा होता है। अब जो हरिजन सर्वशक्तिमान परम कृपालु महान ईश्वरकी भक्ति करते हैं उनको बहुत बडा लाभ मिलनेमें क्या आश्चर्य है? क्योंकि जगतके और सब काम करनेमें जितनी मिहनत करनी पड़ती है, अपना जितना स्वार्थ त्यागना पड़ता है और मनको जितना वशमें रखना पड़ता

है उससे कहीं अधिक त्याग महान ईश्वरकी भक्ति करनेमें हरिजनोंको करना पड़ता है।

भक्ति माने क्या ?

भक्ति यह है—श्रद्धा रखनी चाहिये; ईश्वरपर तथा जगतके सब जीवोंपर प्रेम रखना चाहिये; पापके विचारोंसे बचना चाहिये; यथाशक्ति दान करना चाहिये; मनको, वाणीको और इन्द्रियोंको विषयोंमें रमनेसे रोकना चाहिये; महात्माओंका सत्संग करना चाहिये; ईश्वरके लिये अच्छे काम करने चाहियें; स्वार्थका त्याग करना सीखना चाहिये; अनेक प्रकारके विकारोंसे बचनेके लिये व्रत करना चाहिये, ईश्वरी ज्ञानकी खूबी तथा हरिजनोंका प्रेम देखनेके लिये तीर्थ करना चाहिये, हृदयमें एक प्रकारका स्वाभाविक अलौकिक आनन्द लूटनेके लिये ध्यान लगाना सीखना चाहिये—ऐसा करने तथा हमारे नाथकी इच्छा ही हमारी इच्छा है, हमारे नाथका रास्ता ही हमारा रास्ता है, हमारे नाथको जो पसन्द है वही हमें पसन्द है और अपने नाथका हुकम पालना ही हमारी जिन्दगीका सुख है—इस प्रकार ईश्वरके अर्पण होकर उत्तमसे उत्तम रीति पर जिन्दगी बितानेका नाम भक्ति है। याद रखना कि ऐसी सच्ची भक्तिकी ही ईश्वरके सामने असली कीमत है। अब हमें यह जानना चाहिये कि ऐसी महान भक्तिका इस जिन्दगीमें पहला फल क्या है। इसके लिये श्रीकृष्ण भगवानने श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृतनिश्चयः॥

अ० २ श्लो० ३७.

हे अर्जुन! अगर तू युद्ध करते हुए अर्थात् अपना धर्म्म पालन करते हुए मारा जायगा तो स्वर्ग पावेगा और जीतेगा तो पृथ्वीका राज्य भोगेगा। इसलिये निश्चय करके युद्ध करने अर्थात् अपना धर्म्म पालनेको उठ।

यह बात कुछ अकेले अर्जुनके लिये नहीं है बल्कि जगतके सब आदमियोंके लिये है।

बन्धुओ! याद रखना कि यह बात कुछ अकेले अर्जुनके लिये नहीं है बल्कि जगतके सब मनुष्योंके लिये है। क्योंकि जैसे अर्जुनको दुष्ट वृत्तिवाले कौरवोंसे लड़ना पड़ा था वैसे ही हम सबको भी अपनेमें जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, अभिमान आदि आसुरी वृत्तियाँ हैं उनसे लड़ना है; ऐसी लड़ाई करनेका नाम ही भक्ति है और इस लड़ाईमें जय पाना ही धर्म्मका पहला फल है। भगवान कहते हैं कि अगर तू जय पावेगा तो इस पृथ्वीका राज्य भोगेगा। याद रखना कि राज्य भोगनेमें सब तरहके सुख आ जाते हैं। जैसे, धनका सुख, वैभवका सुख, मान मर्य्यादाका सुख, मित्रोंका सुख, कुटुम्बका सुख, नौकर चाकरका सुख, गाड़ी घोड़ेका सुख, घर द्वारका सुख, परमार्थका सुख और अपनी हुकूमतका सुख आदि अनेक प्रकारके सुख आजाते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि अर्जुनको तो अपना धर्म्म पालनेसे अर्थात् अपना कर्त्तव्य पूरा करनेसे पृथ्वीका राज्य मिलनेवाला था और राज्य मिलनेसे इन सब सुखोंका मिलना कुछ आश्चर्य्यकी बात नहीं है; परन्तु हम अपना धर्म्म पालें तो उससे राज्य नहीं मिलनेका; तब हम किस तरह ये सब सुख भोग सकते हैं? और जब तक ये सब सुख न भोग सकें तब तक अर्जुनके साथ हमारी तुलना

कैसे हो सकती है? ऐसा प्रश्न बहुत आदमियोंके जीमें उठता है। इसके उत्तरमें सब भाई-बहनों को जानना चाहिये कि धर्म्म पालनेसे सिर्फ अर्जुनको ही राज्य मिला और हमें नहीं मिलेगा इसके कुछ माने नहीं। धर्म्म पालनेसे अर्जुनकी तरह हमें भी एक प्रकारका महा राज्य मिल सकता है और उस राज्यसे हम भी इस पृथ्वी पर सुख तथा हुकूमत कर सकते हैं।

आत्माका स्वराज्य।

तो अब प्रश्न यह है कि वह राज्य क्या है? महात्मा लोग कहते हैं कि उसका नाम स्वराज्य है, उसका नाम आत्माका राज्य है और अधिक गहरे उतरिये तो उसका नाम परमात्मा-का राज्य है। अब विचार कीजिये कि जिनकी आत्माका राज्य हो, जिनका अपना राज्य हो और जिनके अन्दर परमात्माका राज्य हो वे भाग्यशाली हरिजन कितना बड़ा सुख भोग सकते हैं! ऐसा अलौकिक आनन्द भोगनेके लिये हमें अपना धर्म्म पालना चाहिये और ऐसा करना चाहिये कि जिससे अपने अन्दर अपनी आत्माका तथा परमात्माका राज्य हो। अब यह सवाल उठता है कि क्या इस समय हमारी आत्माका राज्य नहीं है? उत्तर—नहीं। इस समय हमारी आत्माका राज्य नहीं है। इस समय तो हमारी आत्मा बुद्धिके तावे है, मनके कब्जेमें है, इन्द्रियोंके हुकममें है, देहके बन्धनमें है और लोकाचारके कैदखानेमें है; इससे वह पराधीन है और दुखी है। इन सब कैदखानोंसे उसको छुड़ाना और इन सब विषयों पर उसकी हुकूमत चलने देना धर्म्मका पहला फल है।

जिनके जीवनमें परमात्माका राज्य है वे ही सबसे अधिक सुखी होते हैं।

जब हममें ईश्वरका राज्य हो अर्थात् हम शुद्ध अन्तःकरणकी प्रेरणाओंके अनुसार चलें, भगवानकी इच्छानुसार चलें और आत्माके अलौकिक स्वाभाविक महान गुणोंके अनुसार चलें तो वह स्वराज्य कहलाता है और सर्वशक्तिमान दयालु महान ईश्वरने ऐसी दया की है कि जो आदमी चाहे वह ऐसा स्वराज्य पा सकता है। जिसको अपनी आत्माका ऐसा स्वराज्य मिलता है तथा अपने जीवनके अन्दर परमात्माका राज्य मिलता है वह भाग्यशाली हरिजन जगतमें सबसे अधिक सुखी हो तो आश्चर्य क्या है? सब प्रकारके दुःख पराधीनतामें होते हैं और सब प्रकारके सुख परमात्माके तथा आत्माके राज्यमें होते हैं; इसलिये हम सबको ऐसा अलौकिक चक्रवर्ती राज्य प्राप्त करनेकी कोशिश करनी चाहिये।

इसी जिन्दगीमें सुख पानेका उपाय।

अब हमें यह जानना चाहिये कि परमात्माका राज्य मिलनेसे हम इसी जिन्दगीमें किस तरह सुखी हो सकते हैं। अगर यह भेद हमारी समझमें आ जाय तो हम ईश्वरी रास्तेमें बड़ी ही आसानीसे बहुत आगे बढ़ सकते हैं तथा अपनी जिन्दगी सुधार सकते हैं। और अपनी इस समयकी जिन्दगी सुधारना तथा इसी संसारमें और इसी जिन्दगीमें सबसे उत्तम सुख भोगना ही धर्मका पहला फल है। इसलिये यह भेद समझना चाहिये कि हम अभी कैसे सुखी हो सकते हैं। इसके लिये महात्मा लोग कहते हैं कि

दूसरे संसारिक लोगोंकी अपेक्षा सच्चे हरिजनोंको देहके

दुःख बहुत कम होते हैं; क्योंकि जो आदमी खाने पीनेमें नियम नहीं रखते, सोने बैठनेमें नियम नहीं रखते; मौज शौककी हद नहीं रखते, और छोटी बातोंके विचारमें ही अपनी जिन्दगी गंवा देते हैं उन आदमियोंको शरीरके रोग अधिक होते हैं। रहन सहन पर रोग मुनहसर है। रहन सहन अच्छी हो तो रोगसे बच सकते हैं और रहन सहन खराब हो तो रोग और पकड़ सकता है। इसलिये जो विलासी आदमी अपने बेहद मौज शौकमें तथा शरीरके सुखका ख्याल रखनेमें ही पड़े रहते हैं उनको रोग अधिक होते हैं। जो हरिजन मौज शौककी परवा नहीं रखते, प्रकृतिके नियमों पर चलते हैं और दैव इच्छासे कभी दुःख आ पड़े तो उस दुःखको भगवद् इच्छा समझ कर आसानीसे सह लेते है उनको देहके बहुत दुःख नहीं होते। अगर कभी थोड़ा बहुत दुःख हो भी तो वह जल्द दूर हो जाता है। जैसे, आज कलके अमीर लोग रोगोंके विचारोंमें ही अपने मगजको लगा रखते हैं और नन्हीं सी फुन्सी हो या जरा सिर धमकता हो तो भी वे दिनभर डाकूर का नाम जपा करते हैं और खुशामदी लोगोंसे ऐसी ही बातें सुना करते हैं कि ओहो! आपको सर्दी कैसे लग गयी? इसका उपाय जल्द करना चाहिये: किसी डाकूरको बुलवाया है कि नहीं? आज कलके मौसिममें सर्दी बहुत खराब है; आपकी तबीयत बहुत नाज़ुक है इसलिये खूब सम्हलके रहियेगा, आज कलका मौसिम बुरा है; इससे जरा भी कुछ हो जाता है तो मुझे बड़ी चिन्ता हो जाती है; ज्यों ही मैंने सुना कि आपको जुकाम हो गया है त्यों ही दौड़ा आया। इस प्रकार अगल बगल वाले स्वार्थी आदमी कागका बाघ किया करते हैं और उनसे गप्प करके ऐसे हा भयभरे विचार नजरके

सामने रखा करते हैं जिससे उनकी बीमारी और बढ़ती जाती है; क्योंकि मनका असर तन पर होता है और तनका असर मन पर होता है; इसलिये जिनका मन कमजोर है उनका शरीर रोगी होता है। पर जो हरिजन हैं वे ऐसी बातोंकी बहुत परवा नहीं रखते; क्योंकि उन्हें ऐसी निकम्मी खुशामदकी बातें सुननेका समय नहीं होता; इतना ही नहीं, वे अपने भाइयोंकी सेवा करनेके काममें तथा ईश्वरकी महिमाके ऊंचे विचारोंमें इतने मस्त रहते हैं कि उन्हें छोटी छोटी चीजोंका ख्याल ही नहीं आ सकता। इससे कुदरती तौर पर उनको कितने ही रोग होते ही नहीं; इस कारण वे औरोंसे कहीं अच्छी तरह शरीरके सुख भोग सकते हैं। अतएव शरीरको नीरोग रखना और आरोग्यताका सुख भोगना भक्तिका पहला फल है।

व्यवहारी आदमियोंको जैसे दुःख होते हैं वैसे दुःख हरिजनोंको नहीं होते।

व्यवहारी आदमियोंकी इन्द्रियां उनके वशमें नहीं होतीं, इससे उन्हें अनेक प्रकारके दुःख होते हैं। जैसे, किसीको नाटक देखनेका शौक होता है तो वह बहुत ज्यादा रात तक जाग कर नाटक देखता है; इससे उसकी तन्दुरुस्ती बिगड़ती है। किसीको गीतका शौक होता है तो वह उस शौकके मारे अनेक प्रकारकी उपाधियां और अनेक प्रकारका खर्च सहता है, इतना ही नहीं वह उसमें ऐसा पागल हो जाता है कि दूसरी जरूरी बातोंको भी भूल जाता है तथा तन्दुरुस्तीके नियमोंकी भी परवा नहीं करता; इससे उसको जान बूझकर बीमारी भोगनी पड़ती है। इसी प्रकार किसीको शराबकी, अफीमकी

भांगकी, गांजेकी, तमाखूकी, कोकेनकी या ऐसे ही किसी खराब नशेकी लत पड़ जाती है; इससे वह आरोग्यताके नियम नहीं पाल सकता जिससे बीमार पड़ता है और हैरान होता है। किसीका चटोरपन बहुत बढ़ जाता है इससे वह अपनी अँतड़ीपर ज़ुलम करता है और सारा दिन खाने पीनेमें ही गँवा देता है तथा इसी क़िस्मके विचारोंमें हमेशा पड़ा रहता है जिससे उसकी तबीयत दिनपर दिन खराब होती जाती है। इसी प्रकार कोई खुशबूके पीछे दीवाना होता है, वह किस्म किस्मके सेण्ट, पोमेटम, सुगन्धित तेल और इत्रोंमें ही लगा रहता है और इसीमें अपना कीमती वक्त, रुपया पैसा और अपनी अनमोल तन्दुरुस्ती खो देता है। कोई तुच्छ चीजें देखनेमें तथा विषयवासनामें अपनी महान शक्तियाँ गंवा देता है। इस प्रकार अपनी जुदी जुदी इन्द्रियोंको खुश रखनेके लिये भिन्न भिन्न आदमी अपनी अलौकिक शक्तियाँ खो देते हैं। परन्तु ईश्वरकी महिमा समझनेवाले ज्ञानी महात्मा और प्रेमी भक्त इस प्रकार अपनी इन्द्रियोंका दुरुपयोग नहीं करते। वे अपनी इन्द्रियोंके जोरको जगतकी सेवा करनेके काममें लगाते हैं; वे अपनी इन्द्रियोंको अपनी आत्माका स्वराज्य स्थापन करनेमें लगाते हैं और वे परम कृपालु सच्चिदानन्द परमात्माके साथ एकता करनेमें ही अपनी इन्द्रियोंका उपयोग करते हैं। इससे व्यवहारी अज्ञान आदमियोंको अपनी इन्द्रियोंके बुरे उपयोगसे जिस किस्मके दुःख होते हैं उस किस्मके दुःख हरिजनोंको नहीं होते। इस कारण वे अपनी इसी जिन्दगीमें दूसरोंसे कहीं अधिक सुख भोगते हैं। इस प्रकार वर्त्तमान कालमें ही सुख भोगना भक्तिका पहला फल है।

संसारी लोगोंसे हरिजन अपनी मौजूदा जिन्दगीमें ही जो अधिक सुख भोगते हैं उसका कारण।

संसारी लोगोंसे हरिजन अपनी इसी जिन्दगीमें अधिक सुख भोगते हैं इसका तीसरा कारण यह है कि संसारी लोगोंकी वाणीमें कठोरता होती है और स्वार्थ भाव होता है; यहाँ तक कि उनकी वाणी मेरा तेरा करनेवाली और रूखी होती है, इससे वह दूसरे आदमियोंको नहीं रुचती, तो भी उनको जानबूझ कर अधिक बकबक करनेकी टेव पड़ जाती है इससे कड़ा बोलनेके कारण बहुत आदमियोंसे उनकी बार-बार तकरार हुआ करती है। परन्तु भक्तोंकी वाणी मीठी होती है, सच्ची होती है, कुछ खास खूबीवाली होती है, सबके रुचने लायक होती है और अपना तथा दूसरोंका कल्याण करनेवाली होती है; इतना नहीं वे प्रसङ्गवश बहुत थोड़ा और जरूरतभर ही बोलते हैं और जो बोलते हैं उसमें कुछ गहरा तत्त्व, ऊँचा अनुभव और सच्ची सीख होती है। और वह भी बड़ी दिलदारी-से, बड़ी नरमीसे, बड़े प्रेमसे और बड़ी सादगी से कहते हैं। इससे सामनेके आदमीपर उसका तुरत ही असर पड़ता है। सामनेके आदमी ऐसे भक्तोंको स्वाभाविक तौरपर प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखते हैं, उनका कहना मानते हैं, उनका बखान करते हैं, और उन्हें उनकी सेवा करनेकी चाह होती है। इससे हरिजन इसी जिन्दगीमें सुख पाते हैं और उनसे सम्बन्ध रखनेवाले आदमी भी सुखी होते हैं। इस जगतमें वाणीका असर बहुत बड़ा है। हम देखते हैं कि नाहकके हजारों झगड़े वाणीकी कठोरतासे पैदा होते हैं। जैसे, कई आदमी पानीके नलके पास जमा होगये हों तो एक आदमी दूसरेसे कहता है कि बस बस हटो, इतनी देर

क्यों करते हो ? घंटा भर होगया अकेले नल रोककर बैठे हो और हम सब खड़े हैं। देखते नहीं हो ? तब दूसरा कहता है कि नल क्या तुम्हारे बापका है कि गर्मी दिखाते हो ?, मेरे सामने तुम्हारी नहीं चलेगी; ऐसा मिजाज घरमें जोरूके सामने करना; दूसरा कोई नहीं सहेगा। यों बोलते बोलते लड़ जाते हैं। इसके बदले कोई हरिजन हो तो वह कहता है कि भाई जरा जल्दी करो। तो भी वह पहला मूर्खदास अकड़बाजीमें आकर जवाब देता है कि जल्दी क्या करें ? हमसे देर होगी हीं। तब भक्त उलटे ठंढे होकर कहता है कि अच्छा भैया ! हम खड़े हैं तुम आरामसे अपना काम कर लो। ऐसी शान्ति, ऐसी अच्छाई और ऐसी मिठासका परिणाम थोड़ी ही देरमें यह होता है कि पहला हेकड़ीबाज आदमी अपने मनसे ही शरमा कर अन्तको वहांसे हट जाता है और उस भक्तको जगह दे देता है। इसी प्रकार रेलमें बैठे हुए आदमी अपने पास खाली जगह पड़ी हो तो भी दूसरे आदमियोंको अपने डब्बेमें नहीं घुसने देते; इससे कितनी ही बार ओछे दरजेकी बोलचाल और मेरी तेरी हो जाती है। परन्तु जो हरिजन होते हैं वे ऐसी बातोंमें अपनी जबान नहीं बिगाड़ते, बल्कि आप जरा तंगी सहकर भी दूसरेके लिये जगह कर देते हैं। इसी प्रकार मन्दिरोंमें, नाटकोंमें, पड़ोसियोंमें, स्कूलोंमें, ढाबों-में और नहानेकी जगहोंमें नाहक हमेशा तकरार हुआ करती है। उसका कुछ भी खास कारण नहीं होता या न कोई गहरी लाग डांट होती है; बल्कि सिर्फ वाणीकी कठोरतासे ही इस किसके टंटे हुआ करते हैं और इस प्रकार लाखों आदमी बिना कारण अपनी वाणीको अंकुशमें न रखनेसे ही दुःख पाया करते हैं। परन्तु ईश्वरके कृपापात्र हरिजन सब

मौकों पर अपनी वाणीको वशमें रखते हैं; इससे वे इसी जिन्दगीमें औरोंसे कहीं अधिक सुख भोगते हैं। इस प्रकार इसी जिन्दगीमें सुख भोगना भक्तिका पहला फल है।

साधारण आदमियोंका मन बहुत कमजोर होता है इससे वे दुखी रहते हैं और हरिजन मजबूत मनके होनेसे सुखी रहते हैं।

संसारी आदमी अपने मनमें हमेशा निकम्मे संकल्प विकल्प किया करते हैं और अगली पिछली बिलकुल खराब फिकर किया करते हैं, इससे वे नाहक आपसे आप दुखी होते हैं। जो हरिजन होते हैं वे अपनी लगाम ईश्वरको सौंप देते है, इससे वे अपने लिये हलके दरजेकी फिकर नहीं करते: इतना ही नहीं, बल्कि वे अपना मन ऊचे दरजेके विचारोंमें तथा ईश्वरके गुणगानमें या नाम स्मरणमें ही लगा रखते हैं जिससे उनको दुःखके विचार नहीं आते, बल्कि खास आनन्दके विचार ही आया करते हैं। इससे वे इसी संसारमें सुखी जिन्दगी भोगते हैं। अनेक प्रकारके दुःख मनकी कमजोरीसे ही पैदा होते हैं। व्यवहारी लोगोंका मन हमेशा बहुत कमजोर होता है: क्योंकि वे सब बहुत करके बारबार दुःखके विचार ही किया करते हैं और जो इस समय नहीं है, बल्कि पहले बीत गया है उसका अफसोस किया करते हैं तथा आगे इस किसका दुःख आवेगा यह पहले ही सोच कर बिना कारण दुखी हुआ करते हैं। परन्तु जो हरिजन होते हैं वे जहां तक बनता है दुःखका विचार ही नहीं करते। क्योंकि वे समझते हैं कि

दुःखके विचार करना ईश्वरका सामना करनेके बराबर है

और यह धर्मके विरुद्ध है तथा एक तरहका पाप है। क्योंकि ईश्वर आनन्दस्वरूप है, वह हमारा पिता है, वह हमारी रक्षा करनेवाला है और वह हमें तारनेवाला है। इसके सिवा धर्ममें ऐसा बल है कि वह पवित्रता देता है, संतोष देता है, शान्ति देता है और हमेशा कल्याणके मार्गमें ही ले जाता है। ऐसे उत्तम धर्म और सर्वशक्तिमान आनन्दस्वरूप ईश्वरके हमारे हृदयमें रहते हुए भी अगर हमें आनन्द न मिले, बल्कि दुःख ही हुआ करे तो वह धर्म हमारे किस कामका? और वह ईश्वर हमारे किस कामका? जिसके अन्तःकरणमें धर्मका बल तथा ईश्वरकी सत्ता स्पष्ट रीतिसे न हो वह भक्त ही काहेका? और जिसमें धर्मका बल है उसमें दुःख कैसे रह सकता है? जो दुःख है वह अधर्मका फल है और धर्म तो हमेशा कल्याण करनेवाला ही होता है। इसलिये जहां धर्म हो वहां दुःख हो ही नहीं सकता। इसके सिवा जिसके मनमें धर्म होता है उसके मनमें ईश्वर भी होता है और याद रखना कि ईश्वर सदा आनन्दस्वरूप ही है इसलिये जिसके हृदयमें ईश्वर होता है उससे दुःख तो हजारों कोस दूर रहता है। जैसे उंजेला और अंधकार एक साथ नहीं रह सकते वैसे ही ईश्वर और दुःख कभी एक साथ नहीं रह सकते। दुःख पापका फल है, इसलिये दुःख एक तरहका महा अन्धकार है। और महान ईश्वर सबसे बड़ा प्रकाश है, इस दिव्य प्रकाशके पास किसी किसका अंधकार टिक नहीं सकता। इसलिये प्रभु-प्रेमवाले सदा आनन्दमें

रहते हैं। इस प्रकार इसी जिन्दगीमें सुख भोगना-धर्मका पहला फल है।

अज्ञानी लोग सुखका असर अपने हृदयमें नहीं टिका सकते, इससे वे दुखी होते हैं।

इस प्रकार इसी जिन्दगीमें हरिजन जो सुख भोगते हैं उसका यह भी एक मुख्य कारण है कि साधारण लोग ईश्वरकी कृपाकी महिमा नहीं समझते, इससे वे सुखकी कीमत नहीं समझ सकते। परन्तु हरिजन ईश्वरकी कृपाका तत्त्व समझते हैं, इससे वे सुखकी कीमत समझते हैं। उनके अन्तःकरणमें ईश्वरका उपकार माननेकी वृत्ति हमेशा जगी रहती है जिससे वे हर बातमें वारंवार ईश्वरका उपकार माना करते हैं और उसकी महिमा देखा करते हैं। पर व्यवहारी आदमी उससे उलटा ही बर्ताव करते हैं अर्थात् वे जितना चाहिये उतना ईश्वरका उपकार नहीं मानते; क्योंकि उनमें जैसा चाहिये वैसा ईश्वरप्रेम मौजूद नहीं होता और ईश्वरकी महिमा समझमें आयी नहीं होती इससे वे प्रभु-कृपाकी वाली सुखकी कीमत नहीं समझ सकते। इस कारण व्यवहारी आदमी हमेशा दुःखके विचार किया करते हैं जिससे उनके हृदयमें दुःखके दाग पड़ जाते हैं। इसके सिवा वे इतनी गहराईसे और इतने ध्यानसे तथा इतनी अज्ञानतासे दुःखके विचार करते हैं कि देखकर समझदार आदमीको डर लगे बिना न रहे। इसका परिणाम यह होता है कि जैसे हलसे जमीन जोती जाय तो जमीनके भीतर मोटी दरार हो जाती है वैसे ऐसे आदमियोंके अन्तःकरणमें दुःखके दाग पड़ जाते हैं; क्योंकि वे अपने छोटे दुःखोंको भी बहुत

जोर देकर हलकी तरह चलाते हैं और सुखोंको ऊपर ही ऊपर उड़ा देते हैं, उनका असर अपने अन्तःकरण तक पहुँचने ही नहीं देते बल्कि जैसे कड़े रास्ते पर बाइसिकल दौड़ जाती है और उसका दाग नहीं पड़ता वैसे ही वे अपने सुखोंको अपनी बेपरवाहीसे अधरके अधर ही उड़ा देते हैं और उसके गहरे दाग अपने अन्तःकरणमें नहीं पड़ने देते; इससे वे दुखी रहते हैं। जैसे, जब अच्छा कपड़ा पहननेको मिले उस समय ईश्वरका उपकार मानने और उस सुखको अपने हृदयमें भर रखनेको उन्हें नहीं सूझता; पर उस कपड़े में जरा दाग लग जाय तो उस दागका दुःख वे अपने दिलमें भर रखते हैं। इसी तरह अच्छा अच्छा खाने-पीनेको मिले तो उस सुखका मोल नहीं समझते पर जब किसी दिन जरा अबेर करके खानेको मिले या सादी चीज खानेको मिले तो उस समयके दुःखको अन्तःकरण तक पहुँचा देते हैं। इसी प्रकार हमारी हर रोजकी ज़िन्दगीमें अनेक आदमियोंकी तरफसे हम पर अनेक प्रकारके उपकार हुआ करते हैं पर उन उपकारोंकी कीमत हम नहीं समझते; किन्तु किसी दिन किसीकी तरफसे जरा अड़चल पड़ जाय तो उस दुःखको याद करके उसका दाग हम अपने दिलमें बिठाया करते हैं जिससे हम रोनी सूरत बनाये रहते हैं। हरिजन लोग क्या करते हैं इसकी आपको खबर है?

हरिजन हर बातमें ईश्वरका उपकार मानते हैं, इससे उनके भारी दुःख भी हलके हो जाते हैं।

वे हर बातमें ईश्वरका उपकार ही माना करते हैं। जैसे, जीमते वक्त वे ईश्वरका उपकार मानते हैं और शुद्ध अन्तः-

करणसे यह समझते हैं कि हमारी नालायकीके अनुसार तो हमें एक चुटकी धूल भी नहीं मिलनी चाहिये परन्तु उसके बदले यह मीठे अन्नके कौर मिलते हैं यह केवल उसीकी कृपा है। यह सोच कर अपने अन्तःकरणमें उस किस्मकी उपकार वृत्तिको जगाते हैं। इसी तरह किसी भलेमानससे मिलाप हो तब भी यही समझते हैं कि ईश्वरकी कृपासे ही इस सज्जनसे हमारी मुलाकात हुई है। जब कुछ धन मिलता है, मान मिलता है, ज्ञान मिलता है अथवा ऐसा ही कुछ दूसरा लाभ होता है तब हर बार वे ईश्वरका उपकार मानते हैं और हमेशा सुखके विचार ही किया करते हैं। इसके सिवा दूसरे संसारी आदमियोंको जहाँ कुछ खास नयापन न दिखाई देता हो वहाँ भी उनको ईश्वरकी कृपा दिखाई देती है। जैसे, हवा चलती है तो उसमें उनको ईश्वरकी कृपा दिखाई देती है; सूर्य्यके उगनेमें भी उनको ईश्वरकी कृपा दिखाई देती है; वे किसीके छोटे लड़केको स्कूलमें पढ़ने जाते देखते हैं तो उसमें उनको ईश्वरकी कृपा दिखाई देती है; किसी अखबारमें पढ़ते हैं कि फलाने देशमें फलाने गृहस्थने फलाना धर्म किया तो वे खुश हो जाते हैं। ऐसी बातोंमें सीधे तौर पर जहाँ अपना कुछ सम्बन्ध न हो वहाँ भी उनको आनन्द हुआ करता है। इसके सिवा जब उनके ऊपर कोई दुःख आ पड़ता है तब उस दुःखमें भी वे कुछ खूबी समझते हैं और उसमें भी उनको ईश्वरकी कृपा दिखाई देती है। जैसे काँटा गड़ जाय तो भी दूसरे लोगोंकी तरह वे अफसोस नहीं करते; बल्कि उल्टे यह समझते हैं कि सूलीका संकट आनेवाला रहा होगा वह सूईसे कट गया। इसी तरह कुछ नुकसान होता है तो यह सोचते हैं कि ईश्वरकी कृपासे इतनेसे ही बच गये, अगर

कुछ अधिक नुकसान होता तो भी हम क्या कर सकते थे? बीमार पड़ते हैं तब यह ढारस रखते हैं कि कुछ भला करनेके लिये ही यह बीमारी आयी है और जब कुटुम्बमें मृत्यु जैसा गम्भीर प्रसङ्ग आ पड़ता है तब भी वे यही सोचते हैं कि इस दुनियाके सुखोंसे स्वर्गके सुख कहीं अच्छे हैं; यह सोच कर ऐसे कठिन अवसर पर भी वे दुखी नहीं होते। और अगर कभी संयोगवश कुछ अफसोस हो जाता है तो भी वह अफसोस झटपट बाइसिकलकी तरह ऊपर ही ऊपर दौड़ जाता है; वे उस अफसोसके दाग अपने दिलमें नहीं पड़ने देते इससे वे इस जिन्दगीमें सदा सुखी रहते हैं। और इस प्रकार इसी जिन्दगीमें सुख भोगना धर्म्मका पहला फल है।

संसारियोंको बहुत सुख रहने पर भी दुःख दिखाई देता है और हरिजनोंको अनेक दुःखोंके बीच भी सुख दिखाई देता है।

बन्धुओ! इस प्रकार हरिजन अपने अन्तःकरणमें सुखके दाग डालते हैं और दुःखको बाहर ही रख छोड़ते हैं। इसके सिवा वे बहुत गहराईसे और बहुत धीरे धीरे हलकी तरह बहुत जोर देकर अपने दिलमें सुखके दाग डालते हैं और दुःखको बाइसिकलकी तरह सरपट दौड़ा देते हैं; इससे उनका सुख समुद्र सा हो जाता है और दुःख बूँद सा दिखाई देता है। परन्तु व्यवहारी आदमी इससे उल्टा ही बर्ताव करते हैं, वे सुखको बाइसिकलकी तरह दौड़ा देते हैं और अपने दिलमें दुःखके दाग डाला करते हैं; इससे उनको सुख सपने सा लगता है और दुःख समुद्र सा लगता है। इसमें उनकी अज्ञानताका दोष है। उनमें धर्म्मका बल नहीं है तथा

उन्होंने जैसा चाहिये वैसा ईश्वरकी महिमाको नहीं समझा है; इससे वे दुखी हुआ करते हैं। हरिजनोंके सुखी होनेका यह भी एक मुख्य कारण है कि दूसरोंका सुख देखकर भी वे सुखी होते हैं और संसारी आदमी, दूसरोंका सुख देखकर सुखी होनेकी कौन कहे, अपना सुख देखकर भी सुखी नहीं होते; क्योंकि अपने सुखमें भी उनको काँटा दिखाई देता है और वे ऐसा ही चश्मा पहने रहते हैं कि अपना बहुत सुख भी उनको थोड़ा लगता है। इसके सिवा संसारियोंको अपना बहुत नजदीकका सुख भी बहुत दूर दिखाई देता है और हरिजनोंको बहुत दूरका सुख भी बहुत निकट दिखाई देता है। ऐसे ऐसे अनेक कारणोंसे दुनियाके हर किसीसे हरिजन इसी संसारमें और अपनी इसी जिन्दगीमें कहीं अधिक सुख भोगते हैं। इस प्रकार इसी जिन्दगीमें शान्तिसे अलौकिक आनन्द भोगना भक्तिका पहला फल है।

भक्तोंकी बुद्धि स्थिर होती है इससे वे साधारण लोगोंसे अधिक सुख भोगते हैं।

हरिजन जो इसी जिन्दगीमें सबसे अधिक सुख भोगते हैं इसका यह भी एक मुख्य कारण है कि दूसरे संसारी लोगोंकी बुद्धि जड़ होती है। क्योंकि उनका आहार विहार रजोगुणी तमोगुणी स्वभावका होता है; उनकी रहन सहन घालमेलवाली और पोलवाली होती है; उनके रीति रिवाजोंमें बड़ा बड़ा आडम्बर और साफ साफ दाम्भिकता होती है, उनका पढ़ना लिखना पंचमेल खिचड़ीसा तथा बुद्धिको भ्रममें डालनेवाला होता है; उनकी संगत उनकी बुद्धिको ठस बना देती है और उनके छोटे २ स्वार्थ वाले बातमें उनकी बुद्धिको बहका देते हैं; इतना

ही नहीं उनमें जैसी चाहिये वैसी, अपने धर्मपर, अपनी आत्माके बलपर और सर्वशक्तिमान महान ईश्वरपर श्रद्धा नहीं होती, इससे उनकी बुद्धि बड़ी शैतान और खड़मण्डल मचानेवाली होती है। परन्तु हरिजनोंकी बुद्धिमें विश्वासका बल होता है इससे वह स्थिर होती है। इसके सिवा उनकी इन्द्रियां, वाणी तथा मन आदि उनके वशमें होते हैं; इससे वे बहुत अच्छे संयोगोंमें रहते हैं और उनकी बुद्धि ईश्वरी ज्ञानके गहरे तत्व समझती है। इससे वे दूसरे लोगोंसे अधिक सुख भोगते हैं। जिनके अन्तःकरणमें सुख है उन्हींकी बुद्धि स्थिर रह सकती है। जिनके हृदयमें, दुःख भरा है उनकी बुद्धि स्थिर नहीं रह सकती और जिनकी बुद्धि स्थिर नहीं उनको सुख कहाँ? इसके लिये श्रीकृष्ण भगवानने भी कहा है कि—

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि॥

अ० २ श्लो० ६७

पानीमें जहाजको जैसे पवन अपने वेगके अनुसार खींच ले जाता है वैसे ही जिनका मन अपनी भटकती इन्द्रियोंके पीछे दौड़ा करता है उनकी बुद्धि उसी तरफ खिंच जाती है।

और जिसकी बुद्धि खो जाती है उसको सुख हो ही नहीं सकता। इसके लिये भगवानने कहा है कि—

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम्॥

अ० २ श्लो० ६६

जिनका चित्त वशमें न हो उनके बुद्धि नहीं होती और उनके भावना भी नहीं होती; जिनके भावना न हो उनको

शान्ति नहीं मिलती और बिना शान्तिके सुख कहाँ? इसलिये प्रभु कहते हैं कि—

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

अ० २ श्लो० ६८

हे अर्जुन! जिसने अपनी इन्द्रियोंको सब प्रकारके विषयोंसे खींच लिया है उसकी बुद्धि स्थिर होती है।

और जिसके अन्तःकरणमें आनन्द हो उसीकी बुद्धि स्थिर हो सकती है। इसके लिये प्रभु कहते हैं कि—

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते॥

अ० २ श्लो० ६५

जिसका अन्तःकरण पवित्र होता है उसके सब दुःख नष्ट हो जाते हैं और ऐसे आनन्दी अन्तःकरणवालेकी बुद्धि तुरत ही स्थिर हो जाती है।

सच्चा सुख पानेके लिये क्या करना चाहिये?

इस प्रकार जिसकी बुद्धि वशमें हो उसको ऊँचे दरजेके ऐसे अलौकिक सुख मिलते हैं जिसका ठीक ठीक ख्याल भी रूखे सूखे मिजाजवाले आदमियोंको नहीं हो सकता; सुख तो कहाँसे हो सकता है? परन्तु भाग्यशाली हरिजन ऐसा महान सुख भोगते हैं और वह भी वांदेपर नहीं, धीरे धीरे नहीं, ढीलम सीलम नहीं, पोलमपोल नहीं और उधार नहीं बल्कि नगदा नगदी, इसी वक्त, खूब अच्छी तरह हाथों हाथ महाआनन्द भोगते हैं। याद रखना कि आत्माका स्वराज्य होनेसे ही ये सब सुख मिलते हैं। इसलिये हर एक जिज्ञा-

सुका यह पहला कर्त्तव्य है कि वह इसी संसारमें और इसी जिन्दगीमें हृदयके अलौकिक सुख भोगे। इसका सच्चा और सहज उपाय यही है कि अपनी शक्तियोंपर अपनी आत्माका स्वराज्य स्थापित करे और अपने अन्तःकरणमें परमात्माका राज्य होने दे। भाइयो! इस प्रकार आत्मा तथा परमात्माका राज्य करनेके लिये कुछ आकाशको टुकड़े टुकड़े नहीं करना है, समुद्रको नहीं पी जाना है, आगमें नहीं जल मरना है, सूर्यको नहीं पकड़ लाना है और वर्षाकी बूंदोंको भी नहीं गिनना है, बल्कि सिर्फ इतना ही करना है कि पहले हम अपने शरीरपर अधिकार रखें। इसके बाद अपनी इन्द्रियोंसे सम्हल कर काम लें। इसके बाद अपनी वाणीमें सत्यता और मिठास लावें। फिर अपने मनको अंकुशमें रखना सीखें। फिर अपने अन्तःकरणको पवित्र बनानेकी कोशिश करें और इसके बाद ऐसा उपाय करें कि जिससे परमात्मामें हमारी बुद्धि टिके। ज्यों ज्यों ये सब बातें बढ़ती जाती हैं त्यों त्यों आत्मा तथा परमात्माकी सत्ता बढ़ती जाती है, त्यों त्यों आपसे आप, स्वाभाविक तौरपर चारों ओरसे सुख आते जाते हैं। जैसे दूधमें ही शक्कर मिलती है और भरेका ही भरता है वैसे ही जिस भक्तको उसकी तावेकी शक्तियाँ ऐसे महान सुख देती हैं उसको जगतके और सब आदमी तथा सब वस्तुएं भी अपनी अपनी ओरसे सुखकी भेंट दिया करती हैं। इससे ऐसे भाग्यशाली भक्त इसी दुनियामें और इसी जिन्दगीमें अपूर्व सुख भोगते हैं।

जगतके सब लोगोंके साथ भक्तोंका सम्बन्ध बहुत स्नेह भरा होता है, इससे वे अधिक सुख भोगते हैं।

ऐसे महान भक्तोंके साथ उनके घरवाले कैसा बर्ताव

करते हैं, यह आपको मालूम है ? उनका बर्ताव अपने घरवालों के साथ प्रेमभरा होता है, इतना ही नहीं भाईबन्दोंकी तरफसे स्वभाववश जो छोटी मोटी भूलें हो जाती हैं उनको वे सह लेते हैं, और उनको क्षमा कर देते हैं; इससे स्वभावतः उनको प्रेमके बदले प्रेम मिलता है । जो सबके ऊपर शुद्धप्रेम रखते हैं तथा जिनको सबकी तरफसे प्रेम ही मिलता है उनका आनन्द कैसा महान होता है यह विचार लीजिये ।

इसी प्रकार अड़ोसी-पड़ोसीके साथ, जाति-बिरादरीके साथ तथा गाँवके लोगोंके साथ भी उनका बर्ताव बड़ी इज्जतका तथा अदबका होता है, इतना ही नहीं वे सबके साथ बड़ी उदारताका बर्ताव करते हैं और बदलेकी कुछ भी आशा रखे बिना, जहाँ तक बनता है, परोपकार किया करते हैं, इससे स्वाभाविक तौर पर सब लोग उनकी इज्जत करते हैं, उनका कहना मानते हैं, उनका बखान करते हैं और बिना तलबके उनके नौकर बन जाते हैं । व्यवहारी आदमी कुछ बहुत बड़ी चीज नहीं चाहते, वे बेचारे तो थोड़ी-थोड़ी भलाईसे ही खुश हो जाते हैं, पर अफसोस यही है कि हम वैसी थोड़ी थोड़ी नेकी भी नहीं करते, इससे सच्चा सुख नहीं भोगते । हरिजन ऐसी नेकी करते हैं, इससे वे हम लोगोंसे अधिक सुख भोगते हैं ।

इसी प्रकार धर्मगुरु, पण्डित, साधु, भिखारी, धनवान, हाकिम तथा नंगे आदि सबके साथ उनका बर्ताव प्रेमभरा, इज्जतभरा, दयापूर्ण, उदारतापूर्ण और क्षमादृष्टिवाला होता है, इससे कर्त्तव्य समझकर सब आदमियोंको उनके साथ इज्जत तथा भलाईका बर्ताव करना पड़ता है । इस कारण वे इसी जिन्दगीमें सच्चे सुखी होते हैं । और जो इस जिन्दगीमें

तथा इस संसारमें सुखी होते हैं उनको मरनेके बाद धर्म्मका दूसरा फल मोक्ष मिलना कुछ आश्चर्य्यकी बात नहीं है। जिस आममें पहले मौर लगी हो उसीमें फल लग सकता है; जिसमें मौर ही नहीं लगी उसमें फल कहाँसे आवेगा? उसी तरह जो आदमी इस जिन्दगीमें सुख नहीं भोगते उनको मरनेके बाद सुख कहाँ? इसलिये आत्मिक राज्य स्थापित कर इसी जिन्दगीमें अलौकिक सुख भोगना भक्तिका पहला फल है। अगर तन्दुरुस्ती दरकार हो, धन दरकार हो, कुटुम्ब-सुख दरकार हो, मित्र-सुख दरकार हो, रोजगार-धन्धेमें सफलता दरकार हो, लोगोंका अगुआ होना हो, मान-मर्यादा दरकार हो और परमार्थ करना हो तो आप अपनेमें परमात्माका राज्य होने दीजिये और महात्माओंके कदम ब कदम चलकर इसी जिन्दगीमें सुख भोगना सीखिये, सुख भोगना सीखिये। यही धर्म्मका पहला फल है और इसी-में ईश्वर राजी हैं।

इस संसारमें और इसी जिन्दगीमें तनका, मनका, धनका, कुटुम्बका, अधिकारका, बुद्धिका तथा आत्माका सच्चा सुख भोगना धर्म्मका पहला फल है—यह बात जाननेके बाद यह सुख प्राप्त करनेका उपाय जानना चाहिये। वह उपाय पाँचवीं पैड़ीमें बताया जायगा।

पाँचवीं पैड़ी।

सुख पानेका उपाय।

—:*:—

जगतके सब जीवोंको तथा सब चीजोंको सुख दरकार है।

आनन्दस्वरूप ईश्वरसे यह सारा ब्रह्माण्ड पैदा हुआ है, आनन्दस्वरूप ईश्वरमें ही जगत मौजूद है और अन्तको आनन्दस्वरूप ईश्वरमें ही सबका लय होता है। इसलिये कुदरती तौर पर सब जीवों तथा सब वस्तुओं पर ईश्वरके आनन्दकी छाया पड़ा करती है और जगतकी सब चीजें आनन्दकी ही इच्छा रखती हैं। क्योंकि आनन्द भोगनेसे ही सबकी उन्नति होती है और आनन्द भोगनेसे ही मोक्ष मिल सकता है। इसके सिवा मोक्ष भी एक प्रकारका अन्तिम महा आनन्द ही है और इस महा आनन्दको प्राप्त करना स्वभावतः सब जीवोंकी गहरीसे गहरी इच्छा है। इसलिये जगतके सब जीवोंका रुख सुखकी तरफ ही है और इसीलिये जगतमें सब तरहके काम, सब तरहके धर्म्म, सब तरहके नियम तथा सब तरहकी प्रवृत्तियाँ हैं। जैसे, हमको खाना-पीना क्यों अच्छा लगता है? बाल-बच्चे क्यों अच्छे लगते हैं? हम मित्रोंके स्नेहकी इच्छा क्यों रखते हैं? सुन्दर मकान क्यों बनवाते हैं?

तरह तरहके रोजगार धन्धे क्यों करते हैं। धन पानेके लिये सैकड़ों प्रकारके जोखिम क्यों सहते हैं? बड़ी बड़ी मिहनत करके नयी नयी विद्याओंका गहरा अभ्यास क्यों करते हैं? देवमन्दिरोंमें प्रार्थना करने क्यों जाते हैं? और अपना स्वार्थ त्यागकर परमार्थके काम क्यों करते हैं? बन्धुओ! याद रखना कि यह सब और इसी प्रकार और जो कुछ काम हैं वह सब हम सुख पानेके लिये ही करते हैं। तिस पर भी अफसोस है कि हमको जो सुख चाहिये वह नही मिलता। तब हमें यह जानना चाहिये कि क्यों सच्चा सुख नहीं मिलता? क्यों सच्चा आनन्द नहीं मिलता? इसके कारण हमें जानने चाहियें। इसके लिये महात्मा लोग कहते हैं कि हमारी खुराक, हमारी पोशाक, हमारी टेव, हमारे रिवाज, हमारे आचार, हमारे विचार, हमारी रीतिभाँति, हमारे धर्मके बन्धन और हमारे इर्द गिर्दके संयोगके अनुसार सारी दुनिया नही चलती; बल्कि जगतके सब लोग तथा सब वस्तुएँ अपने अपने नियमसे चलती हैं; इससे अनेक बातोंमें हमारे मनकी नहीं होती और जब तक अपने मन मुताबिक न हो तब तक अपनेको दुःख तो होता-ही है। जैसे, हमें खूब कड़ी चाय पीनेकी टेव हो या बहुत बीड़ियाँ पीनेकी टेव हो पर यह टेव हमारे अफसरको, हमारे मित्रको, हमारे गुरुको या हमारे कुटुम्बके किसी बड़ेको बिलकुल पसन्द न हो, बल्कि उनको इन चीजोंसे खास कर नफरत हो तो जरूर वे हमको इस बारेमें कुछ कड़वे बचन कह देंगे और उससे हमारा जी दुखेगा। क्योंकि कोई हमारे शौक पर एतराज करे तो वह हमसे बरदाश्त नहीं होता इससे हमें दुःख होता है। इसी प्रकार हमको अगर कभी कहीं दूसरे गाँव जाना हो और उसके रास्तेका

सफर बहुत पसन्द हो जिससे स्टीमर या नावमें बैठनेका इरादा हो पर दूसरे संगी साथी—जिन्हें हमारे साथ जाना है—पानीसे बहुत डरते हों और स्टीमर या नावमें जानेकी उनकी बिलकुल इच्छा न हो तो दोनोंके बिचारमें फर्क पड़ता है; इससे मनमें क्लेश हुए बिना नहीं रहता।

हमारे आचार-विचार दुनियाके सब लोगोंको नहीं रुचते इससे एक दूसरेको कष्ट होता है।

इसी प्रकार खाने पीनेमें, सोने बैठनेमें, पहनने ओढ़नेमें और दूसरी सब बातोंमें हमेशा मतभेद तो रहेगा ही; क्योंकि जुदे जुदे देशोंके लोगोंके जुदे जुदे रिवाज होते हैं और वे रिवाज ऐसे होते हैं, कि खास खास कौमोंके ही पसन्द होते हैं कुछ सारी दुनियाकी पसन्दके नहीं होते। इससे हमेशा मतभेद तो रहेगा ही। जैसे; मेमोंको गौन बहुत पसन्द है पर वह मियां भाइयोंकी बीबियोंको पसन्द नहीं। इसी तरह मुसलमानिनोंको सूथन बहुत पसन्द है पर वह गुजरातकी या दक्षिणकी ब्राह्मणियोंको नहीं भाता। ईरानी औरतोंमें बुरकेकी बड़ी इज्जत है पर वह बुरका जापानी स्त्रियोंको नहीं रुचता। इसी तरह चीनी स्त्रियोंको पड़ी छोटी बनाना बहुत भाता है पर वह यूरोपियनोंको नहीं सुहाता। हिन्दू स्त्रियोंके सती होनेके पुराने रिवाजकी हिन्दुओंमें चाहे जितनी इज्जत हो वह रिवाज अंगरेजोंको नहीं रुचता। ब्राह्मण गन्दी गलियोंमें या मक्खी भिनभिनाते रास्तों पर पत्तल डाल भोजन करने बैठ जाते हैं पर इस रिवाजको दुनियाके सब लोग पसन्द नहीं करते। इसी प्रकार हर एक देशके, हर एक कौमके, और हर एक धर्मके जुदे जुदे समयके जुदे जुदे रिवाज होते हैं। वे

सब रिवाज कुछ दुनियाके सब लोगोंके-मुआफिक नहीं आते, इससे दुनियामें मतभेद तो हमेशा रहेगा ही और जब तक मतभेद रहे तब तक सच्चा सुख नहीं मिल सकता। जब तक सुख न मिले तब तक जीवको तृप्ति नहीं होती, तब तक जिन्दगीकी सार्थकता नहीं होती और तब तक ईश्वरी आनन्द नहीं भोगा जा सकता। यह सब करनेके लिये सुख तो जरूर ही हासिल करना चाहिये। पर सुख हासिल करनेमें ऐसी ऐसी हजारों अड़चलें हैं इससे अपनी मरजीके मुताबिक सुख कभी नहीं मिल सकता और जब तक सुख न मिले तब तक पूर नहीं पड़नेका। तो अब क्या करना चाहिये?

आप दुनियाको नहीं बदल सकते, अगर सुख लेना हो तो स्वयं थोड़ा बदल जाइये।

इसके उत्तरमें महात्मा लोग कहते हैं कि या तो तुम बदल कर दुनियाके अनुकूल हो जाओ या दुनियाको अपनी इच्छानुसार बदल डालो; तभी तुमको सुख मिल सकता है। इन दोके सिवा तीसरा उपाय नहीं। अब बताइये कि क्या अकेले आपके लिये दुनिया आपसे आप बदल जायगी? कहिये कि नहीं। तब क्या आपमें ऐसा बल है कि सारी दुनियाको आप बदल सकें? कहिये कि नहीं। अगर आप कभी बहुत बली हों, बड़े विद्वान हों, बड़े धनवान हों, और आपका रोबदाब बहुत चलता हो इससे आप अनेक बातोंमें बहुत कुछ फेरबदल कर सकते हों तो भी याद रखिये कि यह सब समुद्रमें एक बूंदके बराबर है; क्योंकि आपकी हुकूमत आपके आसपासके आदमियोंपर थोड़ा बहुत असर

कर सकती है यह सच है; पर इससे आप जन स्वभावको नहीं बदल सकते, शरीरकी प्रकृतिको नहीं बदल सकते, दुर्घटनासे आ पड़नेवाली आफतोंको नहीं रोक सकते, जीवोंके प्रारब्धको नहीं बदल सकते और भगवदिच्छाको नहीं बदल सकते। इसलिये आप चाहे जितने बली हों, चाहे जैसे चतुर हों और चाहे जितने बड़े हों, ये सब अड़चलें आपके सामने खड़ी होंगी ही। जब तक ये सब अड़चलें सामने खड़ी हों तब तक सच्चा सुख नहीं भोगा जा सकता। मनका स्वभाव ही ऐसा है कि वह किसी तरहकी अड़चल नहीं सह सकता और जीवके जीवपनमें ऐसी खूबी है कि इस तरहके विघ्नोंके बीच रहकर वह कभी सुख नहीं पा सकता। इसलिये जब तक जीव अपना बल और अपना स्वरूप न समझे तब तक तो दुःख रहेगा ही; क्योंकि अपनी सत्तासे दुनियाको नहीं बदल सकते। जैसे शाहंशाह अकबर बड़े चतुर और बड़े ही जबरदस्त तथा दबंग थे तो भी वह अपने प्यारे पुत्र सलीमका चाल-चलन नहीं सुधार सके। इससे उनके महावैभवके बीच भी सलीमकी शराबखोरी उनके सामने आकर खड़ी होती थी और उनको दुःख देती थी। इसी प्रकार शिवाजी महाराजने दिल्लीके महाप्रपंची और ओछी वृत्तिवाले औरंगजेब बादशाहको बहुत छकाया था पर वह अपने लड़के संभाजीको सुधार न सके और महापराक्रमी महाराना प्रताप सिंहकी बहादुरीपर दुनिया अब तक आश्चर्य करती है पर अकबरको कुछ न समझनेवाले बहादुर राना अपने युवराज कुमार अमरसिंहको बहादुर नहीं बना सके। इसी तरह महाप्रतापी विक्टोरिया रानी बड़ी भलामानस थीं और हमेशा शान्ति चाहनेवाली थीं तो भी समय समयपर जगह जगह उनकी

पलटनको सैकड़ों लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी थीं; क्योंकि सत्ताके बलसे या और किसी तरहके बलसे कुछ सारी दुनिया सब बातोंमें नहीं बदली जा सकती। बेशक अच्छे कानून बनाये जा सकते हैं पर उन कानूनोंको माननेका दबाव कुछ सब आदमियोंपर नहीं डाला जा सकता इससे हजार रोबदाब और चतुराई होनेपर भी दुनियामें विरुद्धता तो रहेगी ही। और जब तक किसी तरहकी विरुद्धता रहेगी तब तक पूरा पूरा सुख नहीं हो सकता। तो अब क्या करना चाहिये? इन सब दृष्टान्तोंसे खूब अच्छी तरह हमारी समझमें आ जाता है कि हम दुनियाको नहीं बदल सकते, तो भी हमें सुख तो चाहिये ही। तब क्या करना? इसके उत्तरमें ईश्वर कहते हैं कि तुमसे दुनिया नहीं बदल सकती, इसलिये तुम स्वयं गम खाना सीखो। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्ण सुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥

अ० २ श्लो० १४

हे अर्जुन! इन्द्रियोंका विषयोंसे सम्बन्ध होनेपर अर्थात् इन्द्रियोंके विषय भोगनेपर उस भोगसे सर्द गर्म आदि जो असर होता है वह असर सुख तथा दुःख देनेवाला है और वह भोग तथा उससे होनेवाले सुख दुःख आने जानेवाले स्वभावके हैं और वे थोडी ही देर रहनेवाले हैं। इसलिये हे अर्जुन! तू तितिक्षा सहन कर, अर्थात् सब तरहके दुःखोंको, उनका सामना किये बिना, चिन्ता रखे बिना और अफसोस किये बिना, सह ले।

हाय हाय किये बिना कई तरहके दुःख सह लेनेमें भी कुछ खास खूबी है।

इस श्लोक से भगवान यह समझाते हैं कि इस जगतमें जितने तरहके सुख तथा दुःख हैं वे सब कुदरती नहीं हैं बल्कि विषयों और इन्द्रियोंके सम्बन्धसे हुए हैं। इसलिये हमारी बुद्धि और वृत्तियाँ जिस कदर उसके विरुद्ध हों उसी कदर हमें थोडा या अधिक सुख या दुःख मालूम होता है। इस कारण एक ही सुख एक आदमीको बहुत मालूम होता है, दूसरेको उससे कम मालूम होता है, तीसरेको उसका कुछ असर नहीं होता और चौथेको वह सुख उलटे दुःख मालूम होता है। इसी तरह कितने ही दुःख किसी किसी आदमीको बड़े ही भयंकर मालूम होते हैं; किसी किसीको वे ही दुःख उनसे कम लगते हैं, किसी किसीको कुछ भी असर नहीं करते और किसी किसी आदमीको उन दुःखोंमें भी सुख मालूम होता है। क्योंकि किसी वस्तुमें सुख या दुःख नहीं है। सुख और दुःख विषयों तथा इन्द्रियोंके सम्बन्धसे ही पैदा होते हैं और हम जिस कदर अपने अन्तःकरणकी वृत्तियोंको उनमें घुसेड़ते हैं उसी कदर, वे हमें अधिक या कम मालूम होते हैं। इसके सिवा वे आने और जानेवाले हैं और थोडी देर रहनेवाले हैं, इसलिये उनका शोक न करना चाहिये। क्योंकि वे असत् वस्तुएँ है, नष्ट हो जानेवाली हैं और उनकी कोई स्वाभाविक सत्ता नहीं हैं। इसलिये संयोगोंके कारण, प्रकृतिके गठनसे कुछ देरके लिये ये वस्तुएँ कदाचित आ जायँ तो बकवक न करके उन्हें सह लेना चाहिये; क्योंकि हाय हाय किये बिना दुःख भोग लेनेमें भी कुछ खास खूबी है,

उसमें भी बड़ा पुरुषार्थ है और उसमें भी बड़ा सुख है। इस-लिये सह लेना सीखना चाहिये।

सुख या दुःख स्वाभाविक वस्तु नहीं है जिस कदर हमारी वृत्तियाँ खिली हों उसी कदर वह मालूम होता है।

निर्भयतासे अडिग रहकर शान्तिसहित दुःख भोग लेनेको ईश्वर जो कहते हैं उसका कारण यही है कि सुख या दुःख वस्तुओंका या आत्माका धर्म नहीं है, बल्कि वह अन्तःकरण-की वृत्तियोंका काम है। जिस कदर उन वृत्तियोंको हम फैलावें या सिकुड़ावें उसी कदर हमको, थोड़ा या अधिक सुख या दुःख होता है इससे हमको यह समझना चाहिये कि कोई वस्तु असलमें हमें सुख या दुःख नहीं देतो; कुदरती वस्तुओंमें स्वाभावतः कोई सुख या दुःख नहीं है पर आजू बाजूके संयोगके अनुसार तथा अपनी वृत्तियोंका जिस कदर अनुशीलन किया हो उसी कदर सुख दुःख होते हैं। जैसे, चौमासेके दिनोंमें जब आकाशका रंग बड़ी सुन्दरतासे खिला होता है तब उसको देखकर किसी कविके मन पर कुछ और ही प्रभाव पड़ता है और उससे सृष्टि सौन्दर्य्यकी कोई फड़कती कविता लिखनेको उसका मन करता है। वही रंग देखकर एक चितेरेके ऊपर कुछ और ही असर पड़ता है और उसकी तूलीमें रंग मिलानेमें कुछ नयी ही लहर आ जाती है। वही रंग देखकर दिहाती किसान वर्षा होने न होनेका हिसाब लगाता है। वही रंग देखकर ज्ञानी भक्त ऐसी अद्भुत लीला-से प्रसन्न हो ईश्वरका उपकार मानने लगता है। वही रंग देखते रहने पर भी लाखों साधारण आदमियों पर किसी

तरहका कुछ भी खास असर नहीं पड़ता। अब विचार कीजिये कि ये सब भाव बादलोंके रंगमें हैं या मनुष्योंके अन्तःकरणकी वृत्तियोंमें हैं? इसी तरह एक जगह कई मित्रोंने दाखके बगीचेमें साथ बैठ कर दाख खाये। दाख खानेसे एक आदमीको सर्दी लग गयी, एक आदमीका, वही दाख खानेसे, सिर दुखने लगा और वही दाख खानेसे एक आदमीके खाँसी हो गयी। अब बताइये कि दाखमें दोष है, कि खानेवालोंमें दोष है? इसी तरह चार मित्रोंने एक पुस्तक पढ़नेके लिये ली। वह पुस्तक पढ़कर एक आदमी बहुत ही प्रसन्न हुआ क्योंकि उसके सब विचार उसे बहुत ही रुचे इससे वह उस पुस्तकके लेखकको हजारों आशीर्वाद और धन्यवाद देने लगा। अब दूसरे आदमीकी बात सुनिये। उसे उस पुस्तककी शकल देखकर ही छींक आयी और वह बोल उठा कि राम राम! ऐसी भद्दी पुस्तक कहाँसे लाये? न तो इसका कागज ही अच्छा है न अक्षर ही अच्छे हैं, न छपाई अच्छी है, न जिल्दका रंग अच्छा है और न जिल्दकी बँधाई अच्छी है; ऐसी रद्दी पुस्तक कौन पढ़ेगा? यह कहकर उसने पुस्तकको बिना पढ़े ही रख दिया। अब तीसरेकी बात सुनिये। उसने उस पुस्तकके कुछ पन्ने पढ़े, इतनेमें देखा कि इसकी वाक्यरचना अच्छी नहीं है, उसमें कठिन शब्द बहुत हैं, उसमें अशुद्धियां बहुत हैं और विचार भी सिलसिलेसे नहीं हैं। तब वह पुस्तक कौन पढ़े? वह बोला—तुम कहाँसे यह कूड़ा उठा लाये? मुझे तो यह पुस्तक पढ़कर उल्टे अफसोस हुआ। यह कह कर उसने पुस्तक धर दी। चौथे आदमीको इन सब बातोंकी कुछ खबर नहीं हुई वह बेचारा पुस्तक आदिसे अन्त तक पढ़ गया परन्तु उस पर कुछ खास असर

नहीं हुआ। अब बताइये वह पुस्तक अच्छी है कि खराब? उस पुस्तकमें सुख है कि दुःख? इसी प्रकार जगतकी हर एक चीज जुदे जुदे अधिकारियों पर उनकी प्रकृतिके अनुसार जुदा जुदा असर करती है और एक ही चीज जुदी जुदी ऋतुओं तथा जुदे जुदे देशोंमें जुदे जुदे गुण दिखाती है। जैसे, एक गर्म कोट जाड़ेके मौसिममें बड़ा काम देता है पर वही कोट गर्मीके मौसिममें दुःखरुप हो जाता है। इसी तरह ठण्ढे देशमें गर्म चीजें खाना पसन्द है और गर्म देशमें ठण्ढी चीजें खाना पसन्द है। इसी प्रकार देश कालके अनुसार और प्रकृतिके अनुसार तथा इर्द गिर्दके संयोगोंके अनुसार जुदी जुदी वस्तुओंका असर होता है। परन्तु वस्तुओं के अन्दर हम जितना समझते हैं उतना सुख दुःख नहीं है। इसलिये अगर हम अपनी वृत्तियोंका कुछ और अच्छी तरह अनुशीलन करें तो सुख दुःखके झपाटेसे बहुत अंशमें बच सकते हैं।

सुख दुःख कहांसे उत्पन्न होते हैं?

महात्मा लोग कहते हैं कि इन्द्रियों और उनके विषयोंका जब संयोग हो तब उसमेंसे एक किसकी गति उत्पन्न होती है, एक किसकी शक्ति उत्पन्न होती है, एक तरहका प्रकाश उत्पन्न होता है और एक तरहका आकर्षण उत्पन्न होता है। उसका धक्का हमारे अन्तःकरणको लगता है। उस समय हमारे अन्तःकरणमें उसका फोटो लेनेके लिये कुदरती तौर पर दो तरहके प्लेट (काच) रहते हैं। उन प्लेटोंको शास्त्रमें राग और द्वेष कहते हैं। उन्हींमेंसे सुख तथा दुःखके भाव पैदा होते हैं। उन दो काचोंमेंसे किस पर उस असरकी छाप पड़ने देनी चाहिये यह हमारी मरजी पर है। चाहे जिस वस्तुकी छाप राग पर डाल सकते हैं और चाहे जिस वस्तु-

की छाप द्वेष पर डाल सकते हैं। जैसे, कहीं गीत हो रहा है; उस गीतको सुनकर एक आदमी पर बहुत अच्छा असर हुआ, इससे वह खुश हो गया और आनन्दमें आकर नाचने लगा। दूसरा आदमी वही गीत सुनकर रो पड़ा क्योंकि उस गीतसे उसे अपनी दुःख भरी पुरानी कहानी याद आ गयी, इससे उसने गीतका असर अपने द्वेष भाव पर होने दिया। इस प्रकार कितने ही आदमियोंको एक गीतसे सुख हुआ और उसी गीतसे कितने ही आदमियोंको दुःख हुआ और सुख दुःख सबको एक समान नहीं हुए; बल्कि किसीको अधिक और किसीको कम। जिस कदर जिस आदमीने अपने भावका अनुशीलन किया था उस कदर उस पर असर हुआ। इस कारण ज्ञानी आदमी दुःखमें भी सुख पाते हैं और अज्ञानी आदमी सुखमेंसे भी दुःख ढूंढ़ निकालते हैं। क्योंकि अन्तःकरणके सुख और दुःख नामके दो कार्योंमेंसे चाहे जिसपर असर डालना अपनी मरजी पर है। यही जीवकी स्वतंत्रता (फ्री विल) है, यही मनुष्यकी उत्तमता है और यही ईश्वरकी दया है कि हम चाहें तो आसानीसे दुःखोंको घटा सकते हैं और अनन्त कालके सुख भोग सकते हैं। अतएव सुख पानेके लिये हमें पहले शुरूमें दुःख सह लेना सीखना चाहिये। जब तक देह है तब तक किसी न किसी तरहका दुःख तो होगा ही। और कितने ही दुःख ऐसे होते हैं जो किसी तरह मनुष्यके प्रयत्नसे दूर नहीं हो सकते। इसलिये हमें इस प्रकार अपनी जिन्दगी बितानी चाहिये कि उन दुःखोंका असर हम पर कम हो और ऐसी जिन्दगी बिताना सीखनेके लिये ही प्रभु हमें कहते हैं कि तितिक्षा सहन करो क्योंकि—

तितिक्षा सहन किये बिना और किसी उपायसे सब प्रकारके दुःख मेटे नहीं जा सकते।

इसके सिवा वस्तुओंसे तथा विषयोंसे जो सुख मिलता है वह सुख भी रजोगुणी है; इसलिये दुःखको उत्पन्न करनेवाला है और जल्द नष्ट हो जानेवाला है। ऐसे मोहमें पड़े रहने और उत्तम जिन्दगी खो देनेसे तितिक्षा सहन करना अधिक अच्छा है। यह समझकर ऐसे रजोगुणी सुखके लिये प्रभुने कहा है कि—

> विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
> परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्॥

अ० १८ श्लो० ३८

विषयों और इन्द्रियोंके संयोगसे जो सुख मिलता है वह सुख पहले अमृत सा लगता है पर परिणाममें जहर सा है, इसलिये वह रजोगुणी सुख कहलाता है।

और ऐसे सुखसे जीवका कल्याण नहीं होता। इसलिये प्रभु कहते हैं कि—

> ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
> आद्यन्तवंतः कौंतेय न तेषु रमते बुधः॥

अ० ५ श्लो० २२

इन्द्रियों और विषयोंके सम्बन्धसे जो भोग भोगा जा सकता है वह भोग निश्चय ही दुःख उपजाने वाला है; इसके सिवा वह बार बार उत्पन्न होता है और घडी भर बाद नष्ट हो जाता है; इसलिये हे अर्जुन! चतुर आदमी उसमें नहीं रमते।

इतना कह कर ही भगवान नहीं रुकते, बल्कि हमारे

कल्याणके लिये आगे जाकर दयालु प्रभु यह कहते हैं, कि जो आदमी तितिक्षा सहन कर सकता है वही सच्चा बहादुर है। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥

अ० ५ श्लो० २३

इन्द्रियों और विषयोंके सम्बन्धसे उत्पन्न होनेवाले काम क्रोध आदि विकारोंसे उपजे हुए वेगको जो शरीर नष्ट होनेसे पहले यहीं सह लेता है वही योगी है, वही सुखी है और वही नर है।

सह लेनेसे लाभ ।

भाइयो! देखा? प्रभु क्या कहते हैं? वह कहते हैं कि जो आदमी इन्द्रियों और विषयोंके सम्बन्धसे उपजे हुए विकारोंके वेगको सह लेता है वही बुद्धिमान है, वही योगी है, वही सुखी है, और वही पुरुष है। अब बताइये आपको क्या पसन्द है? रोया करना पसन्द है या सह लेना पसन्द है? कहिये कि सह लेना पसन्द है क्योंकि सह लेनेमें इससे भी अधिक खूबी है। इसके लिये प्रभु कहते हैं कि—

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ।
स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥

अ० ५ श्लो० २०

जिसकी बुद्धि स्थिर है और जिसका सब तरहका मोह मिट गया है वह मनमानी होनेसे खुश नहीं होता और मनमानी न होनेसे रंज नहीं मानता। मनमानी होनेसे जिसको बहुत हर्ष नहीं होता और कुछ विरुद्ध होनेसे बहुत अफसोस

नहीं होता उसकी बुद्धि स्थिर होती है, उसका सब तरहका मोह मिट जाता है, वह ईश्वरको पहचानता है और वह ईश्वरके ही अन्दर है। क्योंकि प्रभु कहते हैं कि—

> बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मनि यत्सुखम्।
> स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षय्यमश्नुते ॥
>
> अ० ५ श्लो० २१

जो बाहरके स्पर्श सुखमें अर्थात् इन्द्रियों और विषयोंके सम्बन्धसे उपजे हुए सुखमें आसक्त नहीं हो जाता उसके अन्तःकरणमें जो सुख है वह उसको मिलता है और जिसको अपने अन्तःकरणका सुख मिलता है उसीकी आत्मा ईश्वरके साथ जुडी हुई है और उसीको ऐसा सुख मिलता है जिसका कभी नाश नहीं होता।

बन्धुओ! तितिक्षा सहन करनेमें इतना बड़ा आनन्द है, दुःख सह लेनेमें ऐसी खूबी है और सुख दुःखके बेतरह अधीन न होनेसे ही ऐसे ऊँचे दरजे पर चढ़ा जा सकता है; इसलिये सह लेना सीखिये। अगर सह लीजियेगा तो ईश्वरके पास जा सकियेगा और ईश्वरी आनन्द भोग सकियेगा। अगर

सह लेनेकी आदत न डालियेगा तो अधिक दुःख भोगना पड़ेगा।

क्योंकि आपके लिये दुनियासे रोग नहीं भाग जानेके। बल्कि मनुष्यमें जब तक अज्ञानता रहेगी तब तक रोग रहेंगे ही। इससे आपको या आपके कुटुम्बमें किसी प्यारेको किसी न किसी तरहका रोग तो होगा ही और आप ऐसे नहीं हैं कि उसको रोक सकें। इसी तरह आपको दुःख होनेके डरसे कुछ जगतसे बुढ़ापा नहीं भाग जानेका; दुर्घटनाएँ नहीं

रुकनेकी; चोरोंका भय, हाकिमोंका ज़ुलम, जाति बिरादरीके मूर्खता भरे बन्धन, गुरुओंका झूठा दिमाग, बालकोंकी अज्ञानता, स्त्रियोंका हठ, अध्ययनकी कठिनाई, वर्षाके तूफान, ग्रीष्मकी गर्मी, जाड़ेकी सर्दी और ऐसे ही ऐसे दूसरे दुःख तथा किसीको न पसन्द आनेवाली मौत कुछ आपके न रुचनेसे रुकनेकी नहीं। ये सब दुःख तो हमेशा दुनियामें रहेंगे ही; क्योंकि मनुष्योंकी अज्ञानताके साथ उनका सम्बन्ध है और अज्ञानता कुछ थोड़े समयमें आसानीसे दूर होनेवाली नहीं। इसलिये अगर कभी ऊपर कहे हुए दुःख घट भी जायँ तो, उनके बदले नये ज़मानेके अनुसार नये किसके दुःख उत्पन्न होंगे, परन्तु दुनिया कभी बिना दुःखके नहीं रहनेकी। इसलिये जब तक आप दुनियामें रहेंगे, तब तक किसी न किसी तरहका दुःख तो होगा ही। तब विचार कीजिये कि दुःख सहनेकी आदत डाल कर दुःखोंमें भी सुख लेना अच्छा है या दुःखोंको याद करके उनमेंसे नये नये दुःख पैदा करना अच्छा है? अगर हम अपनी सत्तासे दुनियासे अपनी मरज़ी मुताबिक दुःख घटा सकते तो दुःखोंको मिटा देना ही अधिक अच्छा था, पर हम अपने रोजके अनुभवसे प्रत्यक्ष देखते हैं तथा महात्माओंके लेखसे मालूम करते हैं कि हम अपनी इच्छानुसार दुनियासे दुःखोंको दूर नहीं कर सकते। और जब तक दुनियामें दुःख हैं तब तक हमको भी दुःख होंगे ही और जब तक दुःखोंका बहुत बुरा असर हुआ करेगा तब तक किसी तरहका सच्चा आनन्द नहीं भोगा जा सकता। यह तो कुदरती बात है। तो अब क्या करना चाहिये? क्योंकि हम दुनियासे दुःखोंको मिटा नहीं सकते तो भी हमें सुख चाहिये। इसके लिये प्रभु कहते हैं कि सह लेना

सीखो। बरदाश्त करना सीखो। त्याग करना सीखो। यही सुख पानेका सहज और सच्चा रास्ता है।

अगर सच्चा सुख पाना हो तो पहले हमें दुःख सहना सीखना चाहिये।

इस बातको खूब अच्छी तरह समझनेके लिये एक महात्मा कहते थे कि ऐसा कभी नहीं होगा कि दुनिया बिना काँटेकी हो जाय और जब तक दुनियामें काँटा है तब तक हमें भी गड़ेगा ही; क्योंकि हम भी दुनियाके भीतर ही हैं; कुछ दुनियाके बाहर नहीं हैं। इसलिये काँटा तो गड़ेगा ही। काँटा गड़ने पर कैसे सहा जायगा? नहीं सहा जायगा। इसलिये इसका कुछ उपाय करना चाहिये। उपाय यही है कि हम अपने पैरोंमें जूते पहन लें; तब दुनियामें काँटा होने पर भी हमें नहीं गड़ेगा। हम जोड़ा पहन लेंगे तो दुनियामें काँटा होने पर भी हमारे लिये दुनिया बिना काँटेकी हो जायगी। इसी तरह प्रभु कहते हैं कि दुनियासे तुम्हारी मरजीके मुताबिक सब तरहके दुःख नहीं मिट सकते, इसलिये अगर सुखी होना हो तो दुःख सहनेकी आदत डालो। अगर तुम चाहो तो अपने विचार, अपने आचार, अपनी टेव, अपने रिवाज, अपने स्वभाव और अपनी प्रकृतिको सुधार सकते हो; परन्तु तुम अपनी मरजीके मुताबिक दुनियाको नहीं सुधार सकते। इसलिये अगर सुखी होना हो तो दुनियाको बदल डालनेकी इच्छा रखनेके बदले आप पहले बदल जाइये अर्थात् दुनियाको बिना काँटेका बनानेके बदले आप स्वयं जोड़ा पहन लेनेकी कोशिश कीजिये। दुनियाको बिना काँटेका बनाना बहुत मुश्किल है और यह काम राम-

तथा कृष्ण जैसे अवतारी पुरुषोंसे भी नहीं हुआ। परन्तु अपने पैरमें जोड़ा पहन लेना यानी सहना सीख लेना सब लोगोंसे आसानीसे हो सकता है। अतएव सच्चा सुख पानेके लिये, इसी संसारमें सुख पानेके लिये और इसी जिन्दगीमें सुख पानेके लिये हमें दुःख सहना सीखना चाहिये।

तितिक्षा माने क्या ?

तितिक्षा सहन करने यानी दुःख सह लेनेका अर्थ क्या है? यह आपको मालूम है? महात्मा लोग कहते हैं कि छाते पर एक तरहका रोगन लगानेसे वह जैसे वाटर प्रूफ बन जाता है—ऐसा हो जाता है कि पानीसे भीगने न दे, वैसे ही हजारों तरहके दुःखसे बचनेके लिये तितिक्षा सहना है, क्योंकि तितिक्षाका असली नाम दुःख-प्रूफ है अर्थात् वह दुःखोंसे बचानेवाली है। इसके सिवा आगसे जेवर जवाहरात बचानेके लिये आयर्नसेफ—लोहेके सन्दूक होता है, वह सन्दूक भयंकर आगमें भी सही सलामत रह सकता है। दुःखकी आगसे अन्तःकरणको बचानेके लिये तितिक्षा आयर्नसेफके समान है। इसलिये हम सबको जहाँ तक बने वहाँ तक अपनी शक्तिके अनुसार तितिक्षा सहना सीखना चाहिये।

तितिक्षा सहनेमें शुरूमें हमें जरा कष्ट होता है यह बात सच है पर वह कष्ट कैसा है यह आपको मालूम है? जब छोटी लड़कियोंके कान छिदवाये जाते हैं तब उन्हें जरा कष्ट होता है परन्तु पीछे जिन्दगी भर उन कानोंमें सोने मोतीके और हीरे पन्नेके गहने पहने जा सकते हैं और उनका आनन्द लिया जा सकता है। ऐसा आनन्द भोगनेके लिये पहले कान छेदाना चाहिये और कान छेदाते समय पहले जरा सा दुःख

तो होता ही है पर उस दुःखसे डर जायँ तो कानमें गहने पहननेकी बहार नहीं लूटी जा-सकती। इसी तरह जो आदमी जरा देरकी तितिक्षा नहीं सह सकता वह सच्चा आनन्द नहीं भोग सकता। इसलिये हमें तितिक्षा सहना सीखना चाहिये क्योंकि पीछे बहुत सुख भोगनेके लिये ही पहले थोड़ा दुःख सहना है। इसके लिये प्रभुने भी कहा है कि—

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्॥

अ० १८ श्लो० ३७

जो सुख पहले जहर सा लगे पर परिणाममें अमृत सा हो वह अपनी बुद्धिकी प्रसन्नतासे उपजा हुआ सुख सत्त्वगुणी कहलाता है।

भाइयो! तितिक्षा सहनेमें भी पहले दुःख दिखाई देता है पर परिणाममें बहुत ही सुख होता है। इसलिये तितिक्षाकी जितनी कीमत समझिये वह थोड़ी है। तितिक्षा माने क्या है यह आपको मालूम है? इसके लिये महात्मा लोग कहते हैं कि आजकलके जमानेमें चेचक, हैजा, प्लेग आदि महाभयंकर रोगोंसे बचनेके लिये टीका लगानेकी युक्ति निकली है। यह टीका लगवाते समय जरा कष्ट होता है, एक दो दिन थोड़ा बहुत ज्वर आ जाता है और उस समय कुछ देर जीव बेचैन सा रहता है परन्तु पीछे शरीरमें टीकाका चेप पच जानेके बाद इन रोगोंका हमला सहनेको शरीर शक्तिमान हो जाता है। इससे टीका लगवाये हुए आदमी बेखटके इन रोगोंवाली हवामें रह सकते हैं और उनको ऐसे बुरे रोगोंका असर नहीं होता; अगर कभी हो भी तो बहुत थोड़ा होता है। तितिक्षा भी दुःखोंको रोकनेवाला एक उत्तम प्रकारका टीका है। वह

टीका अगर पहलेसे ही हिकमतके साथ हम अपने शरीरमें ले लें तो फिर अनेक प्रकारके दुःखोंसे बच सकते हैं। इसलिये शुरूमें जरा कड़वा लगे तो भी उसकी परवा न करके हमें तितिक्षा सहन करना सीखना चाहिये। याद रखना कि दुःख पानेके लिये तितिक्षा सहना नहीं है, बल्कि महा भयंकर आफतोंसे बचनेके लिये तितिक्षा सहना है। इसलिये तितिक्षा सहना सीखिये।

अनेक प्रकारके दुःख हमारा कल्याण करनेके लिये ही आते हैं।

इसके सिवा तितिक्षा सहनेका दूसरा कारण यह है कि ईश इच्छासे आपड़नेवाले कितने ही तरहके दुःख हमारे कल्याणके लिये ही होते हैं· इसलिये उनको हमें सह लेना चाहिये। उन दुःखोंको सहें तभी हमें नया अनुभव होता है, तभी हममें नया बल आता है। तभी हममें पवित्रता आती है, तभी हममें दीनता आती है, तभी हम और अच्छे हो सकते हैं और तभी हमारा कल्याण होता है। इससे यह सब करानेके लिये ही कितने ही दुःख जानबूझ कर आते हैं, पर हम उनका भेद नहीं समझते इससे उनका सामना करते हैं और जो जीमें आता है बड़बड़ाया करते हैं। पर हमें जानना चाहिये कि हमपर आ पड़नेवाले कितने ही दुःख तो जहाजको लगनेवाले पवन समान हैं कि जिनसे सोचे हुए मुकामपर हमें जल्द पहुँच सकते हैं। परन्तु हमको इस बातकी खबर नहीं होती इससे हम नाहकको अफसोस किया करते हैं और घबराया करते हैं। ऐसा न होने देनेके लिये हमें तितिक्षा सहना सीखना चाहिये।

अपने ऊपर पड़नेवाले दुःखोंको, हम जितना भयंकर समझते हैं उतने भयंकर वे नहीं होते।

हमें अपने दुःख इस समय जितने बड़े और जितने भयंकर लगते हैं उतने बड़े और उतने भयंकर, सच पूछिये तो, वे नहीं होते; पर हमने अपने ख्यालको बहुत नाजुक बना रखा है; अपने मनको बड़ा मुहर्रमी बना रखा है; हम छोटे छोटे स्वार्थों-के गुलाम बन गये हैं; हम अपनी इन्द्रियोंको वशमें नहीं रख सकते; हम अपने अन्तःकरणमें गहरे नहीं उतर सकते और हम अपनी बुद्धिको ऐसा विशाल नहीं बनाते कि वह तत्त्व समझ सके; इसीसे हम छोटे छोटे दुःखोंको बहुत बड़ा माना करते हैं। पर जरा देखिये तो सही कि हमारे दुःख सचमुच भयंकर है कि बिना बिसातके हैं? संत लोग कहते हैं कि तितिक्षा सहन करनेसे जो महा आनन्द मिलता है और जो अलौकिक फल मिलता है उसे लेनेके लिये जरा सह लेना सीखना कौन बड़ी बात है? जैसे, हमारे दुःख तो इसी किस्मके होते हैं कि किसीकी तलब न बढ़ती हो तो उसको उसका दुःख होता है: किसीकी स्त्री फूहड़ हो तो उसको उसका दुःख होता है: किसीपर ब्याहशादी या मृत्युका खर्च आ पड़ता है तो उसको उसका दुःख होता है: किसीको अपने हितमित्रके बीमार रहनेका दुःख होता है; किसीको अपने मनलायक चीज न मिलनेका दुःख होता है; किसीको किसी आदमी ने कुछ कड़ी बात कह दी हो तो उसको उसका दुःख होता है; किसीको अपने मनलायक प्रतिष्ठा न मिलनेका दुःख होता है; किसीको पड़ोसियोंसे न बननेका दुःख होता है और किसीको कुछ दुःख न हो तो भी रस्सीसे सांप बनानेकी आदत होती

है इससे वह नाहकका दुःख पैदा किया करता है। यों अनेक प्रकारके दुःख काम, क्रोध, लोभ आदि हमारे विकारोंसे ही पैदा होते हैं और अगर जरा अधिक सोचें तो मालूम होता है कि ये सब दुःख बहुत ही छोटे हैं और थोड़े समयमें मिट जाते हैं। पर हमने सह लेनेकी आदत नहीं डाली है इससे हम इन सब दुःखोंको बहुत बड़ा माना करते हैं और उनसे डरा करते हैं। असलमें देखिये तो नरकके दुःखके सिवा और कोई दुःख भयंकर नहीं है; लेकिन अपने मनकी कमजोरीसे और असली वस्तु न समझनेसे हम दुःखोंको बड़ा माना करते हैं और उन्हींमें पड़े रहते हैं। इन सब आफतोंसे बचनेका असली उपाय यही है कि हम तितिक्षा सहना सीखें। अगर हमें तितिक्षा सहना आवे तो ये सब दुःख एकदम तुच्छ जचें और फिर थोड़े ही समयमें वे आपसे आप मिट जायँ। ऐसा होनेके लिये पहले सह लेना सीखनेकी जरूरत है।

जब सह लेना आवे तभी दूसरों पर सच्चा प्रेम रखा जा सकता है।

भाइयो! याद रखना कि हमारे धर्मका पहला और मुख्य सिद्धान्त यही है कि हम सब तरहसे ईश्वर पर प्रेम रखें। ईश्वर पर प्रेम रखना सीखनेके लिये तथा उस प्रेमको चमकाकर उसीकी मार्फत परमात्माके पास पहुँचनेके लिये हमें ईश्वरके सब जीवों पर प्रेम रखना चाहिये। यह हमारे सनातन आर्य्यधर्मका तथा दुनियाके और सब धर्मोंका मुख्य सिद्धान्त है। इसलिये हमें जगतके सब जीवों पर प्रेम रखना चाहिये। जगतके सब जीवों पर प्रेम कब रखा जा सकता है यह आपको मालूम है? जब हमें सहना आवे तभी हम दूसरों

पर सच्चा प्रेम रख सकते हैं। प्रेमके माने क्या? सिर्फ मुँहसे कह देने से, कि हमें सब जीवों पर बहुत प्रेम है, कुछ नहीं होता। हम पोथी पढ़ कर मनमें यह समझ लें कि सब जीवों पर प्रेम रखना बहुत अच्छी बात है तो इतनेसे ही कुछ नहीं होता और प्रेमके भजन गाया करें तो उससे भी संसार सागर नहीं तर सकते और न ऐसी बातें प्रेम समझी जातीं। प्रेमका अर्थ है दूसरोंके लिये अपना स्वार्थ त्याग देना, दूसरोंको सुखी करनेके लिये आप सह लेना सीखना, दूसरोंके सुखके लिये अपनी रुचि और विचारोंको जहाँ तक बन पड़े बदल देना, दूसरोंके सुखके लिये अपने बाहरी छोटे सुखों पर धूल डाल देना और दूसरोंके सुखके लिये आप घिस पिस जाना। इसका नाम प्रेम है। इतना ही नहीं बल्कि दूसरोंको सुखी करनेके लिये आप भयंकर दुःख सह लेने और जरूरत पड़ने पर अपना प्राण देनेमें भी पीछे न हटने और अपने भाइयों तथा अपने प्रभुकी सेवा करनेमें अपनी जिन्दगी अर्पण कर देनेको ही महात्मा लोग प्रेम कहते हैं, उसीको महात्मा लोग भक्ति कहते हैं, उसीको धर्म्म कहते हैं, उसीको ज्ञान कहते हैं, उसीको कर्म्म कहते हैं, उसीको योग कहते हैं और ऐसा प्रेम ही संसार-सागरसे तारनेवाले बेडेके समान है। इसलिये हम सबको ऐसा शुद्ध, ऐसा बेस्वार्थका, ऐसा हार्दिक, ऐसा स्वाभाविक और ऐसा बेफलकी इच्छाका निःस्पृह प्रेम रखना चाहिये। तभी कल्याण हो सकता है। याद रखना कि जो लोग बहुत नाजुक बन जाते हैं, बात बातमें बीमार पड़ जाते हैं, छोटी छोटी बातोंमें मुँह पिचकाया करते हैं, बिना खास कारणके मिजाज खो देते हैं, बहुत टीमटाम रखते हैं, बहुत पोल चलाते हैं, बहुत लाड़-प्यारमें पड़े रहते

हैं, बहुत कमजोर मन रखते हैं, बहुत डरपोक हो जाते हैं और जगतकी वस्तुओं तथा अपनी इन्द्रियोंकी गुलामीमें ही जो पड़े रहते हैं वे ऐसा प्रेम नहीं रख सकते। पर जो तितिक्षा सह सकते हैं वे ही सब पर ऐसा प्रेम रख सकते हैं। इस लिये प्रेमको प्रेक्टिकल (काममें आने योग्य) बनानेके लिये हमें तितिक्षा सहन करना सीखना चाहिये। जगतके जीवों पर तथा ईश्वर पर प्रेम न रख सकने लायक लल्लो-चप्पो वाली और शारीरिक तथा मानसिक दुर्बलतावाली जिन्दगी बिताना एक तरहका महापाप है और प्रेमभाव वाली जिन्दगी बिताना जीवनकी सार्थकता है। इसलिये हमें प्रभु प्रेमवाली जिन्दगी बिताना सीखना चाहिये और यह सीखनेके लिये पहले तितिक्षा सहना सीखना चाहिये, क्योंकि तितिक्षा सहे बिना सच्चा प्रेम नहीं किया जा सकता।

प्रभुप्रेम बढ़ानेका असली उपाय।

इसके लिये एक भक्त कहा करते कि हम जिसको चाहते है वह आदमी बीमार हो और उसको दवा दरकार हो पर डाक्टरका घर बहुत दूर हो, पानी खूब बरसता हो और दूसरा कोई आदमी जानेवाला न हो और हमारे मनमें यह वहम समाया हुआ हो कि वर्षामें बाहर निकलनेसे हमें सर्दी लग जायगी, इससे बहुत-नाजुक बनकर घरके अन्दर पड़े रहनेकी आदत डाल रखी हो तो ऐसे सच्चे मौके पर भी हम दूसरेकी मदद कैसे कर सकते हैं? पर अगर तितिक्षा सहनेकी आदत हो तो जरूर मददकी जा सकती है। इसी तरह किसी समय हम किसी दूसरे गाँवको जाते हों, हमारे पास खानेकी चीज थोड़ी हो और हम स्टेशन पर बैठकर खानेकी तय्यारी

करने हों इतनेमें कोई सचमुच लाचार भिखारी आ निकले, जिसको हमसे अधिक भूख लगी हो और हमें उस पर दया भी आवे परन्तु अगर हमने भूख सहनेकी आदत न डाली हो तो हम अपनी खुराकमेंसे उसको कुछ नहीं दे सकते। इससे हमारे मनमें उपजी हुई दया व्यर्थ चली जाती है और पुण्य लेनेका अनायास मिला हुआ उत्तम अवसर हमारी जरा सी कमजोरीसे चला जाता है। पर अगर भूख सहना आवे तो यह पुण्य लिया जा सकता है। इसी प्रकार नाजुक मिजाजवाले आदमियोंको ईश्वरकी कृपा प्राप्त करनेके हजारों मौके सिर्फ अपनी जरा सी कमजोरीके कारण खो देने पड़ते हैं। पर तितिक्षा सहनेवाले ऐसे मौकोंसे बहुत अच्छी तरह फायदा उठा सकते हैं और अपने प्रेमको आगे बढ़नेका रास्ता दे सकते हैं। अपने स्वार्थका बन्धन घटानेके लिये तथा प्रभुका प्रेम चकमने देनेके लिये हमें तितिक्षा सहना सीखना चाहिये।

जगतके कल्याणके लिये पहलेके महात्माओंने बहुत दुःख भोगे हैं; इसलिये अगर आगे बढ़ना हो तो हमें भी परमार्थके दुःख सहना सीखना चाहिये।

भाइयो! याद रखना कि तितिक्षा सहे बिना ईश्वरी रास्तेमें कभी आगे नहीं बढ़ सकते। इसीलिये पहलेके सब महात्माओंने अनेक प्रकारके दुःख सहे हैं। जैसे, भगवान रामचन्द्रने अपनी जिन्दगीमें बहुत कुछ सहनशीलता दिखायी है। महाराज हरिश्चन्द्रने अगाध सहनशीलता दिखायी है, दैवी संपत्तिवाले पाण्डवोंने महा कष्ट सहा है; आश्रयदाता राजा

शिवि, महात्मा बुद्ध, भक्तराज महाराज अंबरीष, बाल भक्त-राज प्रह्लाद तथा ध्रुव और दूसरे कितने ही राजा महाराजों तथा देवताओंने भी तितिक्षा सहन की है; यहां तक कि महात्मा नारद, सनकादि, कार्तिक स्वामी, देवताओंके राजा इन्द्र तथा देवोंके देव महादेवने भी बहुत उग्र तप करके अनेक प्रकारकी तितिक्षा सहन की है। क्योंकि सहनशीलता धर्मका अंग है और यह अंग मजबूत हो तभी धर्म पूरा पूरा पाला जा सकता है। इसलिये अगर पूरा पूरा धर्म पालना हो तो हमें नाज नखरेमें न रह जाना चाहिये बल्कि बहादुर बनना चाहिये और तितिक्षा सहना सीखना चाहिये।

सह लेनेमें दो भारी गुण।

सह लेनेमें दो भारी गुण हैं। एक यह कि सब तरहके दुःखोंसे अपना बचाव किया जा सकता है और दूसरे दूसरोंकी मदद करनेमें इससे काम लिया जा सकता है। ये दोनों अंग सब जगह एक साथ नहीं पाये जाते। कोई योद्धा अपना बचावकर सकता है पर दुश्मनको नहीं मार सकता और कोई योद्धा दुश्मनको मार सकता है पर अपना बचाव नहीं कर सकता। इसी तरह धर्मके कितने ही तरहके कर्म अपनेको दुःखसे बचा सकते हैं पर दूसरोंका दुःख दूर करनेमें मदद नहीं दे सकते। कितने ही तरहके परमार्थके कामोंसे दूसरोंका दुःख कम किया जा सकता है पर अपने हृदयका दुःख नहीं मिटाया जा सकता। जैसे, कोई धनवान मौके मौके पर खूब दान दे तो वह दान लेनेवालोंका बहुत कुछ दुःख घटा सकता है पर उसके हृदयमें सांसारिक कठिन प्रसंगों पर जो बड़े बड़े घाव लगे हैं वे दुःख दान देनेसे नहीं मिट जाते। इसी

प्रकार जो मनुष्य एकान्त गुफामें बैठकर ईश्वरका ध्यान धरनेका आनन्द लेता हो वह आप उतने समय कई प्रकारके दुःखोंसे बच सकता है, पर दूसरोंके दुःख नहीं दूर कर सकता। इस तरह धर्मके अनेक प्रकारके कामोंमें अधिकतर मुख्य रूपसे एक ही अंग होता है पर तितिक्षामें आप आनन्द लेना और दूसरोंको आनन्द देना ये दोनों अंग हैं। इसलिये सब आदमियोंको तितिक्षा सहनेका हुक्म भगवानने दिया है और इसीलिये पहलेके महात्माओं तथा देवताओंने तितिक्षा सहन की है। हमें भी तितिक्षा सहन करना सीखना चाहिये।

सह लेनेकी शक्तिसे ही हरिजन महात्मा बन सकते हैं।

पहलेके महात्माओंने तितिक्षा रूपी दोधारी तलवार बरती है। उन्होंने ही नहीं, उनके बादके, हालके जमानेके महात्माओंने भी बेहद तितिक्षा सहन की है। जैसे, सन्तोंकी सेवा करनेके लिये महात्मा कबीरने अनेक प्रकारके कष्ट सहे हैं; मीराबाईने जहरका प्याला पिया है; भक्तराज नरसिंह मेहताने जाति बिरादरीका अपमान सहकर तितिक्षा दिखायी है; महान भक्तराज तुकाराम पर कोई दुःख बाकी नहीं रहा और वह सब इन्होंने धीरजके साथ सहा। महात्मा सूरदासने अपनी आंखें फोड़ कर जगतको तितिक्षा सिखायी है और शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य आदि आचार्योंने भी अपना धर्म स्थापित करते समय अनेक प्रकारके कष्ट सहे हैं। उनमें अगर तितिक्षा सहनेका महान गुण न होता तो वे अपना धर्म स्थापित न कर सकते और संसारमें सफलता न पा सकते। इसी प्रकार बहादुर पुरुषोंने, पराक्रमवाली स्त्रियों-

ने तथा पवित्र सतियोंने समय समय पर अनेक प्रकारके कष्ट सहे हैं और तितिक्षा सहनेके महान गुणके कारण ही वे सब लोग दुःख दूर कर सके हैं तथा महादुःखोंके बीच भी शान्ति रख सके हैं। इसलिये अगर धर्मके रास्तेमें आगे बढ़नेकी इच्छा हो तो हमें भी तितिक्षा सहना सीखना चाहिये।

धर्मकी सब प्रकारकी क्रियाओंका उद्देश ही है सह लेना सीखना।

भाइयो! याद रखना कि धर्मकी जितनी तरहकी मुख्य क्रियाएं हैं वे सब सहनशीलता सीखनेके लिये ही हैं। जैसे, व्रत यानी उपवास किस लिये किया जाता है? इसके और और उद्देशोंके साथ एक मुख्य उद्देश यह भी है कि भूखको दबाना सीखा जाय। हम जो तीर्थयात्रामें जाते हैं उसके और उद्देशोंके साथ एक मुख्य उद्देश यह भी है कि हम परदेशमें होनेवाली अनेक प्रकारकी अड़चलोंमें शान्तिसे रहना सीखें। ब्रह्मचर्य पालने, मौनव्रत लेने आदि बड़े बड़े विषयोंमें भी तितिक्षा सहनेकी बात मुख्य करके होती है; क्योंकि हम जगतके भीतर हमारी जिन्दगीमें अनेक दुःख ऐसे हैं जिन्हें भोगे बिना छुटकारा ही नहीं है; खुशीसे या लाचारी दरजे उनको भोगना ही पड़ेगा। इसमें यह नियम है कि अगर शान्तिसे उन्हें भोगें तो मोक्ष मिलता है और हाय हाय करते भोगें तो नरकमें जाना पड़ता है। इसलिये आपसे आप आ पड़नेवाले, प्रारब्धसे आ पड़नेवाले, दुर्घटनासे आ पड़नेवाले, प्रसङ्गवश आ पड़नेवाले, किसीकी भूलसे आ पड़नेवाले, अपनी भूलसे आ पड़नेवाले, ऋतुओंके फेरबदलसे आ पड़नेवाले तथा इसी प्रकारके दूसरे अनेक दुःख हम न चाहें तो भी समय

समय पर हमको सतावेंगे ही। इन सब दुःखोंसे बचनेके लिये तथा इस प्रकारके दुःखोंमें भी आराम पानेके लिये उन्हें शान्तिसे भोग लेनेके लिये तितिक्षा सहनेकी जरूरत है। ऐसे दुःखोंमें भी मन शान्तिसे रहे इसीके लिये शास्त्रमें तितिक्षाको उत्तम बताया है और इसीसे प्रभुने कहा है कि तितिक्षा सहनेसे मोक्ष होता है।

दुःख सहनेसे ही मोक्ष मिल सकता है।

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥

अ० २ श्लो० १५

हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ! इन्द्रियों और विषयोंके सम्बन्धसे उत्पन्न होनेवाले सुख दुःख जिनके लिये समान हैं और ये सुख दुःख जिनको कष्टदायक नहीं होते वे धीर पुरुष मुक्ति पानेके योग्य होते हैं।

क्योंकि श्रीमद्भगवद्गीतामें प्रभुने कहा है कि—

इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणि ते स्थिताः॥

अ० ५ श्लो० १९

जिनका मन सम भावमें है उन्होंने यहीं अर्थात् इसी जिन्दगीमें संसारको जीत लिया है। क्योंकि ईश्वर निर्दोष और सम भाववाला है। इसलिये जो दुःख सुखमें सम भाव रखते हैं वे भगवानमें ही हैं।

भाइयो! तितिक्षा सहनेसे सुख दुःखमें समभाव रखा जा सकता है और भगवानने कहा है कि—

समत्वं योग उच्यते।

अ० २ श्लो० ४८

अर्थात् लाभहानिमें, जय पराजयमें, मान-अपमानमें और सुखदुःखमें समान वृत्ति रखना और मनको धक्का न लगने देना ईश्वरके साथ जीवको जोडनेवाला योग कहलाता है और ऐसा महान योग तितिक्षा सहन करनेसे ही हो सकता है; इतना ही नहीं बल्कि प्रभु कहते हैं कि सह लेनेसे ही और कड़वा घूँट घोंट लेनेसे ही मोक्ष मिल सकता है। इसके सिवा परम कृपालु सच्चिदानन्द स्वरूप महान् परमात्मा भी स्वयं समता रखते हैं इससे जो हरिजन समता रख सकते हैं वे ही ईश्वरमें रहनेवाले हैं। यह बात प्रभुने स्वयं कही है। इसलिये जैसे बने वैसे हमें तितिक्षा सहना सीखना चाहिये और ऐसा करना चाहिये कि अपनी जिन्दगीमें समता या समभाव आवे। हे परम कृपालु पिता परमात्मन्! अपने कल्याणके लिये तथा अपने भाइयोंकी मदद करनेकी योग्यता प्राप्त करनेके लिये हमको तितिक्षा सहन करनेका बल दे, बल दे, बल दे।

इस जगतमें और इसी जिन्दगीमें सुख पानेका उपाय जाननेके बाद ऐसा होना चाहिये कि हम वह उपाय कर सकें और उसको अमलमें ला सकें तथा उसको अपनी जिन्दगीके बर्तावमें चला सकें। ऐसा सच्चा बल पानेके लिये धर्मकी नींव जानना चाहिये। इसलिये स्वर्गकी सीढीकी छठी पैड़ीमें धर्मकी नींव बतायी जायगी।

छठी पैड़ी ।

—•◊•—

धर्मकी नीव ।

—:[:*:]:—
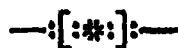
जिसका अफसोस न करना चाहिये हम उसका अफसोस करते हैं ।

धर्मकी नीव क्या है ? यह बहुत स्वाभाविक प्रश्न है, बड़े महत्त्वका है, बड़ा जरूरी है और बड़ा गम्भीर है। क्योंकि यह बड़े कामकी बात है। अगर यह नीव हमें मिल जाय तो बहुत बड़ा काम हुआ समझा जाय। हर छोटी बड़ी इमारतका मुख्य आधार नीव है इसीसे हम लोगोंमें कहावत है कि "जहाँ नीव पड़ी कि आधा काम हो गया समझना।" क्योंकि नीव पड़नेके बाद इमारत बढ़ते देर नहीं लगती। इसलिये पहले नीव जाननी चाहिये।

परन्तु धर्मकी नीव क्या है ? इसके लिये भिन्न भिन्न शास्त्रोंमें भिन्न भिन्न बातें कही हैं और भिन्न भिन्न महात्माओंने जुदी जुदी नीव मानी है पर यह पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीताके आधार पर लिखी जा रही है, इसलिये जिस प्रश्न पर गीताकी उत्पत्ति हुई और जिस प्रश्नका उत्तर समझ लेने पर गीताकी समाप्ति हुई उस प्रश्नको हम धर्मकी नीव समझते हैं और इस अध्यायमें उसी विषय पर विवेचन किया जायगा।

वह प्रश्न यह है कि धर्म्म पालने यानी अपना कर्त्तव्य पूरा

करते समय अर्जुनको मोह हुआ कि इस सारी पलटनमें मेरे काका, मामा, गुरु, लड़के आदि सगे आदमी ही हैं, इन सबको मैं कैसे मारूँ ? इससे दुखी होकर, निराश होकर, हताश होकर, हिम्मत हारकर तथा अपना क्षत्रियपन भूलकर अर्जुन ने कहा कि मैं युद्ध नहीं करूँगा अर्थात् अपना कर्त्तव्य नहीं करूँगा और अपना धर्म्म नहीं पालूँगा; क्योंकि इन सब सगोंको मार डालनेसे मुझे जो शोक होगा उस शोकको मिटानेवाली तीनों लोकमें कोई चीज नहीं दिखाई देती। इससे मैं लड़ाई नहीं करूँगा अर्थात् अपना फर्ज नहीं अदा करूँगा। इसके लिये वह कहते हैं कि—

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद् यच्छोकमुच्छोषणमिंद्रियाणाम् ।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्ध राज्य सुराणामपि चाधिपत्यम् ॥
अ० २ श्लो० ८

सारी सम्पत्तिवाली और बे शत्रुकी सारी पृथ्वीका राज्य मुझे मिले और स्वर्गका राज्य मिले तो भी मेरी इन्द्रियोंको सुखा देनेवाला अफसोस नहीं मिटने का।

यह सुनकर श्रीकृष्णभगवान ने कहा है कि—

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादाश्च भाषसे ।
गतासुनगतासूश्च नानुशोचन्ति पंडिता ॥
अ० २ श्लो० ११

जिसका शोक न करना चाहिये उसका तू शोक करता है और पण्डितोंकी तरह चतुराईकी बातें कहता है; परन्तु पण्डित तो जो मर जाता है उसका भी अफसोस नहीं करते और जो जीता हो उसका भी अफसोस नहीं करते।

क्योंकि जो चतुर आदमी हैं वे समझते हैं कि—

नैन छिंदंति शस्त्राणि नैन दहति पावकः ।
न चैन क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥

अ० २ श्लो० २३

आत्मा हथियारोंसे नहीं कटती, आगसे नहीं जलती, पानीसे नहीं भीगती और वायुसे नहीं सूखती और

अव्यक्तोऽयमचिंत्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैन नानुशोचितुमर्हसि ॥

अ० २ श्लो० २५

आत्मा सर्वव्यापक है, इसके टुकड़े नहीं हो सकते, यह सोचनेमें नहीं आ सकती और यह अविकारी है। आत्माका ऐसा स्वरूप जानकर उसके लिये शोक करना उचित नहीं है।

इसके सिवा तू यह बात भी समझ ले कि—

देही नित्य मवध्योऽय देहे सर्वस्य भारत ।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्व शोचितुमर्हसि ॥

अ० २ श्लो० ३०

सबकी देहमें जो आत्मा है वह आत्मा कभी नहीं मरती। इसलिये किसी जीवके लिये अफसोस करना तुझे उचित नहीं है।

इस प्रकार यह बात समझायी कि आत्मा अमर है और शरीरका नाश होनेसे आत्माका नाश नहीं होता, इसवास्ते मरे हुए आदमियोंके लिये शोक न करना चाहिये। और कोई भी आत्माका यह अमर स्वरूप न समझता हो और मरे हुओंके लिये अफसोस करता हो तो उसके लिये प्रभु कहते हैं—

अथ चैन नित्यजात नित्यं वा मन्यसे मृतम् ।
तथापि त्व महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥

अ० २ श्लो० २६

अगर तू यह समझता हो कि आत्मा हमेशा जन्म लेती है और हमेश मरती है, तो भी हे अर्जुन! इस नष्ट होनेवाली, आत्माके लिये तुझे शोक करना उचित नहीं है; क्योंकि—

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि॥

अ० २ श्लो० २७

जो जन्मता है वह निश्चय ही मरता है और जो मरता है वह फिरसे जरूर जन्म लेता है। इसलिये जो बात किसीसे भी नहीं रुक सकती उसके बारेमें शोक करना तुझे उचित नहीं है। इसके सिवा—

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना॥

अ० २ श्लो० २८

इस जगत्में उत्पन्न होनेसे पहले सब जीव तथा सब वस्तुएं कहाँ थीं यह हम नहीं जानते और नाश होनेके बाद ये सब कहाँ जाती हैं यह भी नहीं जानते; सिर्फ जन्म और मरणके बीचके समयमें ही ये हमें दिखाई देती है। तब हे अर्जुन! ऐसी बातोंमें अफसोस किस लिये?

जो किसीके लिये अफसोस नहीं करता वही मोक्ष पा सकता है।

अब प्रभु यह समझाते हैं कि जीते हुओंके लिये भी शोक करनेकी जरूरत नहीं है। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है—

मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥

अ० २ श्लो० १४

हे अर्जुन! इन्द्रियों और विषयोंका सम्बन्ध होनेसे अर्थात् इन्द्रियोंके विषय भोगनेसे सर्द गर्म आदि जो असर होता है वह असर सुख तथा दुःख देनेवाला है और वह भोग तथा उससे होनेवाले सुख और दुःख आने जानेवाले स्वभावके हैं तथा थोड़ी देर रहनेवाले हैं। इसलिये हे अर्जुन! तू तितिक्षा सहन कर अर्थात् सब तरहके दुःखोंको उनका सामना किये बिना, चिन्ता रखे बिना और रंज माने बिना सह ले।

बिना अफसोस किये जो दुःखोंको सह लेता है वही उत्तम मनुष्य है। इसके लिये प्रभु ने कहा है कि—

> शक्नोतीहैव य. सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात्।
> कामक्रोधोद्भवं वेग स युक्त स सुखी नर. ॥

अ० ५ श्लो० २३

इन्द्रियों और विषयोंके सम्बन्धसे उत्पन्न होनेवाले काम, क्रोध आदि विकारोंके वेगको जो मनुष्य शरीरका नाश होनेसे पहले यहीं सह लेता है वही योगी है, वही सुखी है और वही नर है।

इतना ही नहीं, बल्कि प्रभु कहते हैं कि—

> ज्ञेयः स नित्यसन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति।
> निर्द्वन्द्वो हि महाबाहो सुखं बधात्प्रमुच्यते ॥

अ० ५ श्लो ३

जो किसीसे द्वेष नहीं करता या इच्छा नहीं रखता अर्थात् जो अफसोस नहीं करता या तृष्णा नहीं रखता उसको हमेशा संन्यासी समझना। और हे अर्जुन! जो बिना राग द्वेषके होता है वह बहुत सहजमें बन्धनसे छूट जाता है।

इसके सिवा जो बिलकुल अफसोस नहीं करता और सुख

दुःखमें समान वृत्ति रखता है उसीको मोक्ष होता है। इसके लिये प्रभु ने कहा है कि—

यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ॥

अ० २ श्लो० १५

हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! विषयों तथा इन्द्रियोंके संयोगसे उपजनेवाले सुख तथा दुःख जिस धीर पुरुषको व्यथा नहीं पहुँचा सकते, अर्थात् जो सुखसे प्रसन्न नहीं हो जाता और दुःखके लिये अफसोस नहीं करता, बल्कि सुखदुःखमें जो समानवृत्ति रखता है वही मोक्ष पा सकता है।

ईश्वरकी ऐसी साफ आज्ञाओंसे भली भाँति समझमें आ जाता है कि अफसोस न करें और समता रख सकें तभी मोक्ष पानेके योग्य हो सकते हैं। तो भी हम अफसोस किये बिना नहीं रहते। इसका कारण क्या है? यही कि देहके धर्म्म कुलके धर्म्म, लोकाचारके धर्म्म, राज्यके धर्म्म और शास्त्रके धर्म्म इत्यादि अनेक प्रकारके धर्म्मोंमें हम बहुत बँध गये हैं, इससे आत्माका असली स्वरूप और आत्माकी स्वतन्त्रता दब गयी है जिससे हमको अनेक प्रकारके दुःख होते हैं और उन दुःखोंके कारण अफसोस हुआ करता है। हमको दुःख और अफसोससे छुड़ानेके लिये प्रभु हुक्म देते हैं कि—

सर्वधर्म्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

अ० १८ श्लो० ६६

सब धर्म्मोंको छोड़कर एक मेरी ही शरणमें आ जा, बस मैं तुझे सब पापसे मुक्त कर दूँगा। तू अफसोस मत कर।

सब धर्म्म कैसे छोड़े जा सकते हैं ?

अब यह प्रश्न उठता है कि सब धर्म्म कैसे छोड़े जा सकते हैं ? क्योंकि जब तक देह है तब तक देहका धर्म्म, कुलका धर्म्म, जातिका धर्म्म, राज्यका धर्म्म, लोकाचारका धर्म्म तथा शास्त्र-का धर्म्म पालना चाहिये और मनका स्वभाव ही ऐसा है तथा शरीरका गठन ही ऐसा है कि वह एक क्षण भी काम किये बिना नहीं रह सकता। इस कारण देहधारियोंसे सब धर्म्म नहीं छूट सकते और जब तक सब धर्म्म न छूटें तब तक अफसोस हुए बिना भी न रहेगा; क्योंकि हर एक काममें कुछ अच्छा या कुछ बुरा होता ही है और प्रभु यह कहते हैं कि तू शोक मत कर। जब शोक छोड़ेगा तभी तेरा उद्धार होगा। इसलिये अब क्या करना चाहिये ? सब धर्म्म छोड़नेका उपाय क्या है और शोक मेटनेका उपाय क्या है ? इसके लिये प्रभु कहते हैं कि तू सब बोझ अपने ऊपर क्यों उठाता है ? मुझे लगाम सौंप दे, बस तेरा सारा बोझ मैं उठा लूँगा।

> यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
> यत्तपस्यसि कौंतेय तत् कुरुष्व मदर्पणम् ॥
>
> अ० ९ श्लो० २७

हे अर्जुन ! जो कुछ तू काम कर, जो कुछ भोग, जो होम कर, जो दान कर और जो तप कर वह सब मुझे अर्पण कर। ऐसा करनेसे—

> शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्म्मबन्धनैः।
> संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि ॥
>
> अ० ९ श्लो० २८

शुभ और अशुभ फलरूपी कर्म्मके बन्धनोंसे तू छूटेगा

और इस प्रकार सब कर्म्म प्रभुके अर्पण करनेसे तू संन्यासी तथा योगी बनकर कर्म्मसे मुक्त होगा और मुझे पावेगा।

क्योंकि—

कर्म्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
माकर्म्मफलहेतुर्भूर्मा ते सगोऽस्त्वकर्म्मणि॥

अ० २ श्लो० ४७

कर्म्म करना ही कर्त्तव्य है, बदला पानेकी इच्छा रखना तेरा काम नहीं है, इसलिये कर्म्मोंका फल पानेकी कभी इच्छा मत रखना और कर्म्म न करनेका आग्रह भी मत रखना।

इस प्रकार बर्तनेका नाम ही योग है, इसके लिये प्रभुने कहा है कि—

योगस्थ कुरु कर्म्माणि सग त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्यो· समो भूत्वा समत्व योग उच्यते॥

अ० २ श्लो० ४८

हे अर्जुन! ईश्वरके साथ जुड़े रहकर, कर्म्मोंकी आसक्ति त्यागकर और काम पूरा हो तो ठीक है न पूरा हो तो ईश्वर-की मर्जी ऐसी समान वृत्ति रखकर कर्म्म कर। लाभ हानिमें ऐसी समान वृत्ति रखने और हर्ष शोक न करनेका नाम योग है।

इसलिये—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नव पापमवाप्स्यसि॥

अ० २ श्लो० ३८

सुख हो चाहे दुःख, लाभ हो चाहे नुकसान, हार हो चाहे जीत, हर्ष या शोक न करना। ऐसी वृत्ति रखकर अगर तू अपना कर्त्तव्य पालन करेगा तो तुझे पाप नहीं लगेगा।

इस प्रकार निष्काम कर्म्म करनेका नाम 'सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं भज' है। अब विचार कीजिये कि प्रभु बारंबार ज़ोर देकर और हुकम दे कर कहते हैं कि तू अफसोस मत कर, अफसोस मत कर, अफसोस मत कर। परन्तु क्या हम इसमेंसे ज़रा भी पालन करते हैं ? कहिये कि नहीं। हमारी जिन्दगीमें सुखी दिन कितने थोड़े हैं ? हमारे बर्तावमें कितनी अधिक हाय हाय होती है ? हमारे हृदयमें रागद्वेष कितना है और हमारे हृदयमें कितने तरहकी चिताएँ जल रही हैं ? ज़रा विचार तो कीजिये। तिस पर भी हम अपनेको धर्म्मात्मा समझते हैं। पर ऐसा समझना कितनी बड़ी भूल है यह तो ज़रा ख्याल कीजिये। किसी वस्तुके लिये शोक न करना धर्म्मकी नीव है और यह नीव ही हममें नहीं है तब फिर इमारत कहाँसे होगी ? इसलिये जैसे बने वैसे हर एक विषयमें हमें अफसोस घटाना चाहिये।

अफसोस दूर करनेके उपाय।

अफसोस दूर करनेके लिये अफसोसके कारण और उनके उपाय जानने चाहियें; क्योंकि जब तक हम अफसोसमें पड़े रहेंगे तब तक हमारी किसी तरहकी उन्नति नहीं हो सकती। इसके लिये एक अनुभवी विद्वानने कहा है कि—

> चिन्तहिं चतुराई घटे, घटे रूप बल मान।
> चिन्ता बड़ी अभागिनी, चिन्ता चिता समान॥

फिकर ऐसी बुरी चीज है और याद रखना कि अफसोस उससे भी खराब है। इसलिये अफसोस होनेका कारण समझना चाहिये। इसके लिये अनुभवी बुद्धिमान मनुष्योंने कहा है कि—

मोहके कारण अफसोस होता है, अज्ञानताके कारण अफसोस होता है, मेरा ही है यह मान लेनेसे अफसोस होता है; अहंकारसे अफसोस होता है, पाप कर्म करनेसे अफसोस होता है, धर्मको संकीर्ण सीमामें कैद करनेसे अफसोस होता है, सब जीवोंके साथ भ्रातृभाव न रखनेसे अफसोस होता है, जगतके पदार्थोंमें बहुत आसक्ति रखनेसे अफसोस होता है, अपना फर्ज पूरा न करनेसे अफसोस होता है, सच्चा ज्ञान न मिलनेसे अफसोस होता है, राज्यमें प्रजाका वश न होनेसे अफसोस होता है, धर्म पालनेमें उदार विचार न रखनेसे अफसोस होता है, देशकी दशा न समझनेसे अफसोस होता है, वृद्धोंकी इज्जत न बनाये रखनेसे अफसोस होता है अनुचित लोभ रखनेसे अफसोस होता है, बहुत सुख भोगनेकी आशातृष्णा रखनेसे अफसोस होता है, अच्छी संगतमें न रहनेसे अफसोस होता है और ईश्वरके विमुख रहनेसे अफसोस होता है। जब तक यह सब कूड़ा कर्कट मनमें भरा रहे तब तक अफसोस होना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है, और जब तक अफसोस हो तब तक यह न समझना कि हममें धर्म है। धर्मका पहला फल आनन्द है। इसलिये जब तक अपनेको आनन्द न मिले तब तक यह समझना कि हममें धर्म आया ही नहीं है; क्योंकि अफसोस न करना ही धर्मकी नींव है और सदा आनन्दमें रहना ही धर्मका पहला फल है, इसलिये हमें अफसोस न करना चाहिये।

अफसोस होनेके कारण।

इससे हम इतना तो जरूर समझ सकते हैं कि अफसोस करना उचित नहीं है। तो भी हमको बारंबार अफसोस करना

पड़ता है; इसका कारण यही है कि मनुष्य जातिके साथ हमें जिस प्रेमसे बर्ताव करना चाहिये उस प्रेमसे हम बर्ताव नहीं करते; इससे हमें अफसोस होता है। हम आप दूसरोंसे बुरा बर्ताव करते हैं और फिर भी यह चाहते हैं कि और सब लोग हमारे साथ अच्छा बर्ताव करें; इससे हमें अफसोस होता है। सह लेने और क्षमा करनेके दो महान गुण हममें जैसे चाहियें वैसे नहीं हैं इससे हम जिसके तिसके साथ बात बातमें झगड़ा करते हैं इससे हमको अफसोस होता है। आदमी आदमीके विचार जुदे जुदे होते हैं और सबको अपने अपने व्यक्तिगत विचारके लिये एक समान स्वतंत्रता होती है, तो भी हम एक दूसरेके विचारोंका मतभेद नहीं सह सकते; इससे हमको अफसोस होता है। अपने देशके लिये, अपने धर्म्मके लिये, अपने गरीब भाइयोंके लिये और अपनी आत्माके कल्याणके लिये जितनी हिम्मत रखनी चाहिये उतनी हिम्मत हम नहीं रखते; इससे हमको अफसोस होता है। हम अपनेमें योग्यता न होने पर भी मान चाहते हैं; इस उचितसे अधिक मान पानेकी इच्छाके कारण हमें अफसोस होता है। जगतकी वस्तुओंमें उसकी उपयोगिताके अनुसार जरूरत भर ही प्रेम रखना चाहिये, पर उसके बदले हम वस्तुओंमें बेहद आसक्त हो जाते हैं; इससे हमें अफसोस होता है। हम समयका सदुपयोग नहीं करते; वक्तकी कीमत नहीं समझते, और अच्छे कामोंमें नहीं लगे रहते; इससे हमें अफसोस होता है। हमें अपनी दशाके अनुसार और अपनी हैसियतके अनुसार सब जीवों पर दया रखनी चाहिये पर इसके बदले हमने अपनी दयाकी रुचिको बहुत संकुचित कर रखा है और हममें कठोरता आ गयी है; इससे हमें अफसोस

होता है। तन, मन, धन, वचन और कर्मकी जैसी पवित्रता रखनी चाहिये वैसी पवित्रता हम नहीं रखते; इससे हमें अफसोस होता है। हमें अपने धर्म पर, शास्त्र पर, महात्माओंके वचन पर, ईश्वर पर और अपनी आत्माके बल पर जितना विश्वास रखना चाहिये उसका हजारवां भाग भी हम विश्वास नहीं रखते; इससे हमें अफसोस होता है। हम भीतरसे जैसा नहीं होते वैसा दिखानेके लिये बाहरसे ढोंग रचते हैं पर दुनिया कुछ अंधी नहीं है, वह हमारी दाम्भिकता समझ जाती है जिससे हमारी स्वार्थकी इच्छाएं पूरी नहीं होतीं; इससे हमें अफसोस होता है। अभयपन अर्थात् एक ईश्वरको छोड़कर और किसीसे न डरना, प्रगटमें हिम्मत रखना, दिलेर रहना और निर्भय होकर इस जिन्दगीके फर्ज पूरा करना दैवी सम्पत्तिके मूल पाये हैं पर ये पाये हममें नहीं हैं और निर्भय रहनेके बदलेमें हम मेंडकोंकी टर्र टर्रसे और चूहे बिल्लियोंसे भी डरा करते हैं; इससे हमें अफसोस होता है। जिन्दगीको बनाये रखनेके लिये तथा अच्छी तरह लोकव्यवहार चलानेके लिये हमें जितनी चीजोंकी जरूरत है उससे कहीं अधिककी चाह हमें सिर्फ मौज शौकके कारण रहती है, इससे हमको अफसोस होता है। क्रोधके वेगको हम अपने वशमें नहीं रखते और जहाँ क्रोध न करना चाहिये वहाँ भी हमसे क्रोध हो आता है; इससे हमको अफसोस होता है। हममें उपकार माननेकी वृत्ति बहुत दब गयी है इससे किसीने हमारा भला किया हो तो उसका उपकार माननेके बदले हम उस भलाईको अपना हक समझ लेते हैं या ऐसी बातों पर ध्यान देकर कुछ विचार ही नहीं करते; इससे हमको अफसोस होता है। परोपकार करनेका जितना मौका हमें

मिलता है और परोपकार करनेके जितने साधन हमारे पास हैं उसके अनुसार हम परोपकार नहीं करते; इससे हमें अफसोस होता है। अपने मनको तथा अपनी इन्द्रियोंको जिन जिन विषयोंमें तथा जहां जहाँ वशमें रखना चाहिये वहाँ भी हम उनको वशमें नहीं रखते; इससे हमें अफसोस होता है। जिस विषयमें शान्ति रखनी चाहिये उस विषयमें भी हम शान्ति नहीं रखते; इससे हमें अफसोस होता है। जिसके साथ जितनी नम्रता रखनी चाहिये उसके साथ उतनी नम्रता हम नहीं रखते; इससे हमें अफसोस होता है। कितने ही विषयोंमें जितना संतोष रखना चाहिये उतना संतोष हम नहीं रखते, एक दूसरेका जैसा अदब करना चाहिये वैसा अदब हम नहीं करते; इससे हमें अफसोस होता है। एक दूसरेकी स्वाभाविक भूलें जैसी उदारता और जिस प्रेम भावसे क्षमा करनी चाहिये वैसी उदारता और उस प्रेमभावसे हम सबको क्षमा नहीं करते; इससे हमको अफसोस होता है। जिस जगह और जिस विषयमें हमें अपनी इज्जत जैसी रखनी चाहिये वैसी हम आप ही अपनी इज्जत नहीं रख सकते; इससे हमें अफसोस होता है। जिन घटनाओंसे, जिन कारणोंसे, जिन संयोगोंसे और जिन आशाओंसे हमें प्रसन्न होना चाहिये उन सबके होने पर भी हम जैसे चाहियें वैसे प्रसन्न नहीं होते; क्योंकि आनन्दमें रहनेकी वृत्तिको हमने खिलने ही नहीं दिया है; इससे हमें अफसोस होता है। चार दिन आगे पीछे जरूर मरना है इससे कुछ सार्थकता कर लेना अच्छा है इस विचारको हम अपनी नजरके सामने नहीं रखते; इससे हमें छोटी छोटी बातोंमें अफसोस होता है। सारांश यह है कि हममें प्रभुप्रेम नहीं है और हम ईश्वरकी महिमा तथा आत्मा

और परमात्माका सम्बन्ध नहीं समझते इसीसे हमें अफसोस होता है। इसलिये इन सब विषयोंमें हमें विचार विचार कर चलना चाहिये। इसके बदले आजकल हम क्या करते हैं यह आपको मालूम है? हम बात बातमें अफसोस किया करते हैं और फिर भी यह समझते हैं कि हम धर्म पालते हैं और धर्मवाले हैं। परन्तु ईश्वर कहते हैं कि—

हरिजन कभी अफसोस नहीं करते।

जो सच्चे भक्त हैं वे अपने प्यारेसे प्यारेके मर जाने पर भी अफसोस नहीं करते, बल्कि यह समझते हैं कि प्रभुकी सौंपी हुई थाती थी उसने ले ली, इसमें हमारा था ही क्या और गया ही क्या? यह समझ कर अफसोस नहीं करते। राज्य चला जाय तो भी अफसोस नहीं करते, बल्कि यह समझते हैं कि उपाधि घटी, इससे अब सुखसे भगवानको भजेंगे। दीवाला निकल जाय तो भी अफसोस नहीं करते। कैद होना पड़े तो भी अफसोस नहीं करते। अपना फर्ज पूरा करते समय भारी नुकसान सहना पड़े तो भी अफसोस नहीं करते। भीख मांगनी पड़े तो भी अफसोस नहीं करते और अपना प्राण चला जाय तो भी सच्चे हरिजन अफसोस नहीं करते; क्योंकि अफसोस न करना ही धर्मको नाथ है। इसलिये हरिजन किसी हालतमें अफसोस नहीं करते, बल्कि सब हालतमें मनकी समानता बनाये रखकर अपना कर्त्तव्य पूरा करते हैं।

हम अपनेको धर्मात्मा समझते हैं पर हमारे मनकी हालतको तो जरा देखिये!

हम काटा फट जाय तो भी अफसोस करते हैं।

दियासलाईकी डिबिया या कुर्तेका बटन खो जाय तो भी अफसोस करते हैं। जरा काँटा गड़ जाय या तरकारी काटते वक्त जरा उँगली चिर जाय तो भी अफ़सोस करते हैं। नाहक बहुत खायँ और पीछे जरा अजीर्ण हो जाय तो भी अफसोस करते हैं। काम करनेमें जितना चाहिये उतना ध्यान नहीं रखते इससे कुछ नुकसान होता है और उस नुकसानके लिये हम पीछेसे अफसोस करते हैं। घड़ी ठीक न चले तो उसका अफसोस, कपड़ा पहननेमें अफसोस, पगड़ी बाँधनेमें अफसोस, जूता पहननेमें अफसोस, चाय पीनेमें अफसोस, खानेमें अफसोस, सोनेमें अफसोस, पानी पीनेमें अफसोस, अखबार पढ़नेमें अफसोस, लोगोंसे बातचीत करनेमें अफसोस, रेलगाडीमें बैठनेमें अफसोस, नौकरी करनेमें अफसोस, खेती करनेमें अफसोस, व्यापार करनेमें अफसोस, त्यागी होनेमें अफसोस, ब्याहमें अफसोस, बीमारीमें अफसोस, लड़का न हो तब अफसोस, लड़के बच्चे बहुत हों तब अफसोस, दवा पीनेमें अफसोस, डाक्टरका अफसोस, पढ़नेका अफसोस, पान तमाखूका अफसोस, मकानका अफसोस और जीने तथा मरनेका अफसोस—इस प्रकार हमारी जिन्दगीका बड़ा भाग अफसोसमें ही जाता है। जिन्दगीकी हर हालतमें हम अफ़सोसको ही पकड़ते हैं और अफसोसको ही बढ़ानेका अभ्यास किया करते हैं। तिल पर भी अर्थात् अपनेमें धर्मकी नींव न होने पर भी हम अपनेको धर्मात्मा समझा करते हैं! इसका परिणाम यह होता है कि धर्म पुस्तकोंमें ही लिखा रह जाता है और हमारे आचरणमें अफसोससे पैदा होनेवाले झगड़े आ जाते हैं। इससे स्त्रीके साथ खटपट, माबापके साथ झगड़ा, लड़कोंके साथ कहा-

सुनी पड़ोसियोंसे लड़ाई, सम्बन्धियोंके साथ मारपीट, भाइयोंके साथ मुकद्मेबाजी, ग्राहकोंके साथ खिटखिट, नौकरोंसे हूँ टूँ, ठाकुरोंकी गुलामी, हाकिमोंकी खुशामद और गुरूकी दयानत चेलोंका धन चूसनेकी और चेलोंकी दयानत गुरुको न माननेकी होती है। इस प्रकार व्यवहारके हर काममें जहाँ तहाँ लड़ाईटंटा, कहासुनी, मुँहबिचकौवल, मनमुटाव और कुछ न कुछ नुकसान ही होता है। अफसोसका परिणाम और होगा ही क्या? इसलिये अगर अपनी जिन्दगी सुधारनी हो, मोक्षका सुख पाना हो और ईश्वरका कृपापात्र होना हो तो अपनेमें पहले धर्मकी नींव डालनी चाहिये अर्थात् कभी किसी तरहका अफसोस न करना चाहिये। भूत कालमें जो बात हो गयी वह नहीं हुई ऐसा तो होनेका नहीं और जो बात भविष्यमें होनेवाली है वह नहीं होगी ऐसा भी होनेका नहीं। इसलिये हरिजनोंको हमेशा वर्त्तमान कालमें ही रहना चाहिये और किसी तरहका अफसोस न करके आजका दिन कैसे सुधरे इसीका खास ख्याल रखना चाहिये। अगर हर रोजकी वर्त्तमान जिन्दगी सुधारना आवे तो इससे गुजरे वक्तकी भूलें माफ हो सकती हैं और भविष्य सुधर सकता है। इसलिये किसी तरहका डर रखे बिना ऐसा करना चाहिये कि अपना वर्त्तमान काल सुधरे।

अफसोस न करना धर्मकी नींव है।

भाइयो! इन सब बातोंसे आपको विश्वास हो गया होगा कि अफसोस करना बहुत खराब है; क्योंकि अफसोस करनेसे जिन्दगी बिगड़ जाती है और सब तरहके सुख नष्ट हो जाते हैं। ऐसा न होने देनेके लिये अफसोस ही न करना

और उत्साहके साथ अपनी जिन्दगीके फर्ज पूरे करना। इसीको महात्माओंने धर्मकी नीव कहा है और जब सब तरहके मोह मिट जाते हैं तभी यह नीव हममें पड़ती है। जब यह नीव हममें पड़े तभी हमारी जिन्दगी सफल होती है; क्योंकि अफसोस मिटनेसे ही मोह मिटता है और मोह मिटनेसे ही अफसोस मिटता है। इसके बाद ही अच्छी तरह जिन्दगीके फर्ज अदा किये जा सकते हैं तथा ईश्वरके हुक्म पाले जा सकते हैं। ऐसा होनेमें ही जिन्दगीकी सार्थकता है। इसलिये सब ज्ञान देनेके बाद जब गीता पूरी हुई तब श्रीकृष्ण भगवानने अर्जुनसे कहा है कि—

> कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
> कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रणष्टस्ते धनञ्जय॥
>
> अ० १८ श्लोक० ७२

हे कुन्ती-पुत्र! क्या तूने यह एकाग्र चित्तसे सुना? हे शत्रुका धन जीतनेवाला क्या अज्ञानसे उपजा हुआ तेरा मोह पूरा पूरा मिटा?

यह सुनकर अर्जुनने कहा है कि—

> नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
> स्थितोऽस्मि गतसंदेहः करिष्ये वचनं तव॥
>
> अ० १८ श्लो० ७३

हे प्रभु! तुम्हारी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया अर्थात् मेरा अफसोस मिटा, मेरी स्मृति आयी अर्थात् अपना कर्तव्य मेरी समझमें आ गया और मेरा संशय मिट गया है; इसलिये अब मैं तुम्हारा कहना करूँगा।

अन्तिम सिद्धान्त।

बन्धुओ! जब इस प्रकार अर्जुनने कबूल किया और

उसके अनुसार बर्ताव किया तभी गीता पूरी हुई है। इस लिये हम भी अगर गीताको प्रमाण मानते हों तो इसीके अनुसार बर्ताव करना चाहिये; अर्थात् अफसोस छोड़कर, वहम छोड़कर, भय छोड़कर, हिम्मत रखकर और बहादुर होकर हमें अपने देशके कल्याणके, अपने धर्मकी रक्षाके अपनी फरयाद सुनी जानेके, अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके, अपनी आत्माका कल्याण करनेके तथा अपनी जिन्दगीके छोटे बड़े सब कर्तव्य पूरे करने चाहियें। अगर ऐसा करना आवे तो सब बातोंमें इस दुनियामें तथा परलोकमें भी अपनी ही विजय है। याद रखना कि यह कुछ हम अपनी कल्पनासे निकली हुई बात नहीं कहते बल्कि महा ज्ञानी दिव्य चक्षुवाले गरीब महात्मा संजयने कहा है कि—

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥

अ० १८ श्लो० ७८

जहाँ आकर्षण करनेवाला तथा आनन्द देनेवाला योगियोंका ईश्वर है अर्थात् जहाँ लम्बी नजर दौड़ा कर सलाह देनेवाले महात्मा हैं और जहाँ धनुषधारी अर्जुन है अर्थात् जहाँ जगा हुआ जीव है, जहाँ पुरुषार्थ करनेवाला हरिजन है वा जहाँ अपना कर्तव्य पूरा करनेका तय्यार हथियारबन्द अर्थात् अच्छे साधनवाला बहादुर है वहीं अचल राज्यलक्ष्मी है, वहीं निश्चित विजय है, वहीं स्थिर सम्पत्ति है और वहीं सच्ची नीति है। यह मेरा मत है।

भाइयो! अगर यह सब प्राप्त करना हो तो हमें भी धनुषधारी अर्जुन बनना चाहिये और शोक तथा भय छोड़ कर अपनी जिन्दगीके कर्तव्य पूरा करनेके लिये हमें मुस्तैद

रहना चाहिये। तब कृपालु ईश्वर अवश्य ही हमारी सहायता करेंगे।

इन सब बातोंसे हमने जाना कि किसी बातके लिये अफ़सोस न करना धर्म्मकी नीव है। इस नीवको खूब मजबूत करनेके लिये सातवीं पैड़ीमें यह समझाया जायगा कि मरनेसे न डरने और जो मर जाय उसके लिये अफसोस न करनेके विषयमें भगवानका क्या हुक्म है।

सातवीं पैड़ी।

मरनेसे न डरने और जो मर जाय उसके लिये अफसोस न करनेके विषयमें ईश्वरका हुक्म।

अफसोस करनेसे जिन्दगी बिगड़ जाती है।

आजकल हम सब मौतसे बहुत डरा करते हैं और जब कोई प्यारा सगा मर जाता है तब उसके लिये बहुत ही अफसोस किया करते हैं और बहुत दिनों तक बड़ा बड़ा शोक सन्ताप मनाया करते हैं तथा बहुत दिनों तक और कितनी ही जातियोंमें तो वर्ष दिन तक हर रोज रोया कलपा करते हैं। यह सब धर्म्मके, शास्त्रके और ईश्वरके हुक्मके कितना विरुद्ध है यह आप जानते हैं? अगर इस विषयकी सारी हकीकत हम अच्छी तरह जानें तो हमारे जीमें यह बात बैठ जाय कि हम जो मरे हुओंके लिये अफसोस करते हैं और मौतसे डरते हैं यह बहुत भूल करते हैं। इस भूलसे हमारी जिन्दगी बिगड़ जाती है, हमारी नजरके सामनेके तथा भविष्यके सुख नष्ट हो जाते हैं और मरे हुओंका शोक करनेसे ही हम स्वर्ग खो देते हैं। ऐसा न होने देनेके लिये ईश्वरका क्या हुक्म है, शास्त्रकी क्या आज्ञा है और महात्माओं की क्या इच्छा है यह हमें खूब अच्छी तरह जानना चाहिये।

इसके लिये सारे जगतके विद्वानोंमें प्रशंसित हमारे धर्मकी मुख्य पुस्तक श्रीमद्भगवद्गीतामें क्या हुक्म है उसको आइये ढूँढ़ें।

अर्जुनका मोह।

महाभारतके कौरव पाण्डवके युद्धकी तय्यारी जब हुई उस समय अपने सगे सम्बन्धियोंको वहाँ देखकर अर्जुनके जीमें यह ख्याल आया कि ये सब लड़ाईमें मर जायँगे, इन सबके मर जाने पर राज्य वैभव या सुख मेरे किस काम आवेगा? यह ख्याल होनेसे अर्जुनको बहुत अफसोस हुआ इससे उन्होंने श्रीकृष्ण भगवानसे कहा कि मैं युद्ध नहीं करूँगा। यह कहकर अर्जुन रोने लगे और बहुत अफसोस करने लगे। तब भगवानने कहा कि—

कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्।
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्त्तिकरमर्जुन॥

अ० २ श्लो० २

हे अर्जुन! मरनेका शोक करना पाप है और ऐसा शोक करना जंगली लोगोंका काम है। ऐसा शोक करनेसे कोई स्वर्गमें नहीं जा सकता और ऐसा शोक करनेसे अपकीर्त्ति होती है। यह शोकरूपी पाप तुझे ऐसे कठिन स्थानमें कहाँसे आ लगा?

आगे चलकर प्रभु और कहते हैं कि—

क्लैब्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परंतप॥

हे अर्जुन! जब कि तेरे लिये कर्त्तव्य पालनेका समय है उस समय ऐसा मोह रखना और ऐसा अफसोस करना तुझे नहीं सोहता। यह तो हिजड़ापन है। तू ऐसा हिजड़ा मत

बन, क्योंकि अफसोस करना छोटे मनवालेका काम है।' इसलिये हृदयकी दुर्बलता छोड़कर हे, अर्जुन! तू अपना कर्त्तव्य पालन कर।

यह सुनकर अर्जुनने कहा कि हे प्रभु! पूजने योग्य गुरुओं पर मैं बाण कैसे चलाऊँ? गुरुओंको मारनेसे भीख माँगना कहीं अच्छा है। और हम जीतेंगे कि सामनेवाले जीतेंगे इसका कुछ पता नहीं है। इसके सिवा जिनके मर जाने पर हमें जीना पसन्द नहीं वे हमारे भाई—धृतराष्ट्रके पुत्र तो यहीं सामने आकर खड़े हैं। इससे इन लोगोंको मार कर सुख भोगना मुझे खून से भरा सुख जान पड़ता है। इस प्रकार दुःखित हृदयसे अर्जुनने बहुत सी बातें कहीं और अन्तको जब उनकी सब दलीलें खतम हो गयीं तब उन्होंने जी खोल कर दीनता से कहा कि—

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥

अ० २ श्लो० ७

मैं अज्ञानताके कारण अपने मनकी कमजोरीसे बड़ी उलझनमें पड़ गया हूँ, इससे धर्मकी बात समझनेमें मेरा चित्त बड़ा मूढ़ होगया है। इसलिये मेरा कल्याण किसमें है यह तुम मुझसे ठीक २ कहो। मैं तुम्हारा शिष्य हूँ और तुम्हारी शरण आया हूँ। मुझे रास्ता बताओ।

क्योंकि—

न हि प्रपश्यामि ममापनुद्याद् यच्छोकमुच्छोषणमिन्द्रियाणाम्।
अवाप्य भूमावसपत्नमृद्धं राज्यं सुराणामपि चाधिपत्यम्॥

अ० २ श्लो० ८

भारी सम्पत्तिवाली और बिना दुश्मनकी सारी पृथ्वीका

राज्य मुझे मिले और स्वर्गका राज्य भी मिले तो भी मेरी इन्द्रियोंको सुखा देनेवाला शोक नहीं मिटता दिखाई देता।

यह कहकर नींदको जीतनेवाले तथा शत्रुओंको कंपानेवाले अर्जुनने कहा कि हे इन्द्रियोंको वशमें रखनेवाले प्रभु! मैं लड़ाई नहीं करूँगा। यह कहकर वह चुप होगये। तब किसीका पक्ष न लेकर दैवी तथा आसुरी सम्पत्तिके बीचमें बेलाग रहनेवाले प्रभुने मुसकुराते हुए कहा—

श्रीकृष्ण भगवानकी सीख।

अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः॥

अ० २ श्लो० ११

जिन बातोंका अफसोस नहीं करना चाहिये उनका तू अफसोस करता है और पण्डितोंकी तरह बड़ी २ बातें कहता है; परन्तु ज्ञानी लोग मरे हुओंके लिये या जीते हुओंके लिये—किसीके लिये अफसोस नहीं करते।

क्योंकि देहका नाश होनेसे कुछ आत्माका नाश नहीं होता और देह तो जड़ है इसलिये उसका नाश होता ही है इसमें कोई नयी बात नहीं है; परन्तु आत्मा चैतन्यरूप है इससे उसका कभी किसी तरह नाश नहीं हो सकता। इसलिये मरनेसे न डरना और मरे हुओंके लिये अफसोस न करना। जिसे मरना है अफसोस करनेसे उसका मरना रुक नहीं जानेका और जो मर गया वह अफसोस करनेसे जी नहीं जायगा, इसलिये मरनेसे न डरना और मरे हुओंके लिये अफसोस न करना। इस विषयको अच्छी तरह समझानेके लिये प्रभु कहते हैं कि—

न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम्॥

अ० २ श्लो० १२

यह नहीं कि मैं किसी समय नहीं था, यह भी नहीं कि तू भी किसी समय नहीं था और यह भी नहीं कि ये राजा भी किसी समय नहीं थे। इसके सिवा ऐसा भी नहीं होनेका कि हम सब किसी समय न होंगे। मतलब यह कि यह शरीर नाश होनेवाला है परन्तु आत्मा अमर है।

अब अगर शंका हो कि आत्मा अमर है और वहीकी वही आत्मा तरह तरहकी देहोंमें आया करती है यह कैसे हो सकता है तो उसका खुलासा करनेके लियें प्रभु कहते हैं—

देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवन जरा।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति॥

अ० २ श्लो० १३

जैसे इस देहमें मोजूद एक ही आत्माकी बचपन, जवानी और बुढ़ापा इत्यादि जुदी जुदी अवस्थाएं होती हैं वैसे ही इस शरीरका नाश होने पर इसी आत्माको दूसरा शरीर मिलता है, इसलिये धीरजवाले आदमियोंको इस विषयमें मोह नहीं होता।

मतलब यह कि जैसे बचपन और जवानीमें बहुत अन्तर है—कहाँ बालकपनकी निर्दोषता और कहाँ जवानीके विकास—वैसे ही जवानी और बुढ़ापेमें बहुत अन्तर है—कहाँ जवानीका जोश और जवानीका विकास और कहाँ बुढ़ापेकी कमजोरी ? इस प्रकार बुढ़ापा, जवानी, और बचपन ये तीनों अवस्थाएं एक दूसरेसे बिलकुल जुदी और बहुत फर्कवाली होती हैं तो भी, शरीरकी इन सब जुदी जुदी अवस्थाओंमें भी आत्मा

वहीकी वही और एक ही है। जुदी जुदी देहोंमें जाने पर भी आत्मा वहीकी वही रहती है; क्योंकि देहका नाश होता है कुछ आत्माका नाश नहीं होता। इसलिये मर-नेका अफसोस न करना चाहिये। यह बात और अच्छी तरह समझानेके लिये महात्मा श्रीकृष्ण भगवानने और खुलासा करके कहा है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही॥

अ० २ श्लो० २२

जैसे आदमी पुराना कपड़ा छोड़कर दूसरा नया कपड़ा पहनता है वैसे पुराना शरीर छोड़कर आत्मा दूसरे नये शरी-रमें जाती है।

तंग और फटे हुए पुराने अंगरखेके बदले नया अंगरखा मिले तो इसमें अफसोसकी क्या बात है?

बन्धुओ! प्रभु क्या कहते हैं आपने समझा? वह कहते हैं कि मर जाना तो सिर्फ कपड़ा बदलनेके समान है और उसमें भी खूबी यह है कि पुराना कपड़ा छोड़कर दूसरा नया कपड़ा पहननेको मिलता है। जरा विचार तो कीजिये कि नया कपड़ा पहननेसे आपको कभी अफसोस होता है? कहिये कि नहीं। तब नया शरीर लेनेके लिये पुराना शरीर छोड़नेमें क्यों अफसोस करते हैं? याद रखना कि जब हमारी पोशाक बहुत खराब हो जाती है और पहनने लायक नहीं रहती या जब हमारा शरीर मोटा हो जाता है और पोशाक तंग होती है तब हम पुरानी पोशाकको छोड़ देते हैं और उसके

बदले अपने शरीरमें ठीक आने लायक और शोभने योग्य नयी पोशाक पहनते हैं। इसी तरह जब हमारी यह देह अपनी आत्माके विकासके लिये अड़चन भरी मालूम देती है तभी ईश्वर इस देहका नाश करते हैं और उसके बदले ऐसी देह देते हैं जिससे आत्माकी उन्नति हो सके। इसके लिये हमें ईश्वरका उपकार मानना चाहिये। इसके बदले हम मौतके डरसे रोया करते हैं, शोक मनाया करते हैं और जीको कलपाया करते हैं। यह कितना खराब है? यह ईश्वरका कितना बड़ा अपमान है? यह कितना बड़ा अज्ञान है? यह कितनी बड़ी अश्रद्धा है? और कितनी बड़ी मूर्खता है? ज़रा विचार तो कीजिये। जिस बातको महात्मा लोग कपड़ा बदलना समझते हैं, जिस बातको महात्मा लोग उन्नति समझते हैं, जिस बातको प्रभु जीवों पर अपनी कृपा समझते हैं और जिस बातको धर्म अपना एक मुख्य अंग समझता है उस बातको हम खराब समझें और उसका अफसोस किया करें तो इससे बढ़कर हमारी नालायकी और क्या होगी? इसलिये हम सबको कभी मौतका अफसोस न करना चाहिये।

आत्मा अमर है और शरीर नाशवान है; इसलिये दैव इच्छासे कुदरती तौर पर शरीरका नाश हो तो उससे आत्माका कुछ भी नुकसान नहीं होता; उल्टे शरीरका नाश होनेसे आत्माको ऐसा नया शरीर मिलता है जो उसके अधिक अनुकूल हो। इससे मरनेसे आत्माकी और अच्छी और जल्द उन्नति होती है। इसलिये मौतके डरसे न डरना चाहिये। तो भी हम सब मौतसे बहुत डरा करते हैं। इसका कारण यही है कि आत्माका अमरत्व और आत्माका असली स्वरूप हम नहीं जानते। इससे हमें मरनेका अफसोस होता है। अगर

आत्माका अमरत्व और देहका क्षणभंगुरपन ठीक ठीक समझमें आ जाय तो फिर मौतका बहुत अफसोस न हो। इसलिये आत्माका स्वरूप समझाते हुए प्रभु कहते हैं—

आत्माका स्वरूप।

न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

अ० ८ श्लो २०

यह आत्मा कभी जन्मती भी नहीं, कभी मरती भी नहीं और पहले नहीं थी अब हुई है यह भी नहीं है; बल्कि यह बेजन्म की है; यह बढ़ती नहीं, घटती नहीं इसमें कुछ फेर-बदल नहीं होता, यह सदा रहनेवाली है, यह असली है और शरीरका नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता।

और कहते हैं—

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत॥

अ० २ श्लो० १८

आत्मा हमेशा रहनेवाली है, इसका नाश नहीं होता और यह ऐसी है कि उपमा उदाहरणसे इसका पार नहीं पाया जा सकता। परन्तु इसके सब शरीर नाशवान हैं; इसलिये हे अर्जुन! तू लड़ाई कर।

क्योंकि,

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः॥

अ० २ श्लो० १६

तत्त्व समझनेवाले ज्ञानियोंने निश्चय किया है कि जो

असत् है अर्थात् जो झूठी वस्तु है उसकी कुछ सत्ता नहीं है और जो सत् है उसका किसी दिन नाश नहीं होता। मतलब यह कि जाड़ा, गर्मी या सुख दुःख तथा शरीर नष्ट हो जानेवाली वस्तुएँ हैं; इसलिये वे असत् हैं और असत् होनेसे उनकी कुछ सत्ता नहीं है; परन्तु आत्मा सत्य है और अमर है। इसलिये असत्य वस्तुओंका शोक नहीं करना चाहिये।

सब आदमी खूब अच्छी तरह यह समझते हैं कि शरीरकी निजकी कुछ सत्ता नहीं है; आत्माकी सत्तासे ही वह सत्तावान है। इस कारण मनुष्य जड़ शरीरका अफसोस नहीं करते और जीवके निकल जाने पर शरीरकी रक्षा तक करनेकी मिहनत नहीं करते; परन्तु जीव जो चला जाता है उसीके लिये अफसोस करते हैं। इसलिये अगर सबको यह विश्वास हो जाय कि जीवका नाश नहीं होता, बल्कि आत्मा सदा अमर है—यह बात अगर ठीक ठीक दिलमें बैठ जाय तो मौतका डर बहुत कुछ घट जाय और मौतका अफसोस भी बहुत कुछ कम हो जाय। इसके लिये प्रभु बार बार ज़ोर देकर बहुत अच्छी तरह आत्माका अमरत्व बताते हैं और कहते हैं—

> नैनं छिंदति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
> न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥ २३

अ० २ श्लो० २३

हथियार इसको काट नहीं सकते, आग इसको जला नहीं सकती, पानी इसको भिगा नहीं सकता और पवन इसको सुखा नहीं सकता।

और कहते हैं—

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ॥

अ० २ श्लो० २४

यह आत्मा ऐसी है कि कट नहीं सकती, जल नहीं सकती, भीग नहीं सकती तथा सूख नहीं सकती। इसके सिवा आत्मा हमेशा रहनेवाली है, सब जगह व्यापी हुई है, स्थिर है, अचल है और अनादि है।

आगे जाकर प्रभु और कहते हैं—

अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ।
विनाशमव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हति ॥

अ० २ श्लो० १७

तू समझ ले कि इन सबमें जो व्याप रहा है उसका नाश नहीं होता और इस विकार रहितका कोई नाश भी नहीं कर सकता।

आत्माका अमरत्व समझानेके बाद प्रभु यह समझाते हैं कि आत्मा निर्विकार है, आत्मा कर्म्मके फलमें लिप्त नहीं होती, आत्मा देहके धर्म्मसे अलग है, आत्मा कुछ नहीं करती, न कुछ कराती और न इसका नाश हो सकता है। जो लोग इसको नाश रहित और अविकारी समझते हैं उनको भी मरनेका डर या अफसोस नहीं होता। इसलिये मरनेका अफसोस छुड़ानेके लिये अब प्रभु आत्माका बेलागपन बताते हैं। वह कहते हैं कि

वेदाविनाशिनं नित्यं य एनमजमव्ययम् ।
कथं स पुरुषः पार्थ कं घातयति हन्ति कम् ॥

अ० २ श्लो० २१

हे अर्जुन! जो यह समझता है कि आत्माका नाश नहीं

होता, वह हमेशा रहती है, बे जन्मकी है और बिना किसी विकारके है वह आदमी किसको मारता है? और किस तरह किसको मरवाता है? मतलब यह कि वह किसीको मारता भी नहीं और किसीको मरवाता भी नहीं। इतना ही नहीं बल्कि—

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम्।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते॥

अ० २ श्लो० १९

जो आदमी इसको मारनेवाली जानता है और जो इसको मर गयी मानता है वह सच्ची बात नहीं जानता; क्योंकि यह किसीको मारती नहीं और आप किसीसे मरती भी नहीं।

आत्माका यह अकर्तापन, अभोक्तापन और निर्विकारपन सब आदमी नहीं समझते; क्योंकि यह बड़ा गहन विषय है। इसके लिये प्रभु भी कहते हैं कि—

आश्चर्यवत्पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः।
आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्॥

अ० २ श्लो० २९

किसीको आत्मा आश्चर्य सी दिखाई देती है, कोई इसको आश्चर्य सी कहता है, कोई इसकी बात सुनकर आश्चर्य मानता है और कोई इसका हाल सुनकर भी इसको नहीं जानता।

क्योंकि,

अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि॥

अ० ५ श्लो० २५

यह ऐसी है कि इन्द्रियोंसे नहीं जानी जा सकती, विचारमें नहीं आ सकती और बिना विकारके है। आत्माको ऐसा जानकर इसके लिये शोक करना तुझे उचित नहीं है।

इतना ही नहीं बल्कि,

देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

अ० २ श्लो० ३०

हे अर्जुन! सबके शरीरमें जो आत्मा है वह आत्मा किसी तरह किसी दिन मारी नहीं जा सकती, इसलिये किसी जीवका शोक करना उचित नहीं है।

बन्धुओ! यह सब कहकर महात्मा श्रीकृष्ण भगवान हमको यह समझाते हैं कि मौतका अफसोस न करना चाहिये और कर्तव्य पूरा करते हुए मौत हो तो उससे नहीं डरना; क्योंकि देहका नाश होता है कुछ आत्माका नाश नहीं होता। देह जड़ है और आत्मा चैतन्य रूप है इसलिये काल आने पर दैव इच्छासे देहका नाश हो तो उससे आत्माका कुछ नहीं बिगड़ता; बल्कि आत्माको उलटे पुराने शरीरके बदले उसके अनुकूल नया शरीर मिलता है। इससे वह और अच्छी जगह जाकर अधिक सुबीतेसे अपनी उन्नति कर सकती है। इसलिये मरनेसे अफसोस न करना। इसके बाद दूसरी बात यह समझायी कि आत्मा अमर है और निर्विकार है। वह कर्ता या भोक्ता नहीं है, न किसीको मारती है और न किसीसे मरती है। इसके सिवा वह ऐसी आश्चर्य जनक है कि उसका स्वरूप सबकी समझमें नहीं आ सकता; इसलिये इसके मरनेका डर न रखना और मौतका अफसोस न करना। इस विषयको ऐसी सुन्दर रीतिसे, ऐसे साफ शब्दोंमें और गहरे अर्थमें समझाया है कि जगतके और किसी धर्ममें आत्माके स्वरूपके बारेमें ऐसा खुलासा नहीं मिलता। ऐसे उत्तम धर्ममें हमारा जन्म हुआ है तो भी अगर हम उत्तम सिद्धान्तोंसे लाभ न उठावें और

सिर पर कफनी बांधकर बापके बापके लिये रोया करें तो इससे बढ़कर मूर्खता और क्या है? इसलिये अब हमें अपने मनको मजबूत करना चाहिये और ईश्वरसे ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि हममें अपने धर्मके ऐसे महान सिद्धान्तोंको पालनेका बल आवे। इसके बदले सिर पर हाथ धर कर ऊं ऊं करनेमें और सिसकनेमें ही हम रह जाते हैं। यह कितने अफसोसकी बात है जरा विचार तो कीजिये। अगर यह विचार करें तो तुरंत ही जान पड़े कि कुदरती तौर पर मौत हो या कर्तव्य पालते समय मौत हो तो उसके लिये जरा भी अफसोस न करना चाहिये। क्योंकि यह प्रभुका हुकम है। इस विषयको और अच्छी तरह समझानेकी प्रभुकी इच्छा है; क्योंकि वह यह समझते हैं कि बहुत आदमी आत्माका यह निर्विकारपन और अमरपन समझ नहीं सकेंगे। इससे उनको समझानेके लिये एक नयी युक्तिसे जुदी रीति पर वह कहते हैं—

जो जन्मा है वह मरेगा ही; इसलिये मौतका अफसोस न करना चाहिये।

अथ चैनं नित्यजातं नित्यं वा मन्यसे मृतम्।
तथापि त्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि॥

अ० २ श्लो० २६

हे अर्जुन! अगर तू यह समझता हो कि शरीरके जन्मके साथ बारंबार नयी नयी आत्मा जन्म लेती है, और शरीरके मरनेके साथ वह आत्मा भी मर जाती है तो भी उसका शोक करना तुझे उचित नहीं है।

क्योंकि,

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

अ० २ श्लो० २७

जो जन्मता है वह जरूर मरता है और जो मरता है वह जरूर फिरसे जन्म लेता है; इसलिये जिस बातको कोई रोक नहीं सकता उसका अफसोस करना तुझे उचित नहीं है।

इतना ही नहीं बल्कि,

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत।
अव्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥

अ० २ श्लो० २८

हे अर्जुन ! इस जगतके सब जीव तथा सब वस्तुएं उत्पन्न होनेसे पहले-कहां थीं यह कोई नहीं जानता-और नष्ट होनेके बाद कहां जायंगी यह भी कोई नहीं जानता; सिर्फ जन्म और मरणके बीचकी अवस्थामें वे दिखाई देती हैं। तब इस विषयमें अफसोस काहे का ?

यह श्लोक कहकर प्रभु यह समझाते हैं कि जो आत्मा तथा जो शरीर वारंवार जन्म ले और वारंवार मरे उसका अफसोस क्यों किया जाय ? क्योंकि जन्म लेना और मरना एक महानियम है। यह नियम किसीसे पलट नहो सकता। इस विषयमें मनुष्य पराधीन है। इसलिये जिस विषयमें लाख उपाय करने पर भी अपना वश नहीं चलता उसके लिये अफसोस करना चतुर आदमियोंका काम नहीं है। दूसरे प्रभु यह कहते हैं कि इस जगतके सब जीव तथा सब वस्तुएं उत्पन्न होनेसे पहले कहाँ थीं यह कोई नहीं जानता और नाश होनेके बाद कहाँ जायंगी यह भी कोई नहीं जानता, सिर्फ

जन्म और मरणके बीचकी हालतमें थोड़े समय तक दिखाई देती हैं, इसलिये इस विषयमें भी हम पराधीन हैं तथा बिलकुल अज्ञान हैं और इसमें ऐसी कोई वस्तु नहीं है जिससे अपना कल्याण हो। तब जिस विषयमें हम अज्ञान हैं, पराधीन हैं और जिससे अपना कुछ भला नहीं होनेका उस वस्तु पर आसक्ति क्यों रखी जाय और ऐसी बातोंके लिये अफसोस किस लिये किया जाय?

धार्मिक कर्तव्य पालन करते हुए मरना पड़े तो उससे स्वर्ग मिलता है।

इतना समझाने पर भी बहुत आदमियोंका मोह नहीं छूट सकता और अफसोस नहीं मिटता। ऐसोंके मरनेका भय तथा मौतका अफसोस छुड़ानेके लिये और एक नयी युक्तिसे बहुत आगे बढ़कर अर्जुनसे प्रभु कहते हैं—

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते॥

अ० २ श्लो ३१

और तू अपना धर्म विचार तो भी तुझे लड़नेसे डर जाना उचित नहीं है, क्योंकि धर्मके लिये लड़ना पड़े तो उससे कल्याण होता है; इतना ही नहीं बल्कि बहादुर आदमियोंके लिये धर्मयुद्धसे बढ़कर कल्याणका दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। मतलब यह कि धर्मयुद्ध करनेसे ही सबसे अधिक कल्याण हो सकता है। इसके सिवा अपना कल्याण करनेके लिये जगतमें जितने तरहके साधन हैं उन सबसे धर्मके लिये युद्ध करना मोक्ष पानेका श्रेष्ठ साधन है।

इतना ही नहीं, इससे आगे चलकर प्रभु कहते हैं कि—

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभंते युद्धमीदृशम् ॥

अ० २ श्लो० ३२

हे अर्जुन ! बिना मिहनत किये ईश्वर-इच्छासे आपसे आप आया हुआ इस प्रकारका युद्ध भाग्यशाली क्षत्रियोंको यानी जो बहादुर होते हैं उन्हींको मिलता है; क्योंकि इस प्रकारके धर्म्म युद्धसे स्वर्गके द्वार खुल जाते हैं।

इसके सिवा—

हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम् ।
तस्मादुत्तिष्ठ कौंतेय युद्धाय कृतनिश्चयः ॥

अ० २ श्लो ३७

अगर तू लड़ाईमें मारा जायगा तो तुझे स्वर्ग मिलेगा और जीतेगा तो तुझे पृथ्वीका राज्य मिलेगा। इसलिये हे अर्जुन ! दृढ़ निश्चय करके युद्ध करनेके लिये उठ।

भाइयो और बहनो ! देखा ? इसमें मौतसे डरने या मौतका अफसोस करनेकी बात कहाँ रही ? इसके बदले अपनी जिन्दगीका कर्त्तव्य पूरा करनेके लिये, अपना धर्म्म पालनेके लिये, अपना हक हासिल करनेके लिये, अपने देशके कल्याणके लिये और अपनी आत्माके कल्याणके लिये जरूरत पड़े तो अपना प्राण तक देनेको भगवान कहते हैं और सो भी ऊपर ही ऊपर नहीं, ढीलम-ढीलम नहीं, पोलमपोल नहीं, अछुता पछुता कर नहीं और चतुराई या पंडिताई दिखानेके लिये नहीं, बल्कि हर श्लोकमें बहुत जोर देकर कहते हैं कि दैव इच्छासे अनायास आ मिले हुए धर्म्मयुद्धके ऐसा कल्याणका और कोई साधन नहीं है। इसके सिवा धर्म्मयुद्ध स्वर्गके खुले हुए दरवाजेके समान है और वह भाग्यशालियोंको ही मिलता है।

धर्मयुद्धमें अगर मर जायगा तो स्वर्ग जायगा और जीतेगा तो इस दुनियामें सुख भोगेगा। मतलब यह कि तेरे दोनों हाथ लड्डू है। इसलिये हे अर्जुन! दृढ़मन होकर युद्ध करनेके लिये उठ। अब बताइये कि इसमें मौतका डर कहाँ है? या मौतका अफसोस कहाँ है? कहिये कि नहीं है। शास्त्रका ऐसा खासा हुक्म होते हुए भी हम मौतसे डरा करते हैं और मरे हुओंके लिये अफसोस किया करते हैं। परन्तु ऐसा करना कितनी बड़ी नालायकी है, यह हमारा कितना बड़ा अज्ञान है, यह धर्म्म पालनेमें हमारी कितनी बड़ी मनहूसी है, और यह प्रभुसे कितनी बड़ी विमुखता है तथा यह प्रभुका कितना बड़ा अपमान है जरा विचार तो कीजिये। ऐसा महापाप न होने देनेके लिये स्वधर्म्म पालने तथा अपना फर्ज अदा करनेमें अगर कभी मौतके सामने जाना पड़े तो मौतसे न डरना और काल आने पर कुदरती मौतसे अपने सगे सम्बन्धी मर जायँ तो इसका अफसोस न करना।

भगवान कहते हैं कि धीरज रखकर दुःख सह लेना चाहिये।

मौतका अफसोस न करनेके लिये तथा मौतका डर न रखनेके लिये इस प्रकार अनेक रीतियोंसे, जुदी जुदी युक्तियोंसे प्रभु समझाते हैं तो भी उनको ऐसा जंचता है कि इतना खुलासा कर देने पर भी आदमी मरनेका डर रखे बिना नहीं रहेंगे और मौतका अफसोस किये बिना नहीं रहेंगे, इससे फिर वह एक नयी ही युक्तिसे कहते हैं कि—

मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥
अ० २. श्लो १४

'हे अर्जुन! इन्द्रियोंका विषयोंसे सम्बन्ध होने पर अर्थात् इन्द्रियोंके विषय भोगने पर सर्द गर्म आदि जो असर होता है वह असर सुख तथा दुःख देनेवाला है वह भोग तथा उससे होनेवाले सुख दुःख आने जानेवाले स्वभावके हैं तथा थोड़ी देर रहनेवाले हैं। इसलिये हे अर्जुन! तू तितिक्षा सहन कर अर्थात् सब तरहके दुःखोंको उनका सामना किये बिना, चिन्ता किये बिना और अफसोस किये बिना सह ले।

यह श्लोक कहकर प्रभु समझाते हैं कि सुख और दुःख किसी चीजके धर्म्म नहीं हैं और आत्माके धर्म्म भी नहीं हैं; परन्तु अनुकूल या प्रतिकूल संयोगोंके अनुसार इन्द्रियों और विषयोंका सम्बन्ध होनेसे सुख दुःख पैदा होते हैं और वे थोड़ी ही देर रहते हैं, उनमें फेर बदल होता है, अर्थात् आज जिस वस्तुमें सुख मालूम देता है वही वस्तु कल दुःखरूप हो जाती है और आज जिस वस्तुसे दुःख होता है वही वस्तु किसी समय सुखरूप हो जाती है। इस प्रकार देखिये तो सुख और दुःख कुछ कुदरती चीजें नहीं है इससे उनका आत्मासे कुछ सम्बन्ध नहीं है; बल्कि सुखदुःखका सम्बन्ध अन्तःकरणकी वृत्तियोंसे है, रुचिसे है, मनसे है; इन्द्रियोंसे है और इन्द्रियोंसे विषयोंका जो सम्बन्ध होता है उससे है। इसके सिवा इस दुनियामें जाड़ा आने पर सर्दी तो लगेगी ही, गर्मी आने पर गर्मी तो होगी ही और बरसात आने पर मेघका असुबीता तो भोगना ही पड़ेगा, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। और यह सब हमें न रुचे तो इसके लिये सृष्टिकी रचना नहीं बदल जाने की। इसलिये जब तक अपना शरीर है तब तक किसी न किसी तरहका सुख या दुःख तो होगा ही; क्योंकि इसको रोकनेका आदमीके पास कोई उपाय नहीं है।

बेशक बहुत तरहके दुःख आदमी अपने ज्ञानसे घटा सकते हैं तोभी कुछ दुःख तो रहेंगे ही। इसलिये प्रभु कहते हैं कि सुख दुःख भोगे बिना नहीं चलने का। तब कायर होकर लाचार होकर, अफसोस करके, रोते रोते और हाय-हाय करके दुःख भोगना नालायकी है; परन्तु हिम्मतसे मर्दमीके साथ वस्तुको तथा दशाको समझकर वस्तुसे तथा दशासे होनेवाले दुःखोंको धीरजसे सह लेना बड़ी खूबीकी बात है। इससे बड़ा कल्याण होता है। इसलिये प्रभु कहते हैं कि

दुःख तथा सुखमें समभाव रखनेसे ही मोक्ष मिल सकता है।

यं हि न व्यथयंत्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥
अ० २ श्लो० १५

हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! विषयों तथा इन्द्रियोंके संयोगसे उपजनेवाले सुख तथा दुःख धीर पुरुषको नुकसान नहीं पहुँचा सकते, अर्थात् जो सुखसे प्रसन्न नहीं हो जाते और जो दुःखसे अफसोस नहीं करते बल्कि सुखदुःखमें जो समानवृत्ति रखते हैं वे ही मोक्ष पा सकते हैं।

बन्धुओ! सुख दुःखमें समानवृत्ति रखकर-धीरजसे उन्हें भोग लेनेमें इतनी बड़ी खूबी है। इसलिये मौत उन्नति है। परन्तु मौतके इस असली स्वरूपको न समझनेसे अगर हमें कभी उसका अफसोस हो तो भी मौत कुदरती है, मौत सृष्टि-का नियम है, मौत देहका धर्म है और मौत आत्माकी उन्नति

है यह समझकर हमें धीरजसे मौतका दुःख सहना चाहिये और मौतका अफसोस न करना चाहिये।

प्राचीन ऋषि मरनेका अफसोस नहीं करते थे।

यह न समझना कि ये सिर्फ फिलासफीकी बातें हैं अपने आचरणमें नहीं आ सकतीं; बल्कि हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियोंने तथा पहलेके क्षत्रियोंने अपने चरित्रसे हजारों बार हजारों जगह लाखों आदमियोंको दिखा दिया है कि हम मौतसे जरा भी नहीं डरते और न मौतका तनिक अफसोस करते। जिन ऋषियोंने शास्त्रोंमें यह लिखा है कि मरे हुए आदमीके पीछे जो लोग रोते तथा अफसोस करते हैं और मारपीटा तथा आँसू बहाते हैं या छाती और सिर धुनते हैं उनका मारपीटा तथा आँसू मरे हुए आदमीको खाना पड़ता है और छाती तथा सिर कूटनेकी मार मरे हुएको खानी पड़ती है। ऐसा लिखनेवाले तथा इस सिद्धान्तको समझनेवाले वे ऋषि क्या मौतसे डरते रहे होंगे? कभी नहीं। वे तो यही समझते थे कि मौतका अफसोस करना प्रभुका सामना करनेके बराबर है; मौतका अफसोस करना आत्माकी उन्नतिमें बाधा देनेके बराबर है; मौतका अफसोस करना बहुत बड़ी अज्ञानता है और मौतका अफसोस करना अधर्म करनेके बराबर है। दुनियाके सब धर्म्म यह कहते हैं कि मौतका अफसोस न करना चाहिये। तिस पर भी यह हुक्म न मानकर जो आदमी मौतका अफसोस करे वह ईश्वरके सामने अधर्म्मी गिना जाय तो आश्चर्य्य ही क्या है? महा ज्ञानी पवित्र ऋषि मौतका अफसोस करके ऐसे अधर्म्मी क्यों बनते? नहीं बनते थे। इसलिये याद रखना कि पहलेका कोई ब्राह्मण मौतसे

नहीं डरता था या न मौतका अफसोस करता था। हम भी उन्हींके बालक हैं, उन्हींके वंशमें अर्थात् ब्रह्माके वंशमें ही सब उत्पन्न हुए हैं, इसलिये हमें भी मौतका तनिक डर नहीं रखना चाहिये और कभी मौतका अफसोस नहीं करना चाहिये।

पहलेकी बहादुर स्त्रियोंका उपदेश।

यह भी समझ लेना कि जैसे पहलेके ब्राह्मण मरे हुए सगे सम्बन्धियोंका अफसोस नहीं करते थे वैसे ही पहलेके क्षत्रिय भी मौतका अफसोस नहीं करते थे, बल्कि अपने देशके कल्याणके लिये, अपने धर्मकी रक्षाके लिये, अपने कुलकी आबरूके लिये, अपने वाजिब हकके लिये, अपनी बहादुरी दिखानेके लिये, अपना जन्म सार्थक करनेके लिये और अपनी आत्माके कल्याणके लिये केसरिया बाना पहनकर हर हर महादेव कहते हुए लड़ाईके मैदानमें कूद पड़ते थे और शत्रुके लहूसे अपनी तलवारकी प्यास बुझाते थे तथा खुश होकर, दौड़ दौड़कर, सामने आ आकर अपनेछातीमें दुश्मनोंके भाले सहते और देशके लिये प्राण देते थे। यह बात किसीसे छिपी नहीं है, सब लोग जानते हैं। अगर ये बहादुर लोग मौतसे डरते होते तो क्या इस प्रकार अपना प्राण दे सकते? अगर इन वीर पुरुषोंकी बहादुर स्त्रियां मौतका अफसोस करती होतीं तो क्या माताए अपने पुत्रोंको, बहनें अपने भाइयोंको, पुत्रियां अपने पिताको और पत्नियां अपने पतियोंको ऐसा कह सकतीं कि जाओ! जरूर जाओ! विजय कर आओ या सिर दे आओ! दुश्मनोंको पीठ मत दिखाना। माताएं कहतीं कि हमारा जो दूध पिया है उसे सार्थक करना। स्त्रियां कहतीं कि हमारे मोहमें पड़कर कर्तव्य मत भूलना, हम तुम्हारी

सिर गोदमें लेकर तुरत ही तुम्हारे पीछे आवेंगी। बहनें और लड़कियां कहतीं कि हमारी आबरूकी फिकर मत करना हम भी तुम्हारे ही कुलमें जन्मी हैं और हमारी नसोंमें भी तुम्हारा ही लहू बहता है, इसलिये हमारी फिकर मत करना; हमें अपना रास्ता लेना आता है; तो भी अगर तुम्हें कुछ शंका होती हो तो खुशीसे हमें मार डालो और फिर निर्भय होकर लड़ाईके मैदानमें जाओ। ऐसा कहनेवाली और उसके अनुसार कर दिखानेवाली स्त्रियां क्या मौतसे डरती रही होंगी? कभी नहीं। याद रहे कि जब हमारे देशमें इस प्रकारकी मौतका डर न रखनेवाली तथा मौतका अफसोस न करनेवाली लाखों और करोड़ों स्त्रियां थीं तभी हमारा देश उन्नत था, तभी हमारा देश स्वतंत्र था, तभी हमारा देश बहादुर था और तभी हमारा देश सुखी था। परन्तु जबसे हम लोगोंमें मरनेका डर और मरनेका अफसोस समाया तभीसे हमारा सत्यानाश हो रहा है। इसलिये अगर हमें अपनी उन्नति करनी हो, अपने देशका भला करना हो, अपने धर्मको उसके सत्यस्वरूपमें पालना हो और अपनी अगली पीढ़ीको उत्तम धन सौंप जाना हो तो हमें मौतके भयसे और मौतके अफसोससे निकलना चाहिये।

मौतका अफसोस करना ईश्वरसे लड़ाई करनेके बराबर है।

मौतका अफसोस न करनेके लिये एक महात्मा कहते थे कि किसी जिज्ञासुका लड़का मर गया जिससे उसको बहुत अफसोस होने लगा। वह आदमी बहुत अच्छा और समझदार था तो भी बच्चेका मोह उसे बहुत सताता था जिससे वह अफसोस करता था। यह देखकर उसको शान्त करनेके लिये

तथा उसका अफसोस मिटानेके लिये उसकी स्थिर स्वभाव वाली भक्तिमती स्त्रीने कहा कि—हमारे महल्लेमें एक स्त्री बड़ी झगड़ालू है और नाहक, झूठमूठ झगड़ा करती है। आज वह मुझसे भी लड़ पड़ी। उस आदमीने पूछा कि तुझसे क्यों लड़ पड़ी? उसकी स्त्रीने जवाब दिया कि मेरे पाससे वह स्त्री एक चीज मंगनी मांग ले गयी; जब मैं उसे उससे वापस लेने गयी तो वह मुझसे लड़ बैठी। यह सुनकर पतिने कहा कि अरे! तब तो वह बड़ी ही खराब स्त्री है! मंगनी चीज मांग ले जाय और फिर उसे लौटानेके समय झगड़ा करे? ऐसा तो कहीं नहीं होता। च. .च...च . वह तो बड़ी खराब है! वह कौन है जरा मुझे बता तो सही। तब उसकी पत्नीने कहा कि पहले अपने घरकी बात विचारो, पीछे उस स्त्रीकी बात सुनना। हम लोग मनमें बड़ी इच्छा रखते थे कि लड़का हो; इससे भगवानने कृपा करके लड़का दिया और जब उसकी मरजी हुई तब उसने उसे वापस ले लिया। इसमें तुम इतना अफसोस क्यों करते हो? वह परायी थाती थी कुछ अपनी चीज तो थी नहीं। अगर थातीवाला अपनी थाती ले ले तो इसमें अफसोस किस बात का? इतने दिन उसने हमारे पास अपनी वह थाती रहने दी इसके लिये हमें उसका उपकार मानना चाहिये; उसके बदले हम अफसोस करें तो यह उससे लड़ना नहीं तो क्या है? और ऐसा करना तुम्हारे जैसे बुद्धिमान आदमीको शोभता है? यह सुनकर वह भला मानस शरमा गया और स्त्रीसे बोला—शाबाश! तूने मुझे बड़ी खूबीसे समझाया है। अब मैं अफसोस नहीं करूंगा। इसके बाद उसने अफसोस करना छोड़ दिया। भाइयो और बहनो! हमें भी ऐसे दृष्टान्त देखकर तथा सुनकर अपने जीवको स्थिर

करना सीखना चाहिये और जैसे बने वैसे मनको मजबूत रखकर मरनेका डर और सगे सम्बन्धियोंकी मौतका अफसोस घटाना चाहिये।

जैसे मौतके दुःखका विचार करते हैं वैसे मौतके लाभका विचार भी करना चाहिये।

याद रखना कि हमें जिन जिन पर स्नेहप्रीति है वे सब कुछ एक ही दिन या एक ही घड़ीमें, साथ ही नहीं मर जाते। बल्कि सबको आगे पीछे ही मरना पड़ता है। कोई पहले मरता है कोई पीछे। परन्तु लोग मरते हैं आगे पीछे ही। इसलिये हमारे स्नेही हमसे पहले मर जायँ तो हमें स्वभावतः कुछ अफसोस होता है। तो भी हमें अपने मनको खींचना चाहिये और धीरज रखना सीखना चाहिये; क्योंकि अफसोस करनेसे मरनेवालेका कल्याण नहीं होता और हमारे हकमें भी कुछ अच्छा नहीं होता, बल्कि दोनोंको बहुत नुकसान पहुँचता है। इसलिये हमें जैसे बने वैसे अफसोसको दूर करना चाहिये। और जैसे हम अपने स्वार्थके लिये मौतसे होनेवाली खराबियोंको ही विचारते हैं और अफसोस बढ़ाते हैं वैसे अफसोसको दूर करनेके लिये मौतसे होनेवाले फायदेको भी विचारना चाहिये। अगर फायदेका विचार करें तो तुरत ही हमें जान पड़े कि मौत हमें भयंकर लगती है यह बात सच है तो भी वह बहुत आदमियोंको बहुत तरहके दुःखसे छुड़ाती है। इसके सिवा मौत उन्नति है, इसलिये उसकी शरण लेना धर्म्म है। और जो धर्म्म है उसमें अफसोस करना पाप है। इसलिये हमें मौतका अफसोस न करना चाहिये।

स्वाभाविक मृत्युकी खूबी

शास्त्रके हुक्मसे, महात्माओंके उपदेशसे, अपने अन्तःकरण-की आवाजसे, अपनी बुद्धिसे और इर्द गिर्दके संयोगों तथा अनुभवसे हम जानते हैं कि हमें मौतका अफसोस न करना चाहिये। तो भी आजकलके जमानेमें सबको मौतका थोड़ा बहुत अफसोस हो जाता है। इसका कारण यही है कि हम सब पर ऐसा असर पड़ गया है और हमारे मनमें यह-बात धस गयी है कि मौतका दुःख बहुत ही बड़ा और भयंकर है। इससे हम सब मौतके दुःखसे डरा करते हैं और उस डरके कारण हमें मौतसे भय लगता है तथा मौतका अफसोस होता है। परन्तु स्वाभाविक मृत्यु दुःख है ऐसा विचार भूलसे भरा हुआ है। क्योंकि महात्मा लोग कहते हैं कि जैसे माकी गोदमें खेलते खेलते बच्चा चुपचाप सो-जाता है और उसमें उसको किसी तरहका दुःख नहीं होता उल्टे एक तरहका आनन्द होता है वैसे ही जो स्वाभाविक मृत्यु है, उसमें, मरनेवालेको किसी तरहका दुःख नहीं होता; उल्टी सांस नहीं चलती, ज्वर नहीं आता, नाड़ी नहीं टूटती, जी व्याकुल नहीं होता, मनमें कुछ वेदना नहीं होती, चेहरेका रंग नहीं बदलता और किसी तरह-के दुःखका ख्याल नहीं होता। बल्कि स्वाभाविक मृत्यु ऐसी होती है कि मानो मजेकी शांत मीठी नींद आ गयी हो। लेकिन आज कलके जमानेमें हम इस किसमकी मौत नहीं देखते। इसके बदले बहुत कष्टसे होनेवाली मौत ही हम देखते हैं। जैसे; मरते समय किसीको सन्निपात होता है, किसीको झाड़ा पेशाब हो जाता है, किसीका मुंह मुर्दे सा बन जाता है, कोई बिलकुल अशक्त हो जाता है, किसीकी नाड़ी टूटती है,

किसीका जी घबराता है, किसीको कुछ भी होश नहीं रहता और किसीकी नाक घर्र घर्र बोलती है जिसको घरनाका कहते हैं। ऐसे ऐसे अनेक प्रकारके दुःखोंके चिन्ह लोगोंके मरते समय हम देखते हैं। इससे हम यह समझते हैं कि मौतमें दुःख ही है और यह समझ कर हम मौतसे डरा करते हैं। पर याद रखना कि ऐसी जो मौत होती है वह मौत स्वाभाविक नहीं है बल्कि यह मौत तो हम खराब रीतिसे जिन्दगी बिताते हैं उसके फल स्वरूप है। ऐसी मौतके साथ स्वाभाविक मृत्युकी तुलना नहीं हो सकती।

स्वाभाविक मृत्यु न होनेका कारण।

याद रहे कि आज कलके जमानेमें हम लोगोंमें महादुःख भोगते भोगते और दुःखमें रोते झींकने जैसी मौत होती है वैसी मृत्यु पहले जमानेमें पवित्र ऋषियोंमें नहीं होती थी। बल्कि वे माकी गोदमें जैसे बच्चा शान्तिसे सो जाता है वैसी आनन्ददायक रीतिसे स्वाभाविक मृत्युसे मरते थे और सो भी अचानक नहीं बल्कि पूरी सावधानीसे, मनको ठिकाने रखकर, समझ बूझकर, परदेश जानेवालेकी तरह सबको सीख सलाह देकर, शान्तिसे भगवानका नाम जपते जपते और ध्यान करते करते मरते थे। इससे उनको अपनी मौत पुराना कपड़ा छोड़कर नया कपड़ा पहननेके समान लगती थी। परन्तु इसके बदले आज कल जो हम लोगोंको मौत दुःखरूप हो गयी है उसका कारण यही है कि जैसा शान्तिदायक, उच्च उद्देशयुक्त और पवित्र स्वाभाविक जीवन बिताना चाहिये वैसा जीवन हम नहीं बिताते, अपना चरित्र वैसा नहीं रखते, बल्कि बनावटी जीवन बिताते हैं। जैसे,

जिन्दगीके बे जरूरतकी चाय, काफी, तमाखू, पान सुपारी, गांजा भांग, अफीम शराब आदि चीजें खाते पीते हैं; जिन्दगी के बेजरूरतके तेल, मिर्च, अंचार, हींग आदि चटक मटककी चीजें तथा मसाले बेकारण, सिर्फ स्वादके लिये ही हमेशा ज्यादा ज्यादा बर्तते हैं और जिन चीजोंको जब जरूरत पड़े तभी, कभी कभी दवाके तौर पर बर्तना चाहिये उन चीजोंको भी हम रोजकी खुराकके तौर पर लेते हैं। ताजी हवामें रहकर, सादी खुराक लेकर, खुद मिहनत करके तथा स्वतंत्र जिन्दगी बिताकर अपने बाहुबलकी कमायी पवित्र रोटी खानी चाहिये; इसके बदले हम अपने रोजगार-धन्धेमें घालमेल, अपने व्यवहारमें गपड़शपड़, अपने शिष्टाचारमें पोल और अपने आचरणमें अधूरापन रखते हैं और जो धर्म आज कल हम पालते हैं वह धर्म हमें अनन्ततामें उड़नेके पंख देनेके बदले हमारे हाथपैर बांध रखनेवाला है तथा भय, चिन्ता, अफसोस, मानसिक विकार और पराधीनता—जो उत्तम जीवनमें बिलकुल न होनी चाहिये—हमारे जीवनकी तहतहमें लिपटी हुई है। तब हम स्वाभाविक मृत्युका आनन्द क्योंकर पा सकते हैं? नहीं पा सकते। और न पा सकें तो इसमें कुछ आश्चर्य नहीं है। क्योंकि ऊपर लिखे अनुसार हम नकली जिन्दगीमें जीते हैं इससे दुःख भरी नकली मौतसे मरते हैं। अगर अपनी मौत सुधारनी हो तो कुदरती मौतसे मरनेके लिये हमें कुदरती जीवनमें जीना सीखना चाहिये और बनावटी बंधन, बनावटी पोशाक, बनावटी खुराक तथा बनावटी रीतिसे बचना चाहिये और पवित्र सादी जिन्दगी बिताना सीखना चाहिये। अगर ऐसा कर सकें तो मौतका डर और मौतका अफसोस आपसे आप बहुत कुछ घट जाय।

अतएव मौतके भयसे बचनेके लिये सादा और पवित्र जीवन बितानेका यत्न कीजिये।

हम जीनेकी परवा करते हैं परन्तु मौत सुधारनेकी परवा नहीं करते, इससे हमें मौतका अफसोस होता है।

हमको जो मौतका बहुत अफसोस होता है उसका यह भी एक कारण है कि हम जीनेकी बड़ी प्रबल इच्छा रखते हैं, इतनी प्रबल इच्छा रखते हैं कि वह हमारी बन्धनरूप हो जाती है और सो भी कुछ ऊंचे उद्देशोंके लिये नहीं बल्कि सिर्फ छोटे छोटे मौज शौक पूरा करनेके लिये हम अधिक जीनेकी इच्छा रखते हैं। प्रकृतिके नियम पाले बिना प्रकृतिका सामना करके हम अधिक जीनेकी इच्छा रखते हैं और इस जिन्दगीमें इन्द्रियोंके सुख भोगनेके लिये ही दौड़धूप किया करते हैं। परन्तु जो सच्चा सुख है, जो अनन्तकाल तक टिकनेवाला सुख है और जो क्षण ही क्षण बढ़ता जानेवाला सुख है उस आत्म-सुखको पानेकी परवा हम नहीं करते; इससे हम मौतका मूल्य नहीं समझते और इसीसे हम जीनेके लिये जितनी चेष्टा करते हैं उसका हजारवां भाग भी हम अपनी मौत सुधारनेकी तय्यारी नहीं करते जिससे हमें मौतका अधिक अफसोस होता है। परन्तु जैसे जीनेकी इच्छाको स्वाभाविक समझ कर हम अधिक जीनेके लिये मिहनत करते हैं वैसे ही यह समझ कर कि, मौत भी स्वाभाविक है और वह किसीको छोड़नेवाली नहीं, अपनी मौत सुधारनेके लिये अगर थोड़ी भी सावधानी रखें तो हमें मौतका आजकलके इतना भय न लगे। इसलिये अगर अपनी मौतका भय और अफसोस घटाना हो तो जैसे

हमें अधिक जीनेकी चेष्टा करते हैं वैसे हमें मौत सुधारनेकी भी कुछ कोशिश करनी चाहिये। यह कोशिश जितनी ही अच्छी रीतिसे होती है उतना ही, मौतका ,भय अफसोस घटता है। याद रखना, कि जगतकी आसक्तिमें और इन्द्रियोंके सुखमें बहुत रचपच जानेसे मौतका दुःख अधिक होता है और उस आसक्तिको घटाकर भगवद् इच्छाके अधीन हो पहलेसे ही मौत सुधारनेका ख्याल रखनेसे मौतका भय और अफसोस बहुत कुछ घटाया जा सकता है। इसलिये जहाँ तक बने इन नियमोंको पालनेकी भी खास जरूरत है।

जो अपना कर्तव्य पूरा करके मरते हैं उनको मौतका अफसोस नहीं होता।

हमें जो मौतका अफसोस होता है उसका मुख्य कारण यह है कि हमारी मौत अशक्त, निराधार और दुखी हालतमें अपाहिजोंकी तरह खाटपर पड़े पड़े कष्ट झेलते और चीखते कराहते तथा आह ओह करते होती है। अगर उपयोगी रीतिसे हमारी मौत हो तो हमें मौतका अफसोस न हो। क्योंकि उपयोगी रीतिसे और परमार्थके निमित्त मरनेके लिये ही हमारी जिन्दगी है। इसलिये जो महात्मा धर्मके लिये मरते हैं, जो बहादुर पुरुष अपने देशके कल्याणके लिये मरते हैं, जो सती स्त्रियां पतिप्रेमके लिये मरती हैं, जो भलेमानस अपने भाइयोंके सुखके लिये अपना जीवन त्याग करते हैं, जो बुद्धिमान मनुष्य परमार्थके काम करनेमें अपनी जिन्दगी रगड़ डालते हैं, जो आविष्कारक नयी खोज करनेके पीछे दिन रात अपना मगज़ लड़ाया करते हैं, जो देशहितैषी अपने देशके कल्याण की योजनाओंमें मस्त होकर लगे रहते हैं और जो हरिजन

परमात्माके साथ अपना तार जोड़ रखते हैं और उसीमें लीन हो जाते हैं उनको मौतका भय नहीं लगता। और यों ही किसी ढङ्गसे उपयोगी जिन्दगी बिताकर जगतकी सेवा करते करते जो मनुष्य मरते हैं उनको मौतका डर नही लगता; बल्कि उनको अन्त समय अपने हृदयमें एक प्रकारका बहुत बड़ा आनन्द यह होता है कि हम अपनी जिन्दगी सार्थक करके मरते हैं, हम अपनी शक्तिके अनुसार जगतमें कुछ काम करके मरते हैं और हम अपने भाइयोंकी तथा अपने ईश्वरकी सेवा करके मरते हैं; इसलिये हमको अपनी मौतमें भी आनन्द है। जिन आदमियोंको अपने अन्तःकरणसे ऐसा मालूम होता है उनको मौतका डर नहीं होता। पर जो आदमी अपनी जिन्दगीको जगतके उपयोगी न बनाकर अपने स्वार्थमें ही बिता देते हैं और मलिन विचारोंमें ही मनको रमाया करते हैं, किसी प्रकार अपनी आत्माकी या अपने भाईबन्दोंकी भलाई नहीं करते उन आदमियोंको मौत खास करके दुःखरूप हो जाती है। अगर मौतके दुःखसे छूटना हो मौतके भयसे छूटना हो और मौतके अफसोससे छूटना हो तो खूब अच्छी रीतिसे जिन्दगी बिताना और किसी न किसीके उपयोगी होना सीखिये, किसी न किसीके उपयोगी होना सीखिये।

मौतका भय न रखने और उसका अफसोस न करनेके विषयमें ईश्वरका हुक्म हमने इस पैड़ीमें जाना। तो भी अपने कमजोर मनके कारण हमसे मौतका अफसोस हो जाता है; इसलिये आठवीं पैडीमें मनको जीतनेके उपाय बताये जायंगे।
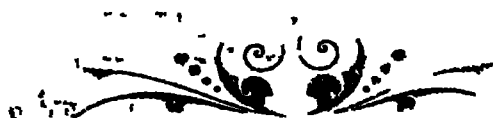
आठवीं पैड़ी ।

मनको जीतनेके उपाय ।

हमसे पाप हो जाता है इसका कारण क्या है ?

याद रखना कि हमारा मन वशमें नहीं रहता इसीसे पाप होता है; इसीसे हमें बार बार जन्म लेना तथा मरना पड़ता है और नरकमें जाना पड़ता है। पाप न होने देनेके लिये हमें अपने मनको जीतना चाहिये; क्योंकि मनको वशमें न रखनेसे ही पाप होता है। इसके बारेमें अर्जुनने भी कृष्ण भगवानसे पूछा है कि—

अथ केन प्रयुक्तोऽयं पापं चरति पूरुषः ।
अनिच्छन्नपि वार्ष्णेय बलादिव नियोजितः ॥

अ० ३ श्लो० ३६

हे वृष्णिकुलमें उत्पन्न श्रीकृष्ण ! पाप करनेकी इच्छा न होने पर भी मानो किसीके जोरसे जबरदस्ती खिंचकर आदमी पाप करते हैं, इस प्रकार आदमियोंको पापकी प्रेरणा करनेवाला कौन है ?

इसके उत्तरमें भगवान कहते हैं कि—

काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥

अ० ३ श्लो० ३७

मनुष्योंको पापमें खींच ले जानेवाली उनकी विषय भोगनेकी तृष्णा है। यह तृष्णा हृदयकी ऐसी गहराईमें है कि बाहरसे अच्छी तरह नहीं दिखाई देती। इसको काम कहते हैं। यह काम ही जब बाहर निकलता है तब क्रोध बन जाता है। यह काम रजोगुणसे पैदा होता है और ऐसा है कि कभी शान्त नहीं होता। इसके सिवा यह बड़ा खाऊ है इससे चाहे जितनी मुद्दत तक चाहे जितना भोग करनेको मिले तो भी इसकी तृप्ति नहीं होती। यह बड़े ही तेज स्वभावका महापापी है। इस कामको तू अपना शत्रु समझना।

काम माने मनुष्यकी इच्छाएँ, वासनाएँ, पूर्वके संस्कार, तृष्णा, आशा, आसक्ति, रागद्वेष, मोह, अज्ञान, स्वार्थ और इन्द्रियोंके विषय भोगनेकी लालसा। ये सब वस्तुएँ जिसमें आ जायँ उसका छोटा सा नाम काम है। इस कामके कारण मनुष्य पापकर्ममें प्रेरित होते हैं। इस कामका बल बहुत अधिक है, इससे यह ज्ञानको ढक देता है। इसके लिये प्रभुने भी कहा है कि

धूमेनाव्रियते वन्हिर्यथादर्शो मलेन च।
यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ॥

अ० ३ श्लो० ३८

जैसे धुआँ अग्निको ढक देता है, जैसे मैल आइनेको ढक देती है और जैसे झिल्ली गर्भको ढक देती है वैसे काम ज्ञानको ढक देता है।

इतना ही नहीं बल्कि,

आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा।
कामरूपेण कौंतेय दुष्पूरेणानलेन च ॥

अ० ३ श्लो० ३६

हे अर्जुन! यह काम अग्निकी तरह जला डालता है, वह किसीसे कभी पूरा नहीं होता और यह ज्ञानियोंका सदाका वैरी है। इस कामने ज्ञानको ढक दिया है।

क्योंकि

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥

अ० २ श्लो० ६२

जो जो विषय भोगनेका मन होता है उन विषयोंकी चिन्ता मनुष्य किया करता है। इस चिन्ताके कारण उन विषयोंको भोगनेकी उसे इच्छाएँ होती हैं; पर वे सब इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं इससे भोग करनेकी इच्छाओंसे क्रोध उत्पन्न होता है।

फिर

क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

अ० २ श्लो० ६३

क्रोधसे बहुत मोह उत्पन्न होता है और बहुत मोहसे याद रखनेकी शक्ति भ्रममें पड़ जाती है, इससे क्या अच्छा है और क्या बुरा है तथा यह काम करने लायक है कि नहीं इस विषयका होशहवास नहीं रहता; स्मरण शक्तिके भ्रममें पड़नेसे बुद्धिका नाश होता है और जिसकी बुद्धिका नाश होता है उस आदमीका ही नाश हो जाता है।

क्योंकि काम, क्रोध, लोभ आदि जो जो विकार तथा जोश हैं उन सबके बढ़ जानेसे शरीरमें एक प्रकारका बहुत कड़वा जहर उत्पन्न होता है। उस जहरमें गर्मी होती है इससे हृदय-

के कितने ही कोमल सद्गुण उस जहरकी आगमें जल जाते हैं। इसलिये प्रभु कहते हैं कि

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ॥

अ० १६ श्लो० २१

काम, क्रोध और लोभ ये तीन नरकके द्वार हैं और आत्माकी खराबी करनेवाले हैं। इसलिये इन तीनोंको छोड़ दे।

कामके रहनेका स्थान।

कामका परिणाम इतना खराब है, इसलिये हमें यह जानना चाहिये कि यह बलवान काम किस जगह रहता है। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

इन्द्रियाणि मनोबुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते।
एतैर्विमोहयत्येष ज्ञानमावृत्य देहिनम् ॥

अ० ३ श्लो० ४०

शरीरको चलानेवाली इन्द्रियाँ हैं उनमें यह काम रहता है, इन्द्रियोंसे ऊपर उनको चलानेवाला मन है उसमें भी यह काम रहता है और मनसे ऊँचे उस पर हुक्म चलानेवाली बुद्धि है उस बुद्धिमें भी काम रहता है। इस प्रकार इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि इन तीन जगहोंमें काम रहता है और वहाँसे विषयवासना उत्पन्न करता है। यह विषयवासना ज्ञानको दबा देती है और जीवको मोहमें डाल देती है।

इस प्रकार इन्द्रियोंमें, मनमें तथा बुद्धिमें काम रहता है। परन्तु इन्द्रियाँ मनके अधीन हैं और बुद्धि जब तक परिपक्व न हो तब तक वह भी मनके अधीन है। इसलिये इन तीनों विषयोंमें मन सबसे बलवान है और वह कामके रहनेका मुख्य स्थान है।

मनका स्वभाव।

इसलिये अब हमें यह जानना चाहिये कि मनका सभाव कैसा है। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें अर्जुन कहते हैं कि

योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन मधुसूदन ।
एतस्याहं न पश्यामि चञ्चलत्वात्स्थितिं स्थिराम् ॥
अ० ६ श्लो० ३३

हे प्रभु ! मनको समभावसे रखनेका जो योग तुमने कहा वह योग मुझे ऐसा नहीं दिखाई देता कि बहुत समय तक टिक सके क्योंकि मन बड़ा चंचल है।

और कहते हैं कि

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥
अ० ६ श्लो० ३४

हे कृष्ण ! मन बड़ा चंचल है, शरीर तथा इन्द्रियोंको हिला देनेवाला है, बलवान है और दृढ़ है। इसलिये जैसे वायुको रोकना बहुत कठिन है वैसे मनको रोकना भी बहुत ही कठिन है। यह मेरा विश्वास है।

मनकी चंचलताके कारण अकेले अर्जुन ही ऐसा नहीं कहते बल्कि श्रीकृष्ण भगवानने भी कहा है कि

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम् ।
अ० ६ श्लो० ३५

हे बाहुबलवाले अर्जुन ! मन बड़ी मिहनतसे पकड़े जाने लायक है और चंचल है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

इन्द्रियोंका बल।

इन्द्रियोंके बलके विषयमें भी प्रभु कहते हैं कि

यततो ह्यपि कौंतेय पुरुषस्य विपश्चितः।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरंति प्रसभं मनः॥

अ० २ श्लो० ६०

हे अर्जुन! जो चतुर आदमी यह समझते हैं कि अच्छा क्या है और बुरा क्या है तथा जो अपनी इन्द्रियोंको जीतनेके लिये मिहनत करते हैं उन आदमियोंके मनको भी बहुत वेगवाली इन्द्रियां जबरदस्ती विषयोंमें खींच ले जाती हैं।

हमने ऊपरकी बातोंसे इतना समझा कि कामके कारण पाप होता है। इसके बाद यह जाना कि पाप कितना बलवान है, यह भी जाना कि कामका परिणाम नरक है, यह भी जाना कि कामके रहनेके स्थान मन इन्द्रियाँ तथा बुद्धि हैं और यह भी जान लिया कि मनका स्वभाव कैसा चंचल तथा बलवान हैं। अब हमें कामके जीतनेका उपाय जानना चाहिये। यह उपाय जाननेसे हम कामको जीत सकते हैं और पापसे बच सकते हैं तथा अपनी आत्माका उद्धार कर सकते हैं। इसके लिये प्रभु कहते हैं—

कामको जीतनेका उपाय।

तस्मात्त्वमिंद्रियाण्यादौ नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं ज्ञानविज्ञाननाशनम्॥

अ० ३ श्लो० ४१

हे भरत कुलमें श्रेष्ठ अर्जुन! पहले तू अपनी इन्द्रियोंको वशमें कर, अपने मनको वशमें कर तथा अपनी बुद्धिको वशमें कर और फिर सुने हुए ज्ञानका तथा अनुभवमें आये हुए

ज्ञानका नाश करनेवाले कामको तू निश्चय मार डाल; क्योंकि यह काम ही पापका मूल है।

इस प्रकार प्रभु हमसे कहते हैं कि जब तुम इन्द्रियोंको जीतोगे तभी तुम्हारी वासनाएं अंकुशमें आ सकेंगी और वासनाओंके वशमें आने पर ही तुम आगे बढ़ सकोगे। क्योंकि जब तक मन वशमें न हो तब तक जीवकी बहुत ही बुरी हालत होती है। इसके लिये प्रभुने कहा है कि

बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्तेतात्मैव शत्रुवत्॥

अ० ६ श्लो० ६

जिसने आत्माके बलसे अपने मनको जीता है उसका मन उसकी आत्माका मित्र है और जिसने अपने मनको नहीं जीता उसका मन उसकी आत्मासे शत्रुका सा बर्ताव करता है।

जिसने अपने मनको जीता है उसीको सुख मिलता है।

जिसका मन अपनी आत्माके साथ शत्रुका सा बर्ताव करता है उसे सुख क्योंकर हो सकता है? नहीं हो सकता। इसके लिये प्रभुने कहा है कि

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभावयतः शान्तिरशांतस्य कुतः सुखम्॥

अ० २ श्लो० ६६

जिसने अपने मनको नहीं जीता है उसमें बुद्धि नहीं होती और भावना भी नहीं होती। और जिसमें भावना न हो उसको शान्ति नहीं मिलती और बिना शान्तिके मनुष्यको सुख कहाँ?

इस प्रकार मनको न जीतनेसे जीवको शान्ति नहीं मिलती; क्योंकि प्रभु कहते हैं कि

इन्द्रियाणां हि चरतां यन्मनोऽनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवांभसि॥

अ० २ श्लो० ६७

पानीमें नावको जैसे हवा खींच ले आती है वैसे जो आदमी अपनी इन्द्रियोंको उनकी मरजीके मुताबिक विषयोंमें भटकने देता है और मनको भी उन्हींमें लगाये रखता है उसकी बुद्धि हर जाती है।

मनको वशमें न रखनेसे बेलंगरकी तथा बेपतवारकी नाव सी जीवकी दशा होती है। ऐसी हालतवाले जीवको सुख क्यों कर होगा? नहीं होगा। इसके लिये प्रभुने भी कहा है कि

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत्।
तद्वत्कामा य प्रविशंति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी॥

अ० २ श्लो० ७०

जैसे भरे हुए समुद्रमें चारों तरफसे पानी चला आता है तो भी समुद्र अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता वैसे ही सब प्रकारके भोगका सामान मिलने पर भी जिसको विकार नहीं होता उसको शान्ति मिलती है; परन्तु जिसके मनमें विषय भोगनेकी इच्छा होती है उसको शान्ति नहीं मिलती।

जिसके मनमें भोग करनेकी वासनाएं भरी हैं उसको शान्ति नहीं मिलती।

इससे जानना चाहिये कि प्रभुका हुक्म है कि जिसके मनमें विषय भोगनेकी लालसाएं भरी हों उसको शान्ति नहीं

मिलती और यह बात भी पक्की है कि जिसने अपने मनको वशमें नहीं रखा है उसके मनमें विषय भोगनेकी बड़ी भारी आशा तृष्णा होती है। ऐसे आदमीको शान्ति नहीं मिलती। याद रहे कि जब तक हृदयको शान्ति न मिले तब तक जिन्दगी सार्थक नहीं हो सकती। क्योंकि जब तक मन भोग करनेकी वासनाओंमें फिरा करता है और जगतके वैभवकी आसक्तिमें ही पड़ा रहता है तब तक भगवानमें जीव जुड़ नहीं सकता और जब तक परमात्माके साथ आत्माका तार न लगे तब तक आत्माका उद्धार नहीं हो सकता। इसके लिये प्रभुने भी कहा है कि

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयाऽपहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धि. समाधौ न विधीयते॥

अ० २ श्लो० ४४

भोग करनेमें तथा वैभव प्राप्त करनेमें ही जो आसक्त हो गया है और उसीमें लुट गया हैं उसकी बुद्धि ईश्वरमें तदाकार नहीं हो सकती।

अब विचारनेकी बात है कि जब ईश्वरमें मन नहीं ठहर सकता तब वह वैभव किस काम का? क्योंकि सब धर्मोंका मर्म यही है कि किसी तरह जीवको ईश्वरके निकट ले जाना चाहिये। ऐसा करनेके लिये ही धर्मकी सब बाहरी तथा भीतरी क्रियाएं हैं; ऐसा करनेके लिये ही धर्मकी पुस्तकोंका ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है; ऐसा करनेके लिये ही महात्माओंके उपदेश हैं और इस प्रकार जीवको ईश्वरमें मिलानेका नाम ही पुरुषार्थ है और इसीका नाम जिन्दगीकी सार्थकता है। पर यह सब मनको जीतनेसे ही हो सकता है। मनमें भोग करनेकी आसक्ति हो और मनको उसकी मरजीके अनुसार

भटकने देते हों तो जीव ईश्वरके साथ नहीं जुड़ सकता। इसके लिये प्रभु ने कहा है कि—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्।
अ० १६ श्लो० २३

जो शास्त्र विधि छोड़कर मनमानी रीतिसे बर्तता है उसको सिद्धि नहीं मिलती, सुख नहीं मिलता और वह ऊँची गति भी नहीं पा सकता।

मनको वशमें रखनेके उपाय।

मनको वशमें न रखने और मनमाने तौर पर चलनेसे ऐसी हालत होती है; इसलिये हर एक आदमीको अपना मन वशमें करना सीखना चाहिये और मनको वशमें रखनेका उपाय जानना चाहिये। जब मन वशमें नहीं रहता, उस समयकी हालत बता कर अब मनको वशमें रखनेके उपाय बताते हैं। इसके लिये ज्ञानी आदमी यह कहते हैं कि विषयों तथा इन्द्रियोंसे होनेवाले सुख दुःख भोगे बिना छुटकारा नहीं है इसलिये उनको भोगना ही चाहिये। इसके लिये प्रभुने भी कहा है कि—

मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय, शीतोष्णसुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व, भारत॥
अ० २ श्लो० १४

हे अर्जुन! इन्द्रियोंसे विषयोंका सम्बन्ध होने पर अर्थात् इन्द्रियोंके विषय भोगनेसे सर्द गर्म आदि जो असर होता है वह सुख तथा दुःख देनेवाला है और वह भोग तथा उससे उत्पन्न होनेवाले सुख और दुःख आने और जानेवाले स्वभावके हैं और थोड़ी देर रहनेवाले हैं। इसलिये हे अर्जुन! तू

तितिक्षा सहन कर अर्थात् सब तरहके दुःखोंको उनका सामना किये बिना, चिन्ता रखे बिना और अफसोस किये बिना सह ले।

क्योंकि जब तक हम दुनियामें हैं तब तक इस किस्मका कोई न कोई सुख या दुःख हुए बिना नहीं रहेगा और अगर हर बार अपने मनको धक्का लगने दें तो फिर कभी हमारा मन स्थिर नहीं हो सकता और जब तक मन स्थिर न हो तब तक धर्म्म पालन नहीं समझा जाता, तब तक सच्ची शान्ति नहीं मिल सकती। इसलिये दुनियादारीमें आ पड़नेवाले अनेक प्रकारके सुख दुःखोंमें समता रखना सीखना चाहिये। सुख दुःखमें समता रखना धर्म्मका मुख्य अंग है, यह जिन्दगीका मुख्य कर्त्तव्य है और यह प्रभुकी मुख्य आज्ञा है; क्योंकि इसीपर भविष्यका सुख निर्भर है तथा इसीपर इस जिन्दगीकी शान्ति है। यह विचार कर चतुर आदमी तितिक्षा सहते हैं और सुख दुःख आ पड़ें तो अपने मनको वशमें रखते हैं। इसीमें मनुष्यका मनुष्यत्व है और यह—

प्रभुका हुक्म

है। उसके लिये प्रभुने फिर भी कहा है कि—

ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते।
आद्यन्तवन्त कौंतेय न तेषु रमते बुधः॥

अ० ५ श्लो० २२

विषयों और इन्द्रियोंके सम्बन्धसे जो भोग करनेको मिलता है वह सब सुखदुःखका मूल ही है और वह आने जानेवाले स्वभावका है। इसलिये हे अर्जुन! बुद्धिमान मनुष्य ऐसे भोगमें नहीं रमा करते।

क्योंकि ऐसे भोग विलासमें पड़े रहनेमें कुछ बहादुरी नहीं है। इसके लिये प्रभुने कहा है कि—

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्त: स सुखी नरः॥

अ० ५ श्लो० २३

जो मर जानेसे पहले इसी जिन्दगीमें और इसी दुनियामें काम क्रोधके वेगको सह सकता है वही योगी है, वही सुखी है और वही पुरुष है।

इतना ही नहीं और आगे चलकर भगवान कहते हैं कि—

यं हि न व्यथयंत्येते पुरुषं पुरुषर्षभ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते॥

अ० २ श्लो० १५

हे पुरुषोंमें श्रेष्ठ अर्जुन! विषयों तथा इन्द्रियोंके सम्बन्धसे उपजनेवाले सुख तथा दुःख जिस धीर पुरुषको व्यथा नहीं पहुँचा सकते अर्थात् जो सुखसे खुश नहीं हो जाता और दुःखसे अफसोस नहीं किया करता, बल्कि सुख दुःखमें समान वृत्ति रखता है वही मोक्ष पा सकता है।

भाइयो! याद रखना कि जिन हरिजनोंको ऊपर कहे अनुसार ज्ञान हो जाता है और यह ज्ञान अनुभवमें आ जाता है वे ज्ञानी मनुष्य अपने मनको वशमें रख सकते हैं। मनुष्यों-का मन जो वशमें नहीं रहता उसका मुख्य कारण यही है कि इन्द्रियों तथा विषयोंके सम्बन्ध और उसमेंसे उपजनेवाले दुःखोंमें मनुष्य हिम्मत नहीं रखते। अगर इन विषयोंमें तितिक्षा रख सकें और सुखदुःखमें समान वृत्ति रख सकें तो फिर आपसे आप मन वशमें हो जाता है। अगर यह समझें कि इन्द्रियोंके सुख घड़ी भरके लिये हैं, खोटे हैं, दुःखसे भरे हैं और

पराधीन हैं अर्थात् संयोग वियोगसे होनेवाले हैं, तो फिर ऐसे सुख दुःखका धक्का पहलेसे बहुत नर्म हो जाता है। और फिर ज्यों ज्यों यह धक्का घटता जाता है त्यों त्यों मन वशमें होता जाता है। इसलिये मनको वश करनेके निमित्त तितिक्षा सहना सीखना चाहिये। मनको जीतनेका यह पहला उपाय है।

मनको जीतनेका दूसरा उपाय।

मनको जीतनेका दूसरा उपाय यह है कि जिन जिन विषयोंमें मन जाय उनमेंसे उसको खींचकर भगवानमें ही लगाना। ऐसा करनेसे भी धीरे धीरे मन वशमें होता है। इसके लिये प्रभुने भी कहा है कि—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते॥

अ० ६ श्लो० ३५

हे बहुत बलवाले अर्जुन! मन चंचल है और उसको रोकना बड़ा ही कठिन है; इसमें कुछ सन्देह नहीं; परन्तु हे अर्जुन! अभ्यास और वैराग्यसे वह वशमें हो सकता है।

अब प्रभु अभ्यास करनेका रास्ता बताते हैं। वह कहते हैं—

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्॥

अ० ६ श्लो० २६

चंचल और अस्थिर मन जिन जिन चीजोंसे चलायमान हो और जिन जिन विषयोंमें जाय वहाँसे उसको खींचकर तथा नियममें लाकर आत्माके ही वशमें करना।

इस प्रकार मनको वश करनेका अभ्यास किया करने और इस जगतके सुख थोड़ी देरके लिये हैं, तिस पर भी

दुःखसे भरे हुए हैं और वह दुःख भोगे बिना पिण्ड नहीं छूटनेका यह समझ कर ऐसे सुख दुःखमें सहनशीलता रखनेका नाम वैराग्य है। मनको वश करनेके दो उपाय प्रभु बताते हैं एक अभ्यास और दूसरा वैराग्य। इस वास्ते हमें अपने मनको वशमें करनेके लिये ये दो उपाय करने चाहियें। अगर खयाल रखकर ये दो उपाय करें तो धीरे धीरे मन जरूर वशमें हो जाता है।

मनको वशमें करनेका तीसरा उपाय।

मनको वशमें रखनेका तीसरा उपाय है अपने जीवको ही अपने जीवका गुरु बनाना। अर्थात् अन्दरसे जीवको जगाना, अपना असल स्वरूप क्या है इसका विचार करना, किस कारण जीव इतने बड़े दुःखोंमें पड़ गया है इसका विचार करना, संसारके बेशुमार दुःख भोगकर तथा हजारों तरहके विकारोंके साथ मनको रमाकर उससे क्या परिणाम निकालना है इसका विचार करना, परमात्मासे आत्माका कितना निकट सम्बन्ध है और यह सम्बन्ध कैसे बढ़ाया जा सकता है इसका विचार करना तथा इस जगतमें हमारा मुख्य कर्त्तव्य क्या है और हमें किस लिये यह जिन्दगी दी गयी है इसका विचार करना। इसका नाम जीवको जगाना है और इसका नाम जीवका गुरु जीवको बनाना है। जब तक अन्दरसे जीव आपसे आप नहीं जागता तब तक केवल बाहरके गुरुओंसे कुछ भलाई नहीं होती; क्योंकि बाहरके गुरुओंका प्रभाव 'सिखायी बुद्धि अढ़ाई घडी' सा होता है। इसलिये अन्दरसे आप ही अपने जीवको जगाना चाहिये। इसके लिये प्रभुने भी कहा है कि—

इस श्लोकका तीसरा अर्थ यह होता है कि आत्मा द्वारा आत्माका उद्धार करना अर्थात् आत्माकी सत्तासे अपने मनको वशमें रखनेका नाम आत्मा द्वारा आत्माका उद्धार करना है। जिसने अपनी आत्माके बलसे अपने मनको वशमें किया है उसका मन उसका मित्र होता है और जिसने आत्माके बलसे अपने मनको नहीं जीता है बल्कि जहाँ तहाँ मनमाने तौर पर भटकने दिया है उसका मन आप अपना शत्रु बन जाता है। इसलिये आत्माके बलसे ही मनको जीतना चाहिये।

इस तीन तरहके अर्थमेंसे जो रीति अपने अनुकूल आवे उस रीतिसे अपने मनको समझाकर वशमें करना चाहिये। मनको वश करना ही सब शास्त्रोंका सिद्धान्त है, यही सब धर्म्मोंका मर्म्म है और यही जिन्दगीकी सार्थकता है। इसलिये इनमेंसे चाहे जिस उपायसे हर आदमीको अपना मन वशमें रखना सीखना चाहिये।

मनको वशमें रखनेका चौथा उपाय।

मनको वशमें करनेका चौथा उपाय यह है कि अपनी आत्माका बल समझना और यह विचार करना कि शरीरकी सब इन्द्रियों, सब शक्तियों तथा चित्तकी सब वृत्तियोंसे आत्मा बलवान है। क्योंकि इन सब वस्तुओंको सत्ता देनेवाली आत्मा है। आत्माके चले जाने पर ये सब वस्तुएँ अपनी सत्तामें कुछ भी नहीं कर सकतीं। इसलिये शरीरकी सब इन्द्रियों और मन तथा बुद्धिसे भी आत्माकी सत्ता बहुत बड़ी है। यह समझें तो भी मन वशमें किया जा सकता है। इसके लिये प्रभुने भी कहा है कि

निकम्मा बननेके लिये नहीं बल्कि अधिक उपयोगी बननेके लिये मनको जीतना चाहिये।

कितने आदमी यह प्रश्न करते हैं कि जिन आदमियोंने अपना मन जीता है अर्थात् जिनको किसी प्रकारकी आशा तृष्णा नहीं है, जिन पर सुखदुःखका असर नहीं होता, जिन्होंने अपना निजका मतलब छोड़ दिया है, जिनके विकार वशमें आ गये हैं और जिन्होंने संसारका मिथ्यापन तथा ईश्वरकी महिमा समझी है वे महात्मा ऐसी स्थितिमें पहुँचनेके बाद फिर काम किसलिये करें क्योंकि? उनको किसी चीजमें आसक्ति नहीं होती और न इस बातका आग्रह ही होता कि यह काम करना चाहिये और यह काम हरगिज न करना चाहिये तथा मनमाने तौर पर करनेकी इच्छा भी नहीं होती और न वे किसी प्रकारके स्वार्थकी परवा रखते। तब ऐसे जंजालसे छूटे हुए मस्त आदमी व्यवहारका या जगतका झंझट क्यों उठावें? और जब वे जगतके जरूरी काम करनेसे भी निकल जायं तब उनकी यह दशा अच्छी कैसे कही जायगी? नहीं कही जायगी। फिर जिस विषयमें जिसको चाव न हो उस विषयमें वह गहराई तक कैसे उतर सकता है? नहीं उतर सकता। इसलिये हमें तो यही जान पड़ता है कि जब तक मनुष्यके मनमें किसी तरहका खिंचाव हो, किसी तरहका स्वार्थ हो, किसी तरहका लाभ लेनेकी इच्छा हो और किसी जीव या वस्तुमें स्नेह हो तभी उसका जीवन रसमय हो सकता है। परन्तु आदमी अपने मनको जीतता है तो उसमें यह सब रुचि मन्द पड़ जाती है, इसलिये वह आदमी बहुत करके निकम्मा हो जाता है। और कितने ही अधूरी समझवाले

आदमी कहेंगे कि ऐसे निकम्मे आदमियोंको देशमें बढ़ानेका उपदेश देना बहुत ही अनुचित है। ऐसे आदमियोंको जानना चाहिये कि मनका जीतना कुछ निकम्मा बनानेके लिये नहीं है बल्कि और कर्म्मठ बननेके लिये है। इसके लिये भगवानने कहा है—

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ॥

अ० ३ श्लो० २२

हे अर्जुन! इस लोकमें या पातालमें या स्वर्गमें ऐसी कोई चीज नहीं है जो लेने योग्य हो और मुझे न मिली हो; इससे मुझे अपने लिये कुछ भी करना नहीं है, तो भी मैं कर्म्म करता हूँ। क्योंकि—

यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥

अ० ३ श्लो० २२

हे अर्जुन! अब मुझे कुछ करना नहीं है यह समझ कर अगर मैं कर्म्म न करूँ तो यह देखकर सब आदमी ऐसा ही करने लगें। उसका परिणाम यह हो कि—

उत्सीदेयुरिमे लोका न कुर्यां कर्म चेदहम् ।
संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामिमाः प्रजाः ॥

अ० ३ श्लो० २४

अगर मैं कर्म्म न करूँ तो दूसरे आदमी भी कर्म्म न करें जिससे उनका नाश हो जाय और प्रजा वर्णसंकर हो जाय। मेरे कर्म्म न करनेके कारण ऐसा होगा, इसलिये प्रजाको वर्ण-संकर बनानेवाला तथा उसका नाश करनेवाला मैं होऊँगा। क्योंकि लोगोंका स्वभाव ऐसा है कि—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥

अ० ३ श्लो० २१

अच्छे आदमी जैसा आचार विचार रखते हैं और जैसा काम करते हैं उसीके अनुसार दूसरे आदमी भी करते हैं और अच्छे आदमी जिसको अच्छा समझते हैं उसको दूसरे आदमी भी अच्छा समझते है और उसीके अनुसार बर्तते हैं।

इसलिये,

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम् ॥

अ० ३ श्लो० २५

हे अर्जुन ! अज्ञानी लोग जैसे आसक्ति रखकर फल पानेकी इच्छासे कर्म करते हैं वैसे, लोगोंका भला चाहनेवाले ज्ञानियोंको आसक्ति छोड़कर कर्म करना चाहिये। इसलिये

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ।

अ० ३ श्लो० १९

कर्मोंका फल पानेकी इच्छा छोड़कर जो करने योग्य हो उस कामको तू हमेशा कर। फलकी इच्छा छोड़कर अपना कर्त्तव्य पालनेके लिये जो निष्काम कर्म करते हैं उनको कर्म करते हुए भी मोक्ष मिलता है।

जिन्होंने अपने मनको जीता है वे अधिक काम कर सकते हैं।

इन सब बातोंसे साबित होता है कि ज्ञानी आदमी अगर अपना कर्त्तव्य पालन न करें तो उनका साधारण आदमियोंसे

कहीं अधिक पाप लगता है; क्योंकि उनकी देखादेखी दूसरे लोग चलते हैं। याद रखना कि जो लोग विषयोंके गुलाम हैं, जो अपनी तृष्णाके पीछे भटकते हैं, जो लोग अपना निजका तुच्छ मतलब साधनेमें ही चतुराई समझते हैं और जो लोग कमजोर और ढीले-सीले मनके हैं वे अच्छे आदमी नहीं समझे जाते और उनके कदम ब कदम दूसरे लोग नहीं चलते। जिन्होंने अपने मनको जीता है, जिन्होंने मनकी नीच वृत्तियां त्याग दी हैं, जिन्होंने जगतके कल्याणके लिये अपने स्वार्थ पर धूल डाल दी है, जो अपना धर्म पालनेमें दृढ़ हैं, जो अपने भाइयोंका कल्याण करनेमें तत्पर हैं और जो अपनी आत्माका बल समझ कर तथा ईश्वरको हाजिर जानकर काम करते हैं वे ही श्रेष्ठ आदमी माने जाते हैं और उन्हींके कदम ब कदम दुनिया चलती है। ऐसे आदमी अगर अपना फर्ज पूरा करनेमें गलती करें तो सिर्फ उन्हींको नहीं बल्कि सारे देशको बहुत बडा नुकसान पहुँचे। इस कारण जिन्होंने अपने मनको जीता है वे हरिजन खास करके अधिक काम करते हैं; क्योंकि व्यवहारी आदमियोंको जैसी लालसा होती है वैसी लालसा अपना मन जीते हुए आदमियोंको नहीं होती। व्यवहारी आदमियोंको प्रतिष्ठा दरकार है, धन दरकार है, पान तमाखू दरकार है और दूसरी कितनी ही फजूल चीजें दरकार हैं परन्तु इस तरहकी कोई व्यर्थकी चीज मनको जीते हुए आदमियोंको दरकार नहीं होती, इससे वे अधिक रुचिसे और अधिक मजबूतीसे काम करते हैं। दूसरे यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि जिन आदमियोंने अपना मन नहीं जीता है उनकी जुदी जुदी वृत्तियां जुदे जुदे विषयोंमें लगी रहती हैं, इससे वे जैसा चाहिये वैसे बलसे एकाग्रता सहित काम नहीं

कर सकते। परन्तु जिन्होंने अपना मन जीता है उनका मन और कहीं नहीं दौड़ता, इससे वे बड़ी दृढ़तासे अपना सोचा हुआ काम पूरा करते हैं। इसके सिवा यह भी याद रखने योग्य है कि जिन्होंने अपना मन नहीं जीता है वे आदमी डर-पोक होते हैं, छोटी छोटी बातोंमें रह जाते हैं, उनमें दूर-दर्शिता नहीं होती, उनमें मतभेद तथा ममता होती है और वे अपनी ही बात रखनेकी फिकरमें रहते हैं। फिर उनको और कई तरहके जजाल होते हैं और कितनी ही जगह उनका मन भटका करता है, इससे वे पूरे पूरे बलसे कोई काम नहीं कर सकते। जिन्होंने अपना मन जीता है उन सज्जनोंको ऐसी कोई अडचल बाधा नहीं देती। इससे वे बहुत अधिक और बहुत अच्छा काम कर सकते हैं। जिन आदमियोंमें ऐसा बल आ गया है, ऐसी शक्ति आ गयी है और जिनका हृदय बहुत विशाल हो गया है तथा जिनके आगे किसी प्रकारकी अड़चल नहीं है वे सज्जन क्या निठल्ले बैठे रह सकते हैं? कभी नहीं। ऐसे आदमी तो सत्य समझ कर, धर्म्म समझ कर तथा जिन्दगीका कर्त्तव्य समझ कर पाये हुए हर एक क्षणको अच्छेसे अच्छे काममें लगाते हैं और दूसरे आदमियोंसे कहीं अधिक काम करते हैं। और सो भी अपने स्वार्थके लिये नहीं; क्योंकि वे अपने स्वार्थको तो लात मारे रहते हैं इससे प्रभुके प्रीत्यर्थ परमार्थके काम ही वे करते हैं। और जहां जहां दुखियोंके शब्द सुनाई देते हैं वहां वे दौड़ जाते हैं। जहां भयं-कर रोग फैले हैं वहां उनकी हाजिरी होती है; जिस जगह देशके कल्याणके काम होते हैं वहां वे अगुआ होते हैं; जहां परमार्थके काम होते हैं वहां उनका पहला नम्बर होता है; जहां ईश्वरी ज्ञानकी चर्चा चलती है वहां वे ही मुखिया होते

हैं और जहां धर्म्मयुद्ध होता है वहां वे अर्जुनकी तरह सेनाके सरदार होते हैं। सारांश यह कि हर तरहके अच्छे काममें चाह कर भाग लेना और जैसे बने वैसे अपने भाइयोंको सुखी करना, अपने देशको उन्नत करना और अपने धर्म्मको जगतमें बढ़ाना ही उनका मुख्य काम होता है और इसीमें वे जिन्दगी अर्पण कर देते हैं। याद रहे कि दुनियामें बेकार हो जाना मनके जीतनेका फल नहीं है, वल्कि ऐसी उत्तम दशामें पहुँचना ही मनके जीतनेका फल है। इसलिये मनको वशमें रख कर अच्छे काम कीजिये और जिन्दगी सार्थक करनेके लिये मनको वशमें रखना सीखिये।

मनको जीतनेसे लाभ।

अब यह जानना चाहिये कि जिन्होंने अपने मनको जीता है और जो ऊपर लिखे अनुसार अच्छे काम करते हैं उनको क्या फल मिलता है। इसके लिये प्रभुने कहा है कि—

वशे हि यस्येंद्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।

अ० २ श्लो० ६

जिसकी इन्द्रियां अपने वशमें रहती हैं उसकी बुद्धि स्थिर होती है। प्रभु और कहते हैं—

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः।
इंद्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥

अ० २ श्लो० ६८

हे बहुत बलवाले अर्जुन! जो अपनी सब इन्द्रियोंको विषयोंसे खींच लेता है उसकी बुद्धि स्थिर होती है और जिसकी बुद्धि स्थिर होती है उसको आत्मा अपना मित्र बन जाती है। इसके लिये प्रभुने कहा है कि—

बन्धुरात्माऽऽत्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः।

अ० ६ श्लो० ६

जिसने अपनी आत्मासे अपने मनको जीता है उसकी आत्मा अपनी आत्माका बन्धु होती है।

अब विचार कीजिये कि जिसकी आत्मा अपनी आत्माका बन्धु बन गयी है उसको कितना बडा सुख होता है और कितनी बड़ी शान्ति होती है। इसके बाद दूसरा फल यह होता है कि जिसकी आत्मा ही अपनी आत्माका बन्धु बन गयी है वह भोग करते हुए भी शान्तिमें रह सकता है। इसके लिये प्रभुने कहा है कि—

रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिंद्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ॥

अ० २ श्लो० ६४

जो आदमी अपनी आत्माके अर्थात् ईश्वरके अधीन होकर अपने मनको वश करता है और विषयोंमें आसक्त हुए बिना तथा ग्लानि पाये बिना भोग करता है उसको इस प्रकारका भोग करने पर भी ईश्वरकी कृपा मिलती है। इतना ही नहीं,

प्रसादे सर्वदुःखानां हानिरस्योपजायते ।
प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धिः पर्यवतिष्ठते ॥

अ० २ श्लो० ६५

जिसको कृपा मिलती है उसके सब दुःख नष्ट हो जाते है, दुःख दूर होनेसे आनन्द होता है और आनन्दी अन्तःकरण वालेकी बुद्धि तुरत ही स्थिर हो जाती है।

स्थिर बुद्धिवाले मनुष्य मनको वशमें करके दैव इच्छासे आ मिले हुए विषय भोगते हुए भी शान्ति पाते हैं। इस प्रकार मनको वशमें रखकर जिन्दगीका फर्ज पूरा करनेके

लिये भोग करने पर भी उनको मोक्ष मिलता है। यह बात कैसे हो सकती है इसको एक दृष्टान्त देकर प्रभु समझाते हैं कि—

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशन्ति यद्वत् ।
तद्वत्कामा यं प्रविशन्ति सर्वे स शान्तिमाप्नोति न कामकामी ॥

अ० २ श्लो० ७०

जैसे भरे पूरे समुद्रमें चारों तरफसे पानी चला आता है तो भी समुद्र अपनी मर्यादा नहीं छोड़ता वैसे ही सब प्रकारका भोग करनेको पाने पर भी जिसको विकार नहीं होता उसको शान्ति मिलती है। परन्तु जिसके मनमें विषय भोगनेकी इच्छा होती है उसको शान्ति नहीं मिलती ।

इसमें समझने योग्य खूबी यह है कि जिन्होंने अपने मनको वशमें किया है उनकी तुलना प्रभु समुद्रके साथ करते हैं। कितनी बड़ी उपमा है यह जिज्ञासु मनुष्योंके विचारने योग्य है। इसके बाद अपने मनको वशमें रखनेवालोंको चौथा फायदा यह होता है कि वे योग साध सकते हैं अर्थात् ईश्वरके साथ जुड़ सकते हैं। और योगकी दशा कैसी उत्तम है यह जिज्ञासु हरिजनोंसे छिपी हुई नहीं है। इसके लिये प्रभु कहते हैं—

योगका अर्थ और उसके सुख ।

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः ।
कर्म्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

अ० ६ श्लो० ४६

योगी तप करनेवालेसे भी श्रेष्ठ है, ज्ञानीसे भी श्रेष्ठ है और शास्त्र विधिके अनुसार कर्म करनेवालेसे भी योगी श्रेष्ठ है ! इसलिये हे अर्जुन ! तू योगी हो ।

योगके लिये ईश्वरकी ऐसी उत्तम राय है; क्योंकि परमात्माके साथ आत्माके जुड़ जानेका नाम ही योग है और वह उसको मिल सकता है जिसने अपने मनको जीता है। इसके लिये प्रभुने भी कहा है कि—

असयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥

अ० ६ श्लो० ३६

मेरा मत यह है कि जिसने अपना मन नहीं जीता है वह आदमी बहुत कष्ट सहे तो भी उससे योग नहीं सध सकता, परन्तु जिस आदमीने अपना मन जीता है वह योग्य उपायोंसे योग साध सकता है।

और जो योग साध सकता है अर्थात् परमात्माके साथ अपनी आत्माको जोड़ सकता है उस योगीको उत्तम प्रकारका सुख मिलता है। इसके लिये प्रभुने भी कहा है कि—

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम् ।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥

अ० ६ श्लो० २७

जिसमें रजोगुण बहुत घट गया है और जो बड़े शान्त मनका है उस ब्रह्मरूप बने हुए बे पापके योगीको उत्तम प्रकारके सुख मिलते हैं।

इसके बाद, जिसने अपना मन जीता है और अपनी इन्द्रियोंको वशमें रखा है तथा अपने विकारोंको रोका है उसका बखान करते करते प्रभु कहते हैं कि—

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥

अ० ५ श्लो० २३

जो अपने शरीरका नाश होनेसे पहले इसी जिन्दगीमें और इसी दुनियामें काम, क्रोध आदि विकारोंके वेगको रोक सकता है और सह सकता है वही योगी है, वही सुखी है और वही पुरुषार्थी है।

जो अपने मनको जीतता है उसको ईश्वरी आनन्द मिलता है।

इसके बाद आगे जाकर मन जीतनेवालेको कैसा अलौकिक सुख मिलता है इसके विषयमें प्रभु कहते हैं—

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्मा विंदत्यात्मनि यत्सुखम्।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्ष्य्यमश्नुते॥
अ० ५ श्लो० २१

बाहरके स्पर्शमें अर्थात् इन्द्रियों तथा विषयोंके सुखमें जिसको प्रेम नहीं है वह उस सुखको पाता है जो उसकी आत्मामें है; फिर परमात्माके साथ चित्त जोड़नेवाला मनुष्य परमात्माका कभी नाश न होने योग्य सुख पाता है।

मनके जीतनेसे पहला फल यह मिलता है कि बुद्धि स्थिर होती है। दूसरा फल यह मिलता है कि अपनी आत्मा अपना बंधु होती है। इसके बाद तीसरा फल यह मिलता है कि भोग करते हुए भी शान्तिसे रह सकते हैं। चौथा फल यह मिलता है कि परमात्माके साथ आत्माको जोड देनेवाला योग साधा जा सकता है। पाँचवाँ फल यह मिलता है कि अन्तःकरणमें मौजूद अनेक प्रकारके स्वाभाविक सुख भोगे जा सकते हैं। छठा फल यह होता है कि परमात्माके साथ मिलकर उसके अक्षय सुख भोगे जा सकते हैं और फिर अन्तिम

सातवाँ फल यह मिलता है कि इस जीवका उद्धार हो जाता है और वह परमात्मामें मिल जाता है। इसके लिये प्रभुने कहा है कि—

एतैर्विमुक्तः कौंतेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।
आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्॥

अ० १६ श्लो० २२

हे अर्जुन! ये (काम, क्रोध और लोभ) तीन नरकके दरवाजे हैं। इन तीन तमद्वारोंसे जो आदमी छूट गया है और अपने कल्याणके लिये मिहनत करता है वह आदमी परम गति (मोक्ष) पाता है।

इसके लिये प्रभु और कहते हैं कि—

जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः॥

अ० ६ श्लो० ७

जो मान-अपमानमें, सर्द-गर्ममें तथा सुख दुःखमें अपने मनको वशमें रखता है और जो बहुत शान्ति पाये हुए है वह समानतावाला मनुष्य परमात्माको पाता है।

इस प्रकार मनको वशमें रखनेसे परमात्मा प्राप्त हो सकता है और ऊपर कहे हुए और अनेक प्रकारके लाभ होते हैं। इसलिये जैसे बने वैसे मनको वशमें करनेकी चेष्टा कीजिये; मनको वशमें रखनेकी चेष्टा कीजिये।

इस पैड़ीमें मनको वशमें करनेकी रीति, युक्ति तथा उपाय जान लेनेके बाद यह जानना चाहिये कि जिनका मन वशमें हो गया है, वे अपनी जिन्दगीके हर रोजके काम काजमें कैसा बर्ताव करते हैं, उनके जीवनमें कैसी उत्तमता होती है, वे

अपने हर एक काममें किस प्रकार प्रभुकी सहायता माँगते हैं, किस तरह प्रभुसे पूछ पूछकर कदम बढ़ाते हैं और किस तरह अपना काम प्रभुको सौंप देते हैं। इन सब विषयोंका वर्णन नवीं पैड़ीमें किया जायगा। इसके सिवा यह भी बताया जायगा कि जिनसे अभी अपना मन नहीं जीता गया है उन्हें कैसा बर्ताव करना चाहिये

नवीं पैड़ी ।

तरह तरहके अच्छे बुरे प्रसंगोंपर करनेकी प्रार्थना ।

धर्म्मके और सब कामोंसे ईश्वरकी स्तुति उत्तम है ।

दुनियाके सब धर्मोंमें धर्मकी और सब क्रियाओंसे ईश्वरकी स्तुति तथा प्रार्थना श्रेष्ठ गिनी जाती है; क्योंकि सर्वशक्तिमान महान् ईश्वरकी स्तुति करनेमें धर्मके और सब अङ्ग आ जाते हैं। जैसे, जब प्रेम हो तब स्तुति होती है, जब महिमा समझमें आ गयी हो तब स्तुति होती है; जब जगतके दूसरे विषयोंका मोह घटा हो अर्थात् वैराग्य आया हो तब स्तुति होती है; जब जीव ठहरे तब स्तुति होती है; जब शुभेच्छा हो और ऊँचेसे ऊँचा लक्ष्य रहे तब स्तुति होती है; जब प्रभुकी कृपा हो तब स्तुति होती है और जब परमात्माकी ओर सच्चा खिंचाव हो तभी हृदयकी उमंगसे स्तुति हो सकती है और तभी स्तुतिमें आनन्द आता है। इसके सिवा जब कोई खास बड़ी घटना हुई हो तब हरिजनोंको स्तुति करनेका अवश्य मन करता है। क्योंकि स्तुति करनेसे मनका सामंजस्य बन सकता है; स्तुति करनेसे हृदयका बोझ हलका

होता है; स्तुति करनेसे ऊँचे दरजेका मानसिक ढारस मिलता है; स्तुति करनेसे हृदयमें एक प्रकारका स्वाभाविक सन्तोष होता है; स्तुति करनेसे आत्मिक शान्ति मिलती है; स्तुति करनेसे ज्ञानका दरवाजा खुल जाता है; स्तुति करनेसे माया-का मोह भाग जाता है; स्तुति करनेसे नया जीवन मिल जाता है; स्तुति करनेसे मनुष्यमें देवत्व आ जाता है; स्तुति करनेसे ईश्वरी रास्तेमें उड़नेके नये पंख मिलते हैं, स्तुति करनेसे सत्य मार्ग मिलता जाता है; स्तुति करनेसे भीतरका परदा हटता जाता है; स्तुति करनेसे करनेवालेमें पवित्रता आती जाती है और स्तुति करनेसे जीव ईश्वरके अलौकिक आनन्द-का हिस्सेदार हो सकता है। महात्मा लोग कहते हैं कि स्तुति एक प्रकारकी क्रिया है; स्तुति मनुष्यों तथा देवताओं-के लिये कामधेनु है; स्तुति जीवको ईश्वरत्व देनेवाली रसा-यन है; स्तुति ईश्वरकी कृपा है; स्तुति ईश्वरकी इच्छा है, स्तुति महात्माओंका आशीर्वाद है; स्तुति देवताओंका जीवन है और स्तुति शिव ब्रह्मादिकी प्यारीसे प्यारी वस्तु है। क्योंकि स्तुतिसे मनकी एकाग्रता हो सकती है; स्तुतिसे जीव-को विश्वास रह सकता है; स्तुतिसे आपसे आप ध्यानकी दशा चली आती है; स्तुतिसे आगे बढ़े हुए भक्तोंको सहज समाधि हुआ करती है; स्तुतिसे महात्मा स्थितप्रज्ञकी दशा-में रह सकते हैं और कभी कभी जब बहुत ऊँचे चढ़ जाते हैं तब कोई कोई महात्मा स्तुति करते करते अनायास—बिना मिहनत थोड़ी देर निर्विकल्प समाधिमें चले जाते हैं और कभी कभी तूर्या तथा उन्मत्त अवस्थाका आनन्द भी ले लेते हैं। उस समय जीव ईश्वरके साथ तन्मय हो जाता है और अनन्य बन जाता है. इससे स्तुति करते समय उसके

प्रभावसे आत्मा अपने असली सच्चिदानन्द स्वरूपमें आ जाती है और सच्चिदानन्दका आनन्द भोगने लगती है। इसलिये महात्मा लोग कहते हैं कि धर्मके और सब अंगोंसे ईश्वरकी स्तुति करनेका काम श्रेष्ठ है। जप, तप, तीर्थ, स्नान, दर्शन ध्यान, दान, इन्द्रिय-निग्रह, योग तथा कर्म, ज्ञान और भक्ति आदि धर्मके सब साधन स्तुतिमें ही आ जाते हैं; इससे देवता भी वारवार स्तुति ही किया करते हैं।

देवता भी वारंवार भगवानकी स्तुति किया करते हैं।

शिव, ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, वरुण, अग्नि, देवता, सनकादि, नारद, सनत्कुमार, मनु, ध्रुव प्रह्लाद, उद्धव, अक्रूर, शुकदेव; व्यास, भीष्म पितामह, नन्द, वसुदेव, देवकी, गोपियाँ, ऋषि, ब्राह्मण और भक्त वारंवार भगवानकी स्तुति किया करते हैं, क्योंकि स्तुतिमें सर्वस्व आ जाता है। धर्मके सब अंग स्तुतिमें आ जाते हैं। जीवको ईश्वरी मार्गमें आगे बढ़नेके लिये जिन साधनोंकी जरूरत है वे सब साधन स्तुतिमें आ जाते हैं, मनको वशमें करनेके लिये भीतरकी तथा बाहरकी जो क्रियाएं करने की हैं वे सब क्रियाए स्तुतिमें आ जाती हैं, जीवको ईश्वरसे जोड़नेके लिये जो जो उपाय करने चाहियें वे सब उपाय स्तुतिमें आ जाते हैं और आत्माको उसके असली सच्चिदानन्द स्वरूपमें ले जानेके लिये जो सहजसे सहज और ऊँचीसे ऊँची कुंजी है वह स्तुति है। इसलिये देवता और महात्मा वारंवार भगवानकी स्तुति किया करते हैं। हमें भी अगर अपनी आत्माका कल्याण करना हो तथा बहुत सहल रीतिसे बहुत थोड़ेमें और बहुत जल्द भगवानको प्रसन्न

करना हो तो अपने अन्तःकरणमें खूब गहरे उतर कर खूब प्रेमसे वारंवार भगवानकी स्तुति करनी चाहिये।

हमें प्रार्थना करनेकी जरूरत है।

स्तुतिकी महिमा इतनी बड़ी है यह बात बिलकुल सच है परन्तु इसके साथ यह भी समझ लेना चाहिये कि ऐसी गहरी, ऐसे प्रेमकी, ऐसे विश्वासकी, ऐसी निस्पृहताकी, ऐसी तन्मयताकी और ईश्वरकी जैसी चाहिये वैसी विशेष महिमा समझकर आत्मा द्वारा परमात्माको पकड़नेकी स्तुति करनेकी योग्यता कुछ व्यवहारके कोल्हूमें पड़े हुए साधारण मनुष्योंमें नहीं होती। जिस स्तुतिमें धर्मके सब अंग आ जायं वैसी स्तुति तो बहुत आगे बढ़े हुए महात्मा और उच्च कोटिके पवित्र देवता ही कर सकते हैं। अब हमें यह सोचना चाहिये कि हमारे लिये क्या रास्ता है। इसके उत्तरमें महात्मा लोग कहते हैं कि जो भाग्यशाली मनुष्य धर्मके रास्तेमें पहले पहल आ रहे हों, जो हरिजन अपने दस्तूरके मुताबिक धीरे धीरे कुछ कुछ सेवा-स्मरण कर रहे हों, जिन जिज्ञासुओंके मनमें प्रभुके घरका नया नया हाल जाननेकी बहुत उत्कण्ठा हो, जिन धार्मिकोंके मनमें अच्छी तरह भाव भक्ति जम गयी हो, जो कर्मकाण्डी प्रभुके नामसे कुछ कुछ अच्छे काम कर रहे हों, जो साधु गुरु परम्पराकी रीतिसे साधना कर रहे हों, जो भक्त ईश्वरकी ऊंची भावनाओंके साथ रहा करते हों, जो परमार्थी सद्गृहस्थ प्रभुके नामसे अपनी शक्तिके अनुसार परमार्थ किया करते हों, जो पवित्र बहनें पतिव्रतके कल्याणकारक नियम पालती हों, जो सद्गुणी सज्जन अपने सद्गुणोंसे जगतको लाभ पहुँचाते हों, जो ज्ञानी अपने ज्ञानसे

प्रभावसे आत्मा अपने असली सच्चिदानन्द स्वरूपमें आ जाती है और सच्चिदानन्दका आनन्द भोगने लगती है। इसलिये महात्मा लोग कहते हैं कि धर्मके और सब अंगोंसे ईश्वरकी स्तुति करनेका काम श्रेष्ठ है। जप, तप, तीर्थ, स्नान, दर्शन ध्यान, दान, इन्द्रिय-निग्रह, योग तथा कर्म, ज्ञान और भक्ति आदि धर्मके सब साधन स्तुतिमें ही आ जाते हैं; इससे देवता भी वारवार स्तुति ही किया करते हैं।

देवता भी वारंवार भगवानकी स्तुति किया करते हैं।

शिव, ब्रह्मा; विष्णु, इन्द्र, वरुण, अग्नि, देवता, सनकादि, नारद, सनत्कुमार, मनु, ध्रुव प्रह्लाद, उद्धव, अक्रूर, शुकदेव, व्यास, भीष्म पितामह, नन्द, वसुदेव, देवकी, गोपियाँ, ऋषि, ब्राह्मण और भक्त वारंवार भगवानकी स्तुति किया करते हैं; क्योंकि स्तुतिमें सर्वस्व आ जाता है। धर्मके सब अंग स्तुतिमें आ जाते हैं। जीवको ईश्वरी मार्गमें आगे बढ़नेके लिये जिन साधनोंकी जरूरत है वे सब साधन स्तुतिमें आ जाते हैं, मनको वशमें करनेके लिये भीतरकी तथा बाहरकी जो क्रियाएं करने की हैं वे सब क्रियाए स्तुतिमें आ जाती हैं, जीवको ईश्वरसे जोड़नेके लिये जो जो उपाय करने चाहियें वे सब उपाय स्तुतिमें आ जाते हैं और आत्माको उसके असली सच्चिदानन्द स्वरूपमें ले जानेके लिये जो सहजसे सहज और ऊँचीसे ऊँची कुंजी है वह स्तुति है। इसलिये देवता और महात्मा वारंवार भगवानकी स्तुति किया करते हैं। हमें भी अगर अपनी आत्माका कल्याण करना हो तथा बहुत सहल रीतिसे बहुत थोड़ेमें और बहुत जल्द भगवानको प्रसन्न

करना हो तो अपने अन्तःकरणमें खूब गहरे उतर कर खूब प्रेमसे वारंवार भगवानकी स्तुति करनी चाहिये॥

हमें प्रार्थना करनेकी जरूरत है।

स्तुतिकी महिमा इतनी बड़ी है यह बात बिलकुल सच है परन्तु इसके साथ यह भी समझ लेना चाहिये कि ऐसी गहरी, ऐसे प्रेमकी, ऐसे विश्वासकी, ऐसी निस्पृहताकी, ऐसी तन्मयताकी और ईश्वरकी जैसी चाहिये वैसी विशेष महिमा समझकर आत्मा द्वारा परमात्माको पकड़नेकी स्तुति करनेकी योग्यता कुछ व्यवहारके कोल्हूमें पड़े हुए साधारण मनुष्योंमें नहीं होती। जिस स्तुतिमें धर्मके सब अंग आ जायं वैसी स्तुति तो बहुत आगे बढ़े हुए महात्मा और उच्च कोटिके पवित्र देवता ही कर सकते हैं। अब हमें यह सोचना चाहिये कि हमारे लिये क्या रास्ता है। इसके उत्तरमें महात्मा लोग कहते हैं कि जो भाग्यशाली मनुष्य धर्मके रास्तेमें पहले पहल आ रहे हों, जो हरिजन अपने दस्तूरके मुताबिक धीरे धीरे कुछ कुछ सेवा-स्मरण कर रहे हों; जिन जिज्ञासुओंके मनमें प्रभुके घरका नया नया हाल जाननेकी बहुत उत्कण्ठा हों, जिन धार्मिकोंके मनमें अच्छी तरह भाव भक्ति जम गयी हो, जो कर्मकाण्डी प्रभुके नामसे कुछ कुछ अच्छे काम कर रहे हों, जो साधु गुरु परम्पराकी रीतिसे साधना कर रहे हों, जो भक्त ईश्वरकी ऊंची भावनाओंके साथ रहा करते हों, जो परमार्थी सद्गृहस्थ प्रभुके नामसे अपनी शक्तिके अनुसार परमार्थ किया करते हों, जो पवित्र बहनें पतिव्रतके कल्याणकारक नियम पालती हों, जो सद्गुणी सज्जन अपने सद्गुणोंसे जगतको लाभ पहुँचाते हों, जो ज्ञानी अपने ज्ञानसे

अपने भाइयोंमें नया प्रकाश फैलाकर अज्ञानको दूर करते हों और जो योगी आत्मा-परमात्माकी एकता साधनेके लिये योगकी क्रियाएं करते हों उन सबको अपने अपने रास्तेमें आगे बढ़नेके लिये तथा अपनी इच्छानुसार धर्मके शुभ काम सिद्ध करनेके लिये परम कृपालु सर्वशक्तिमान महान परमात्माकी मददकी जरूरत है। इस प्रकारके सब आदमियोंको प्रेमपूर्वक परमात्माकी प्रार्थना करनी चाहिये। स्तुतिमें ईश्वरकी अलौकिक महिमाकी ही बातें होती हैं, ईश्वरकी महिमाके सिवा और कोई बात स्तुतिमें नहीं होती। परन्तु प्रार्थनामें ईश्वरके गुणगानके साथ बहुत जरूरतकी अपनी कुछ कुछ फरमाइश भी होती है। और इस फरमाइशकी खास जरूरत भी होती है, क्योंकि उस समय हमारी हालत कच्ची होती है, हमारा ज्ञान अधूरा होता है, हमारा विश्वास ढीला होता है, हमारा प्रेम ऊपरी होता है और मनुष्यके ऊपरका तथा जगतकी वस्तुओंका मोह घटा नहीं होता; इससे दुनियादारीकी बहुत चीजोंकी हमें जरूरत होती है। इसके सिवा उस समय हमारी भक्ति भी परिपूर्ण नहीं होती, इससे प्रभुके मार्गकी जानने योग्य कितनी ही बातें मालूम नहीं रहतीं और उस समय अपना मन भी बलवान नहीं होता इससे अपनी इन्द्रियां भी उसके वशमें नहीं रह सकतीं। मनको वशमें करनेके लिये भी किसीकी मददकी जरूरत होती है। उस समय जगे हुए जीवोंको ऐसा भी मालूम देता है कि मनको वशमें रखने तथा धर्मके गुप्त भेद समझने और उसका इसी जिन्दगीमें अनुभव लेने तथा अपनी औकातसे कुछ बढ़कर परमार्थ कर डालनेका काम मा बापकी, हित मित्रोंकी, जाति बिरादरीकी या दुनियादारीमें बड़े गिने जाने-

वाले मनुष्योंकी मददसे नहीं हो सकता; एकमात्र परमात्मा-की मददसे हो सकता है। इससे हरिजन जो प्रभुके गुण गाते गाते अपनी जरूरतकी चीजोंकी याचना उनसे करते हैं उसका नाम प्रार्थना है। इसलिये स्तुतिका नम्बर पहला है, क्योंकि उसमें केवल ईश्वरकी महिमा होती है, उसमें स्वार्थकी कुछ फरमाइश नहीं होती। परन्तु प्रार्थनामें प्रभुके गुणगानके साथ उनका उपकार माननेकी तथा कल्याण चाहनेकी इच्छा और अपनी जरूरतकी कुछ मांग भी होती है। यद्यपि यह मांग भी ऊंचे दरजेकी होती है और प्रभुके पसन्द लायक होती है तो भी उसमें कुछ स्वार्थ है, कुछ अधूरापन है, और सिर्फ अपने लिये प्रभुको कुछ खास तरद्दुदमें डालनेके बराबर है; इसलिये प्रार्थनाका नम्बर दूसरा है। तो भी हम सबको प्रार्थनाकी खास जरुरत है। क्योंकि अभी हमारा इतना ही अधिकार है और अगर हम यह काम अच्छी तरह कर सकें तो भी बहुत समझा जाय। इसलिये पहले अपनी शुभ इच्छाएं पूरी करनेवाले सर्वशक्तिमान महान ईश्वरकी प्रार्थना करना हमें सीखना चाहिये। हमें हमेशा ईश्वरकी मददकी जरूरत है और जब हम शुद्ध अन्तःकरणसे उनकी प्रार्थना करें तभी उनकी मदद मिलती है और उनकी मदद तथा उसकी कृपा-से ही हमारे सब काम सिद्ध होते हैं इसमें कुछ भी शक नहीं। इसलिये अब हमें यह जानना चाहिये कि

ईश्वरकी कृपा पानेका रास्ता क्या है?

इसके लिये श्रीकृष्ण भगवानने अर्जुनसे कहा है कि—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शांतिस्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥
अ० १८ श्लो० ६२

हे अर्जुन! सब तरहसे अर्थात् तनसे, मनसे, धनसे, वचनसे, कर्मसे और आत्मासे उसकी शरण जा तब तुझ पर उसकी कृपा होगी जिससे तू परम शान्ति पावेगा और फिर तुझे ऐसा स्थान मिलेगा जिसका कभी नाश नहीं।

अब विचारने योग्य बात है कि जिसकी कृपासे परम शान्ति मिलती है और अविनाशी स्थान मिलता है उसकी कृपासे दुनियादारीके हमारे छोटे बड़े काम हो जायं तो इसमें क्या आश्चर्य है? याद रहे कि यह सब परम कृपालु पवित्र पिता महान परमात्माकी शरण जानेसे ही होता है। इसलिये अब हमें यह जानना चाहिये कि प्रभुकी शरण जानेसे जो इतना बड़ा लाभ होता है उसका कारण क्या है। किस नियम द्वारा शरण जानेसे इतना बड़ा लाभ होता है।

इसके उत्तरमें महात्मा लोग कहते हैं कि प्रभुकी शरण जानेवाले हरिजन निष्काम कर्म करना सीखते हैं और निष्काम कर्म सीखनेकी पहली पैड़ी कोई काम करते समय पहले परमात्माकी प्रार्थना करनेकी आदत डालना है। इसलिये हमें कोई शुभ काम शुरू करते समय पहले परम कृपालु परमात्माकी शरणका बल रखकर उसकी प्रार्थना करनी चाहिये, क्योंकि प्रार्थना निष्काम कर्मके रास्तेमें दाखिल होनेका दरवाजा है। निष्काम कर्मसे कितना भारी लाभ होता है और मौजमें तथा संसारकी आसक्तिमें ही पड़े रहनेसे कितना बड़ा नुकसान होता है—इसके बारेमें प्रभुने कहा है कि—

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥

अ० २ श्लो० ४४

भोग करनेमें और नामवरी लेनेमें जो आसक्त होगये हैं

और इसीमें जिनका चित्त लिपट गया है उन उपाधिवालोंकी बुद्धि ईश्वरका ध्यान करनेमें नहीं लग सकती।

क्योंकि—

व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनंदन।
बहुशाखा ह्यनंताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्॥

अ० २ श्लो ४१

हे अर्जुन! जो ऐसी उपाधिवाले होते हैं उनकी बुद्धि बहुत चंचल होती है, बहुत शाखाएंवाली होती है और अनेक प्रकारकी होती है। पर जो निष्काम कर्म्म करनेवाला होता है उसकी बुद्धि एक ही निश्चयवाली होती है।

इससे परिणाम जो होता है वह सुनिये—

निष्काम कर्म्म करनेसे लाभ।

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्म्मस्य त्रायते महतो भयात्॥

अ० २ श्लो० ४०

जो एक ही निश्चयवाली बुद्धिसे निष्काम कर्म्म करता है उसका किया हुआ कुछ भी व्यर्थ नहीं जाता। इसके सिवा उसमें कुछ दोष [नहीं] लगता और उसने बहुत थोड़ा किया हो तो भी वह उसके कारण भारी भयसे बच जाता है।

बन्धुओ! यह कह कर—यह कबूलियत देकर भगवान हमको यह समझाते हैं कि मुझे बीचमें रखे बिना तुम जो कोई काम करोगे वह फलीभूत नहीं होने का। परन्तु मुझे बीचमें रखकर काम करोगे अर्थात् मेरा नाम लेकर, मेरी मदद माँग कर, मुझे अर्पण करके, मुझमें मन रखकर और मेरे लिये या और किसी प्रकार मुझे बीचमें रखकर काम

करोगे तो मेरी शरणके बलसे, मेरे प्रभावके बलसे तथा मेरी कृपाके बलसे तुममें नया जीवन आवेगा। इससे तुम्हारा आत्मिक बल खिलेगा; तब तुम अपनी वर्तमान शक्तिसे कहीं अधिक कर सकोगे और अधिक जान सकोगे। और अगर तुम थोडा करोगे तो भी मैं उसको बहुत मान लूँगा; क्योंकि तुम मुझे बीचमें रखते हो, मुझे याद करते हो, मेरा मान रखते हो और मेरी मदद मांगते हो। इसलिये मैं तुम्हारी मदद जरूर करूँगा। और सो भी तुम्हारी छोटी छोटी मांगोंका ख्याल करके नहीं, तुम्हारी मेरी तरफकी लापरवाहीका ख्याल करके नहीं, तुम्हारी ढिलाईका ख्याल करके नहीं और तुम्हारे विकार, तुम्हारी नालायकी, तुम्हारे स्वार्थ और तुम्हारी भूलका ख्याल करके नहीं—अगर इन सबका ख्याल करूँ तब तो तुम्हें मदद देनेके बदले सख्त सजा ही देनी चाहिये, पर ऐसा न करके—अपनी प्रभुताका ख्याल करके मैं तुम्हारी मदद करूँगा। इससे तुमको अपने छोटे कामोंका भी बहुत बड़ा फल मिल जायगा जिससे तुम्हारा किया हुआ कुछ भी व्यर्थ नहीं जायगा और तुमको कुछ भी अड़चल नहीं पडेगी। तुम मुझे बीचमें रखते हो, इसलिये तुम्हारे भूल भरे कामोंको भी सुधार लेना, तुम्हारे अधूरे कामोंको भी पूरा कर देना और तुम्हारे छोटे कामोंको भी बड़ा मान लेना ही मेरी प्रभुता है।

निष्काम कर्म सीखनेकी पहली पैड़ी प्रार्थना है।

बन्धुओ! सोचिये कि क्या ऐसा नहीं हो सकता? जरूर हो सकते हैं। क्योंकि हम जब प्रभुकी प्रार्थना करते हैं, और उसकी मदद माँगते हैं तब परम कृपालु पिता हमारी

पोलके सामने नहीं देखते बल्कि अपनी प्रभुताके सामने देखते हैं। इससे जैसे कोई भिखारी बड़े आदमीसे अधेला मांगता हो तो बड़ा आदमी अपने दयालु स्वभावके अनुसार उस भिखारीको चवन्नी, अठन्नी या रुपया दे देता है वैसे परम कृपालु पिता महान परमात्मा निष्काम कर्मके बदलेमें हमारी प्रार्थनासे भी कहीं अधिक दे देता है। क्योंकि उस दयालुकी दया अटूट है; उस प्रेमस्वरूपका प्रेम अथाह है; उस परोपकारीका उपकार अपार है; उस महात्माका मन महा उदार है; उस ऋद्धिसिद्धिके मालिकका खजाना कभी घटनेवाला नहीं है; उसका स्वभाव ही ऐसा है कि वह प्राणियोंकी प्रार्थना स्वीकार करनेमें ही प्रसन्न होता है; उस आनन्द स्वरूपको सबको अनान्द देनेमें ही आनन्द है और वह कृपाका महासागर सब जगह अपनी कृपाकी लगातार वर्षा किया ही करता है। जिसने ऐसे महान प्रभुकी शुद्ध अन्तःकरणसे प्रेमपूर्वक, प्रार्थना करके उसको अपने कामोंके बीचमें रखा हो उसका किया हुआ कुछ भी व्यर्थ न जाय; उसके काममें विघ्न न पड़े और उसके छोटे कामोंका भी बड़ा फल मिले तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? जरूर ऐसा होता है। क्योंकि इसमें अपनी कुछ बलिहारी नहीं है बल्कि प्रभुकी ही प्रभुता है। याद रहे कि यह सब निष्काम कर्मका ही फल है। परन्तु जब हम पहले पहल भक्तिमें लगते हैं तब शुरूमें हमें निष्काम कर्म करना नहीं आता और हममें ऐसा बल भी नहीं आया रहता। इससे पहले प्रभुकी प्रार्थना करके तब हमें अपना काम आरम्भ करना चाहिये। क्योंकि कोई काम आरम्भ करनेसे पहले ईश्वरको याद करना और उसकी मदद माँगना यानी प्रार्थना करना निष्काम कर्म सीखनेकी पहली सीढ़ी है। कोई भी

शुभ काम शुरू करनेसे पहले परम कृपालु पिता परमात्माकी प्रार्थना करनेकी आदत डालिये और जब कोई काम उसकी कृपासे पूरा हो तब उसका उपकार माननेके लिये प्रार्थना कीजिये । अन्तःकरणसे की हुई प्रार्थनाके बलसे ईश्वरकी कृपा आप पर उतरेगी जिससे आपका किया हुआ कोई भी काम व्यर्थ नहीं जायगा, उसमें कुछ भी विघ्न नहीं पड़ेगा और छोटे कामोंका भी बहुत बड़ा फल मिल जायगा । इसलिये कोई काम शुरू करते समय पहले प्रेमपूर्वक प्रभुकी प्रार्थना कीजिये और कोई शुभ काम पूरा हो तब हृदयकी उमंगसे ईश्वरका उपकार मानिये, हृदयकी उमंगसे ईश्वरका उपकार मानिये ।

प्रार्थना करनेका दूसरा कारण ।

पहले परमात्माकी प्रार्थना करके पीछे काम शुरू करनेसे उस काममें विघ्न नहीं पड़ता, वह काम अगर अधूरा रहे तो उतनेका भी फल मिलता है, व्यर्थ नहीं जाता और थोड़ा किया हो तो भी उसको प्रभु बहुत मान लेते हैं । इसलिये हमें प्रेमपूर्वक प्रभुकी प्रार्थना करनी चाहिये । प्रार्थना करनेका यह पहला कारण है । प्रार्थना करनेका दूसरा कारण यह है कि हमारे पवित्र धर्मका सबसे उत्तम और महान विधान ही ऐसा है कि—

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते सङ्गोऽस्त्वकर्मणि ॥

अ० २ श्लो० ४७

कर्म करनेका ही तुझे अधिकार है, उसका फल पानेकी इच्छा रखनेका तुझे अधिकार नहीं है । इसलिये तू कर्मका

फल पानेका उद्देश मत रख और न कर्मोंको छोड़ देनेका ही हठ कर।

क्योंकि "कृपणाः फलहेतवः" फलकी इच्छा रखनेवाले कृपण हैं अर्थात् लोभी हैं, दीन हैं, गरीब हैं, नीच हैं। इसलिये आप फलकी इच्छा मत रखिये। जो फलकी इच्छा रखता है उससे प्रभुकी प्रसन्नताके लिये निष्काम कर्म नहीं हो सकता। इसके सिवा जो फलकी इच्छा रखता है वह सुख दुःखमें, नफा नुकसानमें या हार-जीतमें समता नहीं रख सकता। परन्तु प्रभुका यही हुक्म है कि अच्छे या बुरे हर एक प्रसङ्गमें हरिजनको समता रखनी ही चाहिये। इतना ही नहीं ऐसी समता रखनेका नाम ही योग है। इसके लिये प्रभु कहते हैं कि—

योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनंजय।
सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते॥

अ० २ श्लो० ४८

हे अर्जुन! समता रखने का नाम ही योग है। इसलिये इस योगमें रहकर, आसक्ति छोड़कर, और काम बने तो भी ठीक और न बने तो भी ठीक यों दोनों बातोंमें समान भाव रखकर कर्म कर।

बन्धुओ! हमारे महान धर्ममें ऐसी उत्तमसे उत्तम आज्ञाएं हैं, यही हमारे पवित्र धर्मकी श्रेष्ठता है। परन्तु वह उत्तमता मालूम हो जाने पर भी यह प्रश्न खड़ा होता है कि—

ऐसी समता कैसे आती है ? और कब रहती है ?

इसके उत्तरमें महात्मा लोग कहते हैं कि जब अपने कर्म प्रभुके अर्पण कर दें तब ऐसी समता रह सकती है। हमारे

श्रेष्ठ धर्मका पवित्र हुक्म यह है कि अपने कर्म्म प्रभुके अर्पण करना ही चाहिये । इसके लिये प्रभुने कहा है कि—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥

अ० ९ श्लो० २७

हे अर्जुन ! तू जो कुछ काम कर, जो कुछ खा, जो होम कर, जो कुछ किसीको दे और तू जो तप कर वह सब मेरे अर्पण कर । यह हमने जाना कि ये सब कर्म्म प्रभुके अर्पण करना चाहिये परन्तु जब तक इसको खूब अच्छी तरह न समझें तब तक इतना अधूरा जाननेसे कुछ सच्चा लाभ नहीं मिलता। इसलिये अब हमें यह जानना चाहिये कि ये सब कर्म्म किस तरह प्रभुके अर्पण किये जा सकते हैं । इसका खुलासा करते हुए प्रभु कहते हैं कि—

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्त सततं भव ॥

अ० १८ श्लो० ५७

मनसे सब कर्म्म मुझे सौंप कर मेरे भरोसे रह और हमेशा मेरा ध्यान करते हुए बुद्धिपूर्वक कर्म्म कर ।

अगर ऐसा करेगा तो—

मच्चित्त- सर्वदुर्गाणि मत्प्रसादात्तरिष्यसि ।
अथ चेत्त्वमहंकारान्न श्रोष्यसि विनंक्ष्यसि ॥

अ० १८ श्लो० ५८

मेरा ध्यान रखनेसे तू सब कठिनाइयोंसे पार पा जायगा। अहंकारके कारण अगर तू मेरा कहना नहीं मानेगा तो तेरा नाश होगा ।

भाइयो ! प्रभुका यह हुक्म और प्रभुकी यह कबूलियत

बहुत उत्तम और बड़े महत्वकी है। हमें उसका और रहस्य ढूँढ़ना चाहिये। ढूँढ़नेसे हमें जान पड़ता है कि प्रभुको अपने कर्म अर्पण करना चाहिये, परन्तु प्रभुके हाथोंमें कर्म नहीं सौंपे जा सकते। सौंपनेकी रीति यह है कि हमें अपने मनसे कर्मके फलकी आसक्ति निकाल डालना चाहिये और मनकी भावनासे कर्म ईश्वरको सौंप देना चाहिये। फिर अपने मनकी परीक्षा लेनी चाहिये कि उसने अपने कर्म ईश्वरके अर्पण किये हैं कि नहीं। परीक्षाकी रीति यह है कि मन द्वारा सब कर्म प्रभुको सौंप देनेके बाद उसके भरोसे रहना चाहिये। याद रहे कि कर्मके फलकी इच्छा न हो और भगवानके भरोसे रहा जाय तभी हमारे कर्म ईश्वरके अर्पण हुए समझे जायंगे। अगर भरोसा न रहे और कर्मका फल पानेकी इच्छा हुआ करे तो समझ लेना कि अभी हमारे कर्म ईश्वरके अर्पण नहीं हुए हैं।

किस तरह कर्म करना चाहिये ?

इसके सिवा इस श्लोकमें यह बात भी समझने योग्य है कि अपने कर्म ईश्वरके अर्पण कर देनेसे हम कुछ और नये कर्म करनेके कर्त्तव्यसे छूट नहीं जाते, कर्त्तव्य तो पूरा करना ही चाहिये। परन्तु उसमें सम्हाल इतनी बातकी रखनी है कि जो करें वह बुद्धिपूर्वक करना चाहिये, विवेक बुद्धिसे करना चाहिये, विचार विचार कर करना चाहिये, ऊंचे उद्देशसे करना चाहिये और ईश्वरका स्मरण करते करते करना चाहिये। क्योंकि प्रभुका हुक्म ही ऐसा है कि बुद्धि-योगका आश्रय लो। और योगका अर्थ ही प्रभु हमें यह सिखाते हैं कि "समत्व योग उच्यते" समता रखनेका नाम योग

है तथा "योग कर्मसु कौशलम्" कर्ममें कुशलता रखनेका नाम योग है। इसलिये अपना कर्म ईश्वरके अर्पण करनेके बाद भी बुद्धिमानीसे दूसरे नये कर्म करना चाहिये। इसमें खास ध्यान इस बातका रखना जरूरी है कि प्रभुका ध्यान करते करते कर्म करना चाहिये। अगर ऐसा करना आवे अर्थात् कोई काम करते समय प्रभुका नाम लिया जाय, प्रभुका स्मरण किया जाय, प्रभुका उपकार याद आवे, प्रभुमें ध्यान रहे या प्रभुकी प्रार्थना हो तो प्रभु प्रतिज्ञा करते हैं कि मेरी कृपासे तुम्हारी सब कठिनाइयां मिट जायंगी। इसलिये इस समय और कुछ अधिक न बने तो कोई काम शुरू करते समय पहले जरा ईश्वरकी प्रार्थना जरूर कर लेनी चाहिये और हर रोजके छोटे काम करते समय भी पहले उनका नाम ले लेना चाहिये। ऊपर जो अर्पणविधि बताथी है वह अर्पणविधि सीखनेकी पहली पैड़ी ईश्वर-प्रार्थना है। इसके सिवा प्रार्थनासे और कई प्रकारके लाभ होते हैं। इसलिये सब देशोंमें सब समय सब भक्त कोई भी काम शुरू करते समय पहले प्रेमपूर्वक ईश्वरकी प्रार्थना करते हैं और काम पूरा होने पर नम्रतापूर्वक ईश्वरका उपकार मानते हैं। इस विषयके सैकड़ों दृष्टान्त हैं। परन्तु हम दूर क्यों जायं? जिसके आधार पर यह पुस्तक लिखी जाती है उस-श्रीमद्भगवद्गीतासे भाग्यशाली अर्जुनका ही दृष्टान्त लेना चाहिये।

अर्जुनका मोह।

कौरवोंसे महाभारतकी लड़ाई छेड़ते समय कुरुक्षेत्रके मैदानमें जब अर्जुनको यह मोह हुआ कि इन सब सगे सम्बन्धियोंको मैं क्यों मारूं; वे मुझे भले ही मार डालें परन्तु मैं

उनको मारना नहीं चाहता—यह कह कर वह निराश होगये, रो पड़े और हाथसे धनुष बाण फेंक कर अपना कर्त्तव्य पूरा करनेसे, अपना धर्म पालनेसे इनकार करने लगे तब प्रभुने कहा कि हे अर्जुन! ऐसा हिजड़ापन तुझमें कहांसे आया? ऐसी आफतके वक्त ऐसा मोह तुझे क्योंकर हुआ? अपकीर्ति करानेवाले और स्वर्गमें जानेसे रोकनेवाले ऐसे मोहमें कोई भलामानस नहीं पड़ा रहता। इसलिये हे महातपवाला अर्जुन! ओछे हृदयकी कमज़ोरी छोड़कर तू अपना धर्म पालनेको, अपना कर्त्तव्य पूरा करनेको खड़ा हो। इसके उत्तरमें अर्जुनने कहा कि पूजा करने योग्य गुरुओंको मैं बाण क्योंकर मारू? उनको मारकर लहू भरा सुख भोगनेसे भीख मांगकर खाना कहीं अच्छा है। फिर यह भी कोई नहीं जानता कि हम जीतेंगे कि कौरव जीतेंगे; मेरा कल्याण किसमें है यह भी मैं नहीं जानता और कौरवोंको मारकर मैं जीना नहीं चाहता। इसके सिवा सारी पृथ्वीका समृद्धिवाला निष्कंटक राज्य मिले तथा देवताओंका अधिकार मिले, तो भी मुझे ऐसा कोई उपाय नहीं दिखाई देता कि जिससे मेरी इन्द्रियोंको सुखा देने वाला शोक मिटे।

अर्जुनकी कठिनाइयां।

बन्धुओ! उस समयकी अर्जुनकी कठिनाइयां तो देखिये! एक ओर उसे मारनेको हथियार उठाकर ग्यारह अक्षौहिणी शत्रु उसके सामने खड़े हैं; दूसरी ओर कुलकी इज्जत आबरू उसके ऊपर है; तीसरी ओर पाण्डवोंकी सात अक्षौहिणी सेनाका भार उसके ऊपर है और वह सेना उसके हुक्मकी बाट देख रही है; चौथी ओर मा (कुन्ती) भाई (भीम)

लड़के (अभिमन्यु) और स्त्रीको वैर लेनेकी दृढ़ इच्छा है; पांचवीं ओर गुरुओं और दुश्मनों पर उसे दया आ गयी है; छठी ओर प्रभु हुक्म देता है कि "तू अपना कर्तव्य पूरा कर" और सातवीं ओर उसका मन यह कर्त्तव्य पूरा करनेसे एक दम इनकार करता है। ये सब कष्ट कुछ ऐसे वैसे नहीं हैं। इससे अर्जुन परेशान है, क्या करना चाहिये उसे कुछ सूझता नहीं। भाइयो! इसका सवां या हजारवां भाग कष्ट भी हमें हो तो हमारा कैसा बुरा हाल होता है जरा विचार कीजिये। हम तो उस कष्टकी फिक्र ही फिकरमें हाय हाय करके मर जायं। अर्जुन भक्त है, भगवानका मित्र है, इससे ऐसी महा-कठिनाईके समय भी उसको एक सहज उपाय मिल जाता है और उस उपायके बलसे अन्तको वह सब आफतोंसे छूट जाता है।

महा कठिनाइयोंसे छूटनेका उपाय।

वह उपाय क्या है? वह उपाय बड़ा सहज है, सबसे हो सकता है और उस उपायके बलसे जैसे अर्जुनने महाभारतके युद्धमें बहुत बड़ी विजय पायी वैसे वह उपाय आजमानेसे हम अपनी हैसियतके अनुसार बड़ी विजय पा सकते हैं। वह उपाय कुछ छिपा हुआ नहीं है, वह उपाय किसीका मौरूसी नहीं है, यह उपाय खास अपना बना रखने लायक नहीं है और यह उपाय कुछ नया नहीं है, बल्कि वह तो ढोल बजाकर कहने योग्य जगजाहिर उपाय है। वह है "प्रार्थना"। परम कृपालु पवित्र महान ईश्वरकी प्रार्थना करनेसे सब तरहके दुःखोंसे बच सकते हैं। इसलिये ऐसी आफतके वक्त आंसू गिराते हुए लड़ाईके मैदानमें खड़े खड़े भी अर्जुन श्रीकृष्ण भगवानकी प्रार्थना करते हैं कि

कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः पृच्छामि त्वां धर्मसंमूढचेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ॥
अ० २ श्लो० ७

हे प्रभु ! मैं तुम्हारा शिष्य हूँ और तुम्हारी शरण आया हूँ, इसलिये मुझे रास्ता बताओ, क्योंकि मैं अपने मनकी कमज़ोरीके कारण हकाबका सा हो गया हूँ इससे धर्मका रास्ता समझनेमें मेरा चित्त बड़ा मूढ़ हो गया है। मैं पूछता हूँ कि मेरा कल्याण किसमें है यह मुझे ठीक ठीक कहो।

अर्जुनकी प्रार्थनासे ही गीताकी उत्पत्ति हुई है।

जब अर्जुनने इस प्रकार जी खोल कर तहेदिलसे प्रार्थना की तब प्रभुने प्रसन्न होकर तुरत ही हँसते हँसते उत्तर दिया कि हे अर्जुन ! तू बातें तो ज्ञानकी कहता है और जिसका शोक न करना चाहिये उसका शोक करता है। परन्तु जो चतुर आदमी हैं वे मरे हुएका शोक नहीं करते और जीते हुएका भी अफसोस नहीं करते। यह कहकर प्रभुने उपदेश देना आरम्भ किया और उसीसे गीता हुई। याद रहे कि यह सब अर्जुनकी प्रार्थनासे ही हुआ है।

इसके बाद श्रीकृष्ण भगवानने दूसरे अध्यायमें आत्माका स्वरूप समझनेका ज्ञानयोग तथा निष्काम कर्म करनेका कर्मयोग अर्जुनको समझाया। पर इन दोनों रास्तोंमें उत्तम रास्ता कौन है यह अर्जुनकी समझमें नहीं आया। इससे वह नम्रतापूर्वक प्रभुकी प्रार्थना करते करते पूछने लगे कि—

ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्दन ।
तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥
अ० ३ श्लो० १

हे अज्ञानको मिटानेवाले ! अगर तुम मानते हो कि

दुनियादारीके कामसे ईश्वरी ज्ञान प्राप्त करना, उत्तम है तो हे आनन्द देनेवाले प्रभु ! तुम मुझे यह पापका काम करनेके लिये क्यों कहते हो ?

व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।
तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम् ॥

अ० ३ श्लो० २

हे प्रभु ! तुम कभी कर्मका बखान करते हो और कभी ज्ञानका बखान करते हो, परन्तु ऐसे गड़बड़ वचनोंसे मेरी बुद्धि मोहमें पड़ जाती है। इसलिये ऐसी कोई बात निश्चय करके कहो कि जिससे मेरा कल्याण हो।

इस प्रकार अर्जुनने जिज्ञासुओंके योग्य दीनतापूर्वक प्रार्थना की। तब दयालु प्रभुने वारवार जुदी जुदी रीतियोंसे और जुदी जुदी युक्तियोंसे अर्जुनको ज्ञानयोग तथा कर्मयोग समझाया।

इसके बाद छठे अध्यायमें योगकी और योगियोंकी स्थिति-का हाल सुनकर अर्जुनको यह शंका हुई कि जिसका योग अधूरा रहे उसकी क्या दशा होती है ? यह जाननेके लिये भी अर्जुन प्रार्थना करते हैं कि

एतन्मे संशयं कृष्ण छेत्तुमर्हस्यशेषतः ।
त्वदन्यः संशयस्यास्य छेत्ता न ह्युपपद्यते ॥

अ० ६ श्लो० ३९

हे आकर्षण करने और आनन्द देनेवाले प्रभु ! मेरे इस संशयको पूरा पूरा दूर करने योग्य तुम्हीं हो, तुम्हारे सिवा और किसीसे यह संशय नहीं टल सकता।

अर्जुनकी प्रार्थनामें प्रभु पर उसका बेहद विश्वास, प्रभु-की उसके दिलमें बेहद इज्जत, सत्य समझनेकी उसकी प्रबल

इच्छा और ऊँचे दरजेके भक्त योग्य अनन्य भाव स्पष्ट रीतिसे दिखाई देता है।

बन्धुओ ! भक्तवत्सल भगवानसे ऐसी उत्तम प्रार्थनाका उत्तर दिये बिना कैसे रहा जाय ? नहीं रहा जा सकता। इससे जैसी तीव्र रुचिसे अर्जुन प्रार्थना करते हैं वैसी ही तीव्र रुचिसे प्रेमपूर्वक प्रभु भी उत्तर देते हैं कि

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ॥

अ० ६ श्लो० ४०

भैया ! भलाई करनेवाले किसी आदमीकी बुरी गति नहीं होती। इतना ही नहीं हे अर्जुन ! उसका इस लोकमें भी नाश नहीं होता और परलोकमें भी नाश नहीं होता।

इसके बाद अर्जुनको यह जाननेकी इच्छा हुई कि त्याग और संन्यासमें क्या भेद है। इससे वह अठारवें अध्यायके पहले ही श्लोकमें प्रार्थना करते हैं कि

सन्यासस्य महाबाहो तत्त्वमिच्छामि वेदितुम् ।
त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्केशिनिषूदन ॥

अ० १८ श्लो० १

हे बहुत बलवाले ! हे इन्द्रियोंको जीतनेवाले ! हे दुष्टोंका संहार करनेवाले ! संन्यास क्या है और त्याग क्या है ? इन दोनोंके जुदे जुदे तत्त्व मैं जानना चाहता हूँ।

प्रश्न पूछनेमें अर्जुन की खूबी ।

हरिजनोंको प्रसङ्गवश ऐसी शंका होना स्वाभाविक है परन्तु इसमें अर्जुनकी खूबी यह है कि वह प्रश्न पूछते हुए भी प्रभुके गुण गाते जाते हैं, गहराईमें उतरते हुए भी

हौसला दिखाते जाते हैं, निराश होते हुए भी गहरा प्रेम दिखाते हैं और ऊँचे चढते हुए भी दीनतासे झुकते जाते हैं। इसी कारणसे उनकी शंकाएँ जानने योग्य हैं; इसी कारणसे उनकी प्रार्थनामें रस है और इसी कारण प्रभु प्रार्थनाका लगे हाथ उचित उत्तर देते हैं। इसलिये जिसने अपने रथकी लगाम प्रभुको सौंप दी है उस महा भाग्यशाली अर्जुनकी की हुई स्तुति तथा प्रार्थनाएँ हम जितनी अधिक जानें उतना ही अच्छा है; क्योंकि इससे हम प्रभुकी महिमा तथा प्रार्थनाओंका बल समझ सकते हैं और नया जीवन प्राप्तकर अपनी जिन्दगी सुधार सकते हैं। इसलिये अब दसवें अध्यायमें अर्जुन कैसी प्रार्थना करते हैं सो सुनिये।

अर्जुनकी स्तुति।

दसवें अध्यायमें आरम्भके ग्यारह श्लोकोंमें प्रभुने अपनी महिमाकी, अपने ऐश्वर्यकी और भक्तोंका उद्धार करनेके लिये उन पर अपने प्रेमकी बातें कहीं जिससे अर्जुन बहुत प्रसन्न हुए और उन्हें ईश्वरका और अधिक ऐश्वर्य विस्तार-पूर्वक जाननेकी इच्छा हुई जिससे वह स्तुति करने लगे कि

पर ब्रह्म पर धाम पवित्रं परम भवान् ।
पुरुष शाश्वत दिव्यमादिदेवमज विभुम् ॥
आहुस्त्वामृषय सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ।
असितो देवलो व्यास स्वय चैव ब्रवीषि मे ॥

अ० १० श्लो० १२–१३

हे प्रभु ! सब ऋषियोंने, देवर्षि नारदने, असितने, देवलने और व्यासने कहा है, कि तुम परब्रह्म हो, तुम सब जीवोंके ठहरनेके स्थान हो, तुम बिना जन्मके हो और तुम प्रभु हो; तुम स्वयं भी मुझसे ऐसा ही कहते हो।

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव।
न हि ते भगवन्व्यक्तिं विदुर्देवा न दानवा.॥

अ० १० श्लो० १४

हे शिव ब्रह्मादिको भी आनन्द देनेवाले! तुम जो कुछ मुझसे कहते हो वह सब मैं सत्य मानता हूँ, क्योंकि हे भगवान! तुम्हारे प्रकाशित स्पष्ट रूपको देवता या दानव भी नहीं जानते।

स्वयमेवात्मनात्मान वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम।
भूतभावन भूतेश देवदेव जगत्पते॥

अ० १० श्लो० १५

हे पुरुषोत्तम! हे पृथ्वी, पानी, पवन, अग्नि, आकाश आदि सब तत्वोंको उत्पन्न करनेवाले! हे प्राणियोंके ईश्वर! हे देवोंके भी देव! और हे जगत्के पति! तुम आप अपनेको अपने द्वारा ही जानते हो। अर्थात् आत्मा द्वारा ही आत्माको जानते हो।

प्रभुकी महिमा सुनकर स्वाभाविक रीति पर हृदयकी उमंगसे निकली हुई यह स्तुति करनेके बाद उनकी और महिमा समझनेके लिये अब वह प्रार्थना करते हैं।

अर्जुनकी प्रार्थना।

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्या ह्यात्मविभूतय.।
याभिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्व व्याप्य तिष्ठसि॥

अ० १० श्लो० १६

तुम अपने जिस ऐश्वर्य द्वारा इस जगतमें व्याप रहे हो उस प्रकाशित दैवी ऐश्वर्यको पूरा पूरा तुम्हीं कह सकते हो। इसलिये,

कथं विद्यामहं योगिंस्त्वां सदा परिचिन्तयन्।
केषु केषु च भावेषु चिन्त्योऽसि भगवन्मया॥

अ० १० श्लो० १७

हे योगीराज! मैं तुमको किस तरह जान सकता हूँ? तुम्हारा सदा चिन्तन कैसे कर सकता हूँ? और हे भगवन्! मैं किस किस भावसे तुम्हारा चिन्तन करूँ?

विस्तरेणात्मनो योगं विभूतिं च जनार्दन।
भूयः कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतम्॥

अ० १० श्लो० १८

हे प्रभु! तुम्हारे अमृत समान वचन सुनकर मुझे तृप्ति नहीं होती; इसलिये अपनी महिमा तथा अपना योग अर्थात् तुमको पानेकी जो रीति है उसे मुझसे फिर विस्तारपूर्वक कहो।

हमें किस प्रकारकी प्रार्थना करनी चाहिये?

अर्जुनकी इस प्रार्थना पर भगवानने बहुत विस्तारके साथ अपनी मुख्य मुख्य विभूतियाँ कहीं। क्योंकि भक्तवत्सल भगवान भक्तकी सच्चे दिलकी पवित्र प्रार्थनाओंको कभी व्यर्थ नहीं जाने देते। और उनमें भी जो प्रार्थना धर्म सम्बन्धी है, परमार्थकी है, अपना फ़र्ज़ पूरा करनेकी है और प्रभुके प्रीत्यर्थ है उसका तो तुरत ही उत्तर मिलता है। अगर शीघ्र उत्तर दरकार हो तो अर्जुनकी तरह धर्म रहस्य जानने की, आत्माका कल्याण चाहनेकी और परम श्रेय होनेकी ही प्रार्थना करनी चाहिये। जैसे, ये प्रार्थनाएँ करते समय अर्जुन लड़ाईके मैदानमें था, ग्यारह अक्षौहिणी शत्रु उसको मार डालनेके लिये उसके सामने खड़े थे; भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, जयद्रथ और दुर्योधन आदि

समर्थसे समर्थ योद्धा कड़ीसे कड़ी प्रतिज्ञाएँ करके हथियार उठाये उसके सामने खड़े थे और एक ओर निज कुलका नाश और दूसरी ओर भरतखण्डका राज्य उसके सामने था। ऐसी बेढब हालत होने पर भी और ऐसी भयंकर आफतके मुँहमें खड़े रहने पर भी वह अपने स्वार्थकी प्रार्थना नहीं करता, अपने दुश्मनोंको मारनेकी प्रार्थना नहीं करता, राज्य पानेकी प्रार्थना नहीं करता और ऐसे जोखिमसे बचनेकी प्रार्थना नहीं करता; बल्कि धर्मका रहस्य समझनेकी, प्रभुकी महिमा समझनेकी, प्रभुका स्वरूप जाननेकी और अपना अन्तिम कल्याण किसमें है यही जाननेकी प्रार्थना करता है। इसीसे उसकी प्रार्थना शीघ्र स्वीकृत होती है और तुरत ही उसका उत्तर मिलता है। इसलिये अपनी प्रार्थनाएँ जल्द मंजूर करानी हो तो हमें भी अर्जुनकी तरह अपनी लगाम प्रभुके हाथमें सौंप देनी चाहिये और अर्जुनकी तरह दुःखमें भी धीरज रखकर ऊँचे दरजेकी प्रार्थनाएँ करना सीखना चाहिये। अगर ऐसा करना आवे तो हमारी कोई प्रार्थना व्यर्थ न जाय।

अर्जुनकी की हुई बहुत उत्तम प्रकारकी स्तुति।

इसके बाद अर्जुनकी प्रार्थना पर प्रभुने उसको अपना विराट स्वरूप दिखाया। उसे देखकर अर्जुनको जो आश्चर्य हुआ, जो भय हुआ और जो आनन्द हुआ उसकी उमंगमें स्वभावतः उससे स्तुति तथा प्रार्थना हो गयी। उस स्तुति तथा प्रार्थनाकी जरूरत तथा उसका रहस्य समझनेके लिये हम इस लेखमें उत्तम दृष्टान्त तथा नमूनेके तौर पर उस स्तुति और प्रार्थनाको लेते हैं। वह यह है—

स्थाने हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत्प्रहृष्यत्यनुरज्यते, च ।
रक्षांसि भीतानि दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥

अ० ११ श्लो० ३६

हे प्रभु ! तुम्हारी अतिशय कीर्ति सुनकर जगतके लोगोंको बहुत प्रेम तथा बड़ा आनन्द होता है। इससे तुम्हारी महिमासे डरकर राक्षस जिधर तिधर भाग जाते हैं और समूचा सिद्ध समाज आनन्द पाकर प्रेम पूर्वक तुमको नमस्कार करता है। यह उचित ही है।

कस्माच्च ते न नमेरन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्यादिकर्त्रे ।
अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदसत्तत्परं यत् ॥

अ० ११ श्लो० ३७

हे महान आत्मावाले ! ये सब तुमको क्यों न नमस्कार करें ? तुम सबमें पहले हो। तुम ब्रह्माके भी बनानेवाले हो, तुम सबसे बड़े हो, तुम देवताओंके ईश्वर हो और तुममें यह जगत वास करता है। इससे तुम कार्यरूप हो तथा कारणरूप हो और तो भी कार्य कारणसे भिन्न हो और श्रेष्ठ हो। हे कभी न नाश होनेवाले ! तुम्हारा कोई पार नहीं पा सकता।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम त्वया ततं विश्वमनन्तरूप ॥

अ० ११ श्लो० ३८

हे प्रभु ! तुम सबसे पहले हो। तुम पुरानेसे पुराने हो। तुम देहमें तथा ब्रह्माण्डमें रहनेवाले हो। तुम अनेक प्रकारके रूप धारण कर सकते हो। तुम अपने अगाध तत्वमेंसे जरासा लेकर इस विश्वके अनन्त रूप बनानेवाले हो। तुम इस जगतके आधार हो। तुम सबको जाननेवाले हो। तुम सब

जीवोंके ठहरनेके स्थान हो और हे प्रभु! इस लोकमें तथा परलोकमें कुछ जानने योग्य है तो वह तुम्ही हो।

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते॥

अ० ११ श्लो० ३९

हे प्रभु! जिसके कारण जीवोंका प्राण टिका हुआ है वह वायु तुम हो। प्राणियोंका प्राण लेनेवाले यमराज तुम हो। जिसकी गर्मी बिना काम नहीं चलता वह अग्नि तुम हो, जिस पानी बिना जीया नहीं जा सकता उस पानीके देवता तुम हो। शांति देनेवाले, रस भरनेवाले अमृतरूप चन्द्रमा तुम हो। प्रजाको उत्पन्न करनेवाले प्रजापति ब्रह्मा तुम हो और परदादा भी तुम्ही हो। इसलिये मैं तुमको हजार बार नमस्कार करता हूँ और वारंवार फिर फिर कर नमस्कार करता हूँ। नमस्कार करता हूँ।

नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोपि ततोऽसि सर्वः॥

अ० ११ श्लो० ४०

हे प्रभु! तुम्हारा बल और तुम्हारा तेज अपार है, तुम्हारा पराक्रम असीम है और तुम सबमें हो तथा सब रूप हो। इसलिये हे प्रभु! मैं तुमको सामनेसे नमस्कार करता हूँ, पीछेसे नमस्कार करता हूँ और दसों दिशाओंसे नमस्कार करता हूँ।

पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समो ऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव॥

अ० ११ श्लो० ४३

जिसकी महिमाकी किसीके साथ तुलना नहीं हो सकती, ऐसे हे उपमारहित प्रभु! इस ब्रह्माण्डमें जिसका नाश नहीं

होता तथा जिसका नाश होता है उन सबके तुम पिता हो, सबके तुम पूज्य हो; सबके तुम गुरु हो और तुम सबसे बड़े हो। हे प्रभु! स्वर्ग, मर्त्य और पाताल इन तीनों लोकोंमें तुम्हारे समान और कोई नहीं है। तुमसे बढ़ कर तो कोई क्या होगा?

अपनी भूल कबूल करने तथा क्षमा मांगनेकी प्रार्थना।

परम कृपालु पिता परमात्माकी इस प्रकार स्तुति करते हुए अर्जुन ज्यों ज्यों उनकी महिमा समझते गये त्यों त्यों अपने हृदयसे गलते गये, इससे आज तक जो भूलें उनको दिखाई न देती थीं वे अब उन्हें दिखाई देने लगीं। वह अपनी भूलें कबूल करते हैं और उनकी माफी मांगनेके लिये प्रभुसे प्रार्थना करते हैं। इसके लिये कहते हैं कि—

सखेति मत्वा प्रसभं यदुक्तं हे कृष्ण हे यादव हे सखेति।
अजानता महिमानं तवेदं मया प्रमादात्प्रणयेन वापि॥

अ० ११ श्लो० ४१

हे प्रभु! तुम्हारे इस विश्व रूपको तथा तुम्हारी महिमा को मैं जानता न था पर इससे गलतीसे तथा यह मानकर कि जीव और ईश्वर दोनों भिन्न हैं, मैंने आपको न कहने योग्य वचन कहे हैं। जैसे हे कृष्ण अर्थात् काले, प्रपंची, स्वच्छन्दी, इत्यादि ओछे दरजेके; हे यादव अर्थात् साधारण मनुष्यके ऐसे, और हे सखा अर्थात् मेरे समान क्योंकि मेरा मित्र मेरे ही जैसा होता है; इसके बिना मित्रता कैसे हो सकती है? इस प्रकार जो मैंने अपने मनमें माना है और तुमसे कहा है वह सब तथा—

यच्चावहासार्थमसत्कृतोऽसि विहारशय्यासनभोजनेषु।
एकोऽथवाप्यच्युत तत्समक्षं तत्क्षामये त्वामहमप्रमेयम्॥

अ० ११ श्लो० ४२

हे चलायमान न होनेवाले और किसीके साथ तुलना न करने योग्य प्रभु! हंसते खेलते और सोते समय, उठते-बैठते, हंसी दिल्लगीमें, एकान्तमें और दूसरोंके सामने मैंने तुम्हारा जो कुछ अपमान किया है उन सब अपराधोंके लिये मैं क्षमा मांगता हूँ।

और क्षमा पानेके लिये वह दीनतापूर्वक प्रार्थना करते हैं

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्॥

अ० ११ श्लो० ४४

हे पूजने योग्य प्रभु! तुम्हारी कृपा पानेके लिये मैं अपने शरीरसे दण्डवत् करता हूँ; वाणीसे नमस्कार करता हूँ और हृदयमें तुम्हारा ध्यान धरते धरते तुम्हारे अर्पण हो जाता हूँ। इसलिये हे प्रकाश करनेवाले प्रभु! जैसे बाप अपने लड़केका अपराध सह लेता है वैसे तुम मेरे अपराध सह जाओ, क्योंकि तुम मुझे उत्पन्न करनेवाले मेरे पिता हो और मैं तुम्हारा लड़का हूँ। जैसे मित्र अपने मित्रका दोष सह लेता है और उसको क्षमा करता है वैसे तुम मेरे अपराध सह लो और मुझे क्षमा करो। जीव और ईश्वर दोनों मित्र हैं, इसलिये तुम मेरा कसूर माफ करो। और जैसे पति अपनी प्यारी पत्नीका अपराध सह लेता है और क्षमा कर देता है वैसे तुम मेरे अपराध क्षमा करो, क्योंकि तुम मालिक हो और मैं तुम्हारा दास हूँ। इसलिये हे प्रभु! सब प्रकार तुम मेरे अपराध क्षमा करनेके योग्य हो।

जब सोचा हुआ काम पूरा हो जाय तब उपकार मानने की प्रार्थना।

इस प्रकार हर एक प्रसङ्ग पर भक्तराज अर्जुनने भगवानकी प्रार्थना की है और उनकी हर एक शुभ प्रार्थना तुरंत ही पूरी हुई है। इसीसे वह आगे बढ़ सके हैं। अन्तको जब उन्हें सब ज्ञान मिल गया और गीता पूरी हुई तब भी वह प्रभुका ही उपकार मानते हैं और कहते हैं कि—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥

अ० १८ श्लो० ७३

हे चलायमान न होनेवाले प्रभु! तुम्हारी कृपासे मैं स्वस्थ हुआ, तुम्हारी कृपासे मेरा मोह मिटा, तुम्हारी कृपासे मेरा भूला हुआ ज्ञान मुझे फिर प्राप्त हुआ और तुम्हारी कृपासे मेरा संशय नष्ट हुआ। इसलिये अब मैं तुम्हारा कहना करूँगा।

गीता पढ़नेका फल क्या है?

भाइयो! गीताके अभ्यासका, शास्त्रके अभ्यासका, धर्मके अभ्यासका, महात्माओंके सङ्गका, जिन्दगीका कर्तव्य पूरा करनेका, ज्ञानके अनुभवका, अनन्य भक्तिका और आत्माके बलका फल देखा? अगर यह बात अब भी अच्छी तरह न समझी हो तो समझ लीजिये कि इन सबका या इनमेंसे जो एकाध अंग पूरा हुआ हो, उसका यही फल है कि तनसे, मनसे, धनसे, वचनसे और कर्मसे, सब प्रकार स्वस्थ हों अर्थात् किसी बातमें गफलत न करें। दूसरे जगतकी छोटी छोटी वस्तुओंके जिस मोहमें जीव पड़ा रहता है वह मोह न रखें। तीसरे, आत्माके बलका और परमात्माके स्वरूपका

भूला हुआ ज्ञान फिर प्राप्त करें और आत्माको उसके असली स्वरूपमें जाने दें। चौथे, मनमें जो जो संशय भरे रहते हैं और तर्क वितर्क हुआ करते हैं उन सबको सत्य ज्ञान तथा पूर्ण विश्वासके बलसे निकाल डालें। पाँचवें, शुद्ध अन्तःकरणसे यह समझें और मानें कि यह सब परम कृपालु पिता महान् परमात्माकी मददसे ही होता है। छठे, प्रभुकी आज्ञानुसार चलना स्वीकार करें। इस प्रकार बर्ताव करनेको सदा तय्यार रहें और समय आनेपर प्रभुकी आज्ञानुसार ही चलें। इसीका नाम ज्ञान है; इसीका नाम भक्ति है, इसीका नाम योग हैं और इसीका नाम धर्म है। जो इसके अनुसार चले वही भक्त, वही ज्ञानी और वही योगी कहलाता है। परन्तु इन सबका मूल है प्रभुकी महिमा समझकर उनके गुण गाना और इन सबके होनेके लिये उनकी मदद माँगना, उनकी प्रार्थना करना। यह मुख्यसे मुख्य और अन्तिमसे अन्तिम सातवाँ तत्त्व है। इसके लिये, जिस श्लोकमें यह सब रहस्य है उसी श्लोकमें गूढ़ रीतिसे अर्जुन प्रभुसे कहते हैं कि हे अच्युत अर्थात् हे चलायमान न होनेवाले प्रभु! मुझे ऐसी सद्बुद्धि दो कि 'मैं अपना धर्म पालनेमें, अपना कर्त्तव्य करनेमें, अपना ज्ञान बढ़ानेमें और तुम्हारी सेवा करनेमें चलायमान न होऊँ। ऐसा बल मुझे दो'। इसी उद्देशसे इस श्लोकमें अर्जुन प्रभुको अच्युत कहते हैं और उनसे यह बताते हैं कि तुम स्थिर रहनेवाले हो, तुम ऐसे हो कि 'चलायमान' नहीं होते, तुम बिना विकारके हो, तुम गिरने या घटनेवाले नहीं हो और तुम्हारा नाश नहीं होता। इसलिये तुम मुझे भी ऐसे गुण दो। क्योंकि दासभक्तिमें, सेव्य सेवक धर्ममें यही खूबी है कि जो गुण अपने इष्टमें, अपने प्रभुमें—अपने मालिकमें होता हैं

वही गुण सेवकमें, नौकरमें, दासमें—भक्तमें आ जाता है। जैसे, जो मालिक समृद्धिवाला होता है उसके नौकर भी समृद्धिवाले होते हैं; जो गुरु बड़ा ज्ञानी होता है उसके चेले भी ज्ञानी होते हैं; जो देवता सत्वगुणी होता है उसके भक्त भी सत्वगुणी होते हैं और जो प्रभु त्यागी होता है उसके सेवक भी त्यागी होते हैं। अर्जुनका प्रभु अच्युत अर्थात् चलायमान न होनेवाला है इसलिये इस नामसे पुकार कर अर्जुन उससे यह आशा रखता है—ऐसी प्रार्थना करता है कि ऊपर कहे छः विषयोंमें डंटे रहनेका बल मुझे दो। महाभारतसे हम जान सकते हैं कि यह बल अर्जुनको मिला है।

प्रार्थनाका बल और फल।

भाइयो ! यह सब कह करमैं आप लोगोंको यह समझाना चाहता हूँ कि 'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा' की जो ऊंची स्थिति अर्जुनकी हुई वह ईश्वरकी स्तुति तथा प्रार्थना करनेसे ही हुई है। इसलिये हमें भी अगर अपनी जिन्दगी सुधारनी हो, अपनी आत्माकी उन्नति करनी हो और ईश्वरका प्यारा बनना हो तो अपनी जिन्दगीका छोटेसे छोटा साधारण काम करते समय भी बार बार परम कृपालु पिता परमात्माके नामका स्मरण करना चाहिये। अगर बार बार स्मरण करते न बने तो पहले उसका नाम लेकर और हृदयसे उसे स्मरण करके तब काममें हाथ लगाना चाहिये। पहले सर्वशक्तिमान महान ईश्वरकी प्रार्थना करके तब काम शुरू करना इसलिये चाहिये कि जिससे कोई बड़ा काम करते समय उसमें विघ्न न आवे तथा वह भले भले पूरा हो जाय। क्योंकि बहुधा ऐसा होता है कि जो काम और किसी तरह नहीं हो सकता वह कठिन-

काम भी प्रार्थनाके बलसे, झटपट और सहजमें हो जाता है। परन्तु यह भेद, यह गुप्त कुंजी साधारण लोग नहीं जानते और जो जानते हैं उनको पूरा विश्वास नहीं होता। इससे वे हृदयकी उमंगसे प्रार्थना नहीं कर सकते जिससे उनको मन-चाहा फल तुरत नहीं मिलता। परन्तु हरिजन, धार्मिक, भक्त और देवता इस भेदको समझते हैं, इससे वे अपना हर एक काम करते समय प्रेमपूर्वक पहले ईश्वरकी प्रार्थना कर लेते हैं जिससे दूसरे व्यवहारी आदमियोंकी अपेक्षा उनके काम जल्द, अधिक सहजमें और अच्छी तरह हो जाते हैं। अगर ऐसा महान लाभ लेना हो तो हमें भी अपनी जिन्दगीका हर एक काम आरम्भ करते समय पहले प्रेमपूर्वक परमात्माकी प्रार्थना करनी चाहिये। ऊंचे उद्देश रखकर हर मौके पर कैसे प्रार्थना करनी चाहिये यह बात लोग जैसी चाहिये वैसी उत्तमतासे नहीं समझते, इससे वे प्रार्थना नहीं कर सकते। इसलिये अपने अनजान भाई बहनोंके ध्यानमें यह विषय अच्छी तरह धसानेके लिये, जीवनकी जुदी जुदी घटनाओंके समयकी प्रार्थनाएं लिखी जाती हैं। जानना चाहिये कि इसमें जो कुछ लिखा गया है, ठीक वही प्रार्थना करनेकी जरूरत नहीं है; बल्कि इसी ढंगको या अपनी दशा और देशकालके अनुकूल प्रार्थना करनी चाहिये। यहां सिर्फ प्रार्थना करनेकी रीति और जरूरत बतायी जाती है। और इतना भी समझमें आ जाय तो बहुत है। इससे भी बहुत बड़ा लाभ हो सकता है। इसलिये अब नमूने बताये जाते हैं।

सवेरे उठते समयकी प्रार्थना।

हे प्रभु! हे शान्तिदाता पिता! हे अनाथके नाथ! हे निराधारके आधार! हे करुणाके भंडार! हे दयाके देव! हे

पिता ! पिता ! पिता ! तेरी कृपासे कलकी रात आनन्दसे कटी है और तेरी कृपासे मैं आजका प्रभात देखनेमें समर्थ हुआ हूँ। हे प्रभु ! तेरी कृपासे तुझे याद करते करते मैं अब जगा हूँ और तेरी कृपासे आजके नये दिनसे नया लाभ उठा सकूंगा। जैसे, तेरी कृपासे मैं रोजका काम काज कर सकूंगा; तेरी कृपासे अपने कुटुम्बके सुखके लिये आज उचित पुरुषार्थ कर सकूंगा; तेरी कृपासे आज अपने भाईबन्दोंकी थोड़ी बहुत सेवा कर सकूगा, तेरी कृपासे अपने देशके प्रति अपना कर्त्तव्य हृदयमें रखकर इस रीतिसे आजका दिन बिताऊंगा कि मेरे देशका भला हो. तेरी कृपासे आज नये नये अनुभव पा सकूंगा; तेरी कृपासे आज तेरे मार्गमें कुछ आगे बढ़ सकूगा, तेरी कृपासे आज ऐसा काम करूंगा जिससे मेरी आत्माका कल्याण हो और हे नाथ ! हे नाथ ! हे नाथ ! तेरी कृपासे मैं आजका दिन उत्तम रीतिसे बिता सकूंगा। हे प्रभु ऐसा करनेके लिये मुझ पर कृपा कर, कृपा कर, कृपा कर, कृपा कर। क्योंकि तेरी कृपा बिना केवल मेरे पुरुषार्थसे यह सब नहीं हो सकता। इसलिये हे प्रभु ! ऐसी सद्बुद्धि दे कि मैं तेरी कृपा प्राप्त करू, तेरा नाम स्मरण करू, अपना अन्तःकरण उत्तम बनाऊ और तेरा गुण गाऊं। और मुझ पर ऐसी कृपा कर कि मैं रोज सवेरे उठकर जितना हो सके उतना समय तेरा गुण गाने और नाम स्मरण करनेमें बिताऊँ। प्रभु ! मेरे ऊपर कृपा कर, कृपा कर, कृपा कर। ॐ शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

सूचना—ऐसा कहकर ही बैठ नहीं जाना चाहिये, बल्कि इसके बाद अपने पसन्द योग्य भक्ति भरे किसी स्तोत्र का पाठ करना, अथवा शान्ति मिलने योग्य भजन गाना और

प्रभुके नामकी माला, जितनी वार बन पड़े, फेरनी चाहिये। फिर बिछौनेसे उठकर घरके कामकाजमें लगना चाहिये। अधिक समय न मिले तो थोड़ी देर ही सही—परन्तु सबेरे उठते समय प्रभुका स्मरण किये बिना नहीं रहना चाहिये। जाग कर तुरत ही पहला काम ईश्वरकी स्तुति होनी चाहिये और इसके बाद ही दूसरे जरूरी काम भी करना चाहिये। आरम्भमें कुछ दिन अगर इसका मूल्य समझमें न आवे तो भी याद रखना कि प्रातःकालकी भक्तिका फल बहुत ही बड़ा है। इसलिये प्रेम रखकर सबेरेके पहर प्रभुका गुण गाया कीजिये। अगर ऊपर लिखे अनुसार सब आपसे न हो सके तो भी इतनी बात ध्यानमें रखियेगा कि महात्माओंका लक्ष्य सदा ऐसा ही ऊँचा होता है और इसीसे वे महात्मा हैं। इसलिये हमें भी आगे बढ़ना हो तो ऐसा ही ऊँचा लक्ष्य रखना चाहिये और यह मानना चाहिये कि जब तक हम ऐसा ऊँचा लक्ष्य नहीं रखते हैं तब तक हममें कचाई है। ऐसा समझें और मानें तो भी आगे बढ़नेका रास्ता मिलेगा। इसलिये जिन्दगीके हर रोजके कामोंमें कुछ विशेष उत्तमता रखना सीखिये।

नहाते समयकी प्रार्थना।

हे परम कृपालु पवित्र पिता महान ईश्वर! हे पापियोंको पावन करनेवाले! हे अपवित्रको पवित्र करनेवाले! हे अमङ्गलको मङ्गल करनेवाले मङ्गलस्वरूप परमात्मा! तेरी भक्ति करनेके लिये पवित्र होनेके अभिप्रायसे मैं स्नान कर रहा हूँ, इसलिये हे पुण्य स्वरूप! इस पवित्र जलसे जैसे मेरा शरीर शुद्ध होता है वैसे मेरा मन शुद्ध करनेकी कृपा कर, मेरी

इच्छाओंको शुद्ध करनेकी कृपा कर, मेरे कर्मोंको शुद्ध करने तथा अंगीकार करनेकी कृपा कर और मायाकी मलिन वासनाओंमें भटकनेवाले मेरे जीवको तू अपने पवित्र मार्गमें ले जानेकी कृपा कर। हे शान्तिदाता पिता! जैसे इस जलसे मेरे शरीरको इस घड़ी स्नान करनेसे ठंढक पहुँचती है वैसे ही ऐसा कर कि तेरे विश्वासके बलसे मेरी आत्माको शान्ति मिले। जैसे इस जलसे इस समय मेरा बाहरी शरीर शुद्ध होता है वैसे ही ऐसा कर कि तेरे नाम स्मरणसे और तेरे ध्यानसे मेरा जीव पुण्यस्वरूप हो। जैसे इस जलसे मेरी इन्द्रियाँ इस समय शान्त होती हैं वैसे ही ऐसा कर कि तेरी पवित्रताके बलसे मेरी इन्द्रियाँ शान्त हों। जैसे इस जलकी तरावटसे मुझे इस घड़ी आनन्द मिलता है वैसे ही ऐसा कर कि तेरी प्राकृतिक पवित्रताका मुझे सदा स्वाभाविक आनन्द मिला करे। जैसे इस निर्मल जलमें खेलनेको मेरा मन करता है वैसे ही ऐसा कर कि तेरी पवित्रतामें खेलनेको मेरा मन करे। जैसे इस निर्मल जलको अपने सिर पर उड़ेलते रहनेको मेरा मन करता है वैसे ही ऐसा कर कि तेरी पवित्रता अपने अन्तःकरणमें उंडेलनेको मेरा मन करे। जैसे इस पानीमें बारंबार गोता लगानेको जी चाहता है वैसे ही ऐसा कर कि तेरे प्रेम और तेरे सत्यके अन्दर गोते लगानेको बारंबार मेरे जीको प्रेरणा हुआ करे। और हे नाथ! तेरे नामके बलसे यह पवित्र बना हुआ पानी जैसे मेरे शरीर पर फैल जाता है, मेरे शरीरमें सट जाता है और मेरे द्वारा इधर उधर होता है वैसे ही हे पवित्र पिता! ऐसा कर कि मेरी आत्मा तुझमें लगी रहे और तू मेरे हृदयमें आ जा। हे प्रभु! ऐसा कर। ऐसा कर। क्योंकि पवित्र हुए

बिना मेरी कुशल नहीं और तेरी शरणके बल बिना; तेरे प्रेम-का लाभ लिये बिना, तेरे ज्ञानके महासागरमें डुबकी लगाये बिना, तेरी कृपाके बल बिना, तेरा हुकम पाले बिना और सच्ची दीनतासे तेरे अर्पण हुए बिना मेरा उद्धार नहीं हो सकता। इन सबकी जड़ पवित्रता है। इसलिये जैसे स्नान करनेसे शरीरके बाहरकी शुद्धि होती है और कुछ तरावट आती है वैसे ही मैं अपने हृदयकी शुद्धि करनेके लिये तथा आत्मिक ठण्ढक पानेके लिये प्रेमपूर्वक तेरी प्रार्थना करता हूँ। हे परम कृपालु पवित्र पिता! मुझे पवित्रता दे। पवित्रता दे।

सूचना—याद रखना कि सिर्फ लोकाचारके रिवाजसे शरीर पर किसी तरह दो चार घड़े जल डाल लेना नहाना नहीं है; बल्कि शरीरको शुद्ध करनेके लिये, सच्ची पवित्रता प्राप्त करनेके लिये और ऐसी पवित्रतामें जिन्दगी बितानेके लिये ही सदा नहाना चाहिये। यद्यपि सिर्फ नहानेसे यह सब एकदम नहीं हो जाता तो भी सदा इसलिये कि हमारी उत्तम भावनाएँ जगी रहें और हम अपने जीवनके ऐसे छोटे छोटे तथा सीधे सादे विषयोंमें भी आगे बढ़ सकें हमें हर मौके पर ऐसे उत्तम विचार करनेकी जरूरत है और ऐसे व्यवहारके छोटे छोटे विषयों में भी कुछ गहरा रहस्य देखना और उससे लाभ उठाना ही हमारे पवित्र धर्म की खूबी है। इसलिये ऊँची भावनाओंके बलसे जैसे हम नहानेसे भी पवित्रता ले सकते हैं वैसे ही दूसरे व्यवहारी कामोंसे कुछ उच्चता प्राप्त करनेका प्रयत्न कीजिये। और हर काम करते समय सदा किसी विशेष उच्चताकी ओर ही लक्ष्य रखिये।

जीमते समयकी प्रार्थना।

हे जगत-जीवन! हे जगत पालक! हे मेघ बरसावनहार!

हे एक बीजसे अनन्त बीज उत्पन्न करनेवाले! हे कर्मके फल दाता! हे प्रार्थना सुननेवाले अन्नदाता पिता! तेरी कृपासे यह उत्तम भोजन मुझे मिला है। हे नाथ! तू सृष्टिका बनाने वाला है, तू अन्नको पैदा करनेवाला है और तेरी आग, तेरे पानी, तेरी हवा, तेरी पृथ्वी और तेरे बनाये अन्नसे यह मेरा भोजन बना है। इसके सिवा तू मुझे जीविका देनेवाला है, तू मेरी जठराग्निका जगानेवाला है, तू ऐसा अनमोल भोजन बनानेकी बुद्धि देनेवाला है और तू मुझे जून पर ऐसा भोजन देनेके लिये अच्छे संयोग ला देनेवाला है। इसलिये हे नाथ! इसमें मेरा कुछ भी नहीं है, यह समझ कर, सच्ची दीनतासे, तेरा उपकार मानकर, श्रद्धापूर्वक पहले यह रसोई तुझे अर्पण करके और पूरे प्रेमसे तेरा पवित्र नाम याद करते हुए बार बार तेरा उपकार मानकर मैं भोजन करता हूँ। हे प्रभु! मेरी नालायकीके हिसाबसे और मैं जिस कदर तुझसे विमुख हूँ उसको देखते हुए तो मुझे खानेके लिये यमदूतोंकी मार ही मिलनी चाहिये; इसके बदले जो ऐसा स्वादिष्ट भोजन मिलता है वह हे नाथ! तेरी कृपाका ही फल है, तेरे पालनके गुणका ही फल है, तेरी क्षमाका ही फल है, तेरे प्रेमका ही फल है, तेरी उदारताका ही फल है। इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। इसलिये हे प्रभु! मुझे ऐसी बुद्धि देनेकी कृपा कर कि अब कभी अपनी खुराकसे तेरे जीवोंके लिये कुछ अंश काढ़े विना, तेरा उपकार माने विना और अनन्य भावसे तुझे याद किये विना मैं कोई चीज न खाऊं।

सूचना—इस तरह दीनता पूर्वक ईश्वरका उपकार मान कर और ईश्वरने कृपा करके जो दिया हो उसमेंसे यथाशक्ति प्रभुके जीवोंके लिये भाग निकाल कर पीछे प्रभुका नाम स्मरण

करते हुए जीमना चाहिये। जब तक इस तरह प्रभुका दिया हुआ प्रभुके अर्पण न करें तब तक हम अपने शास्त्रके अनुसार चोर ही हैं। ऐसा चोर न बननेके लिये अपनी खुराकमेंसे अपने भाइयोंका भाग निकालने तथा ईश्वरका उपकार मानने के बाद ही हर एक आदमीको जीमना चाहिये। सारांश यह कि कुछ सब आदमियोंको ऊपर लिखे शब्द ही बोलनेकी जरूरत नहीं है बल्कि सदा भोजन करते समय अपने मनमें इस प्रकारके भाव लानेकी जरूरत है। मनमें ऐसा भाव आ सके तो अनेक प्रकारके पापोंसे बच सकते हैं और ऐसा भाव न आवे तो अनेक प्रकारके पापोंमें पड़ जाते हैं। इसलिये जिनको अपना कल्याण चाहना हो उन आदमियोंको सदा पहले अपना भोजन ईश्वरके अर्पण करके अर्थात् उसमेंसे अपने भाई बन्दोंका हिस्सा निकाल कर तथा ईश्वरका उपकार मान कर पीछे जीमना चाहिये। अगर किसीसे अपनी खुराकमेंसे दूसरे जीवोंका भाग देते न बने तो भी उसे ईश्वरका उपकार तो मानना ही चाहिये। यह सनातनधर्मका मुख्य सिद्धान्त है और इसके पालनेमें ही कल्याण है।

रातको सोते समयकी प्रार्थना।

हे प्रभु! हे परम कृपालु पिता! हे दीनदयालु! हे जाग्रत तथा निद्रा अवस्थाके साक्षी! हे मंगलकारी! हे शान्तिदाता परमात्मा! तेरी कृपासे मेरा आजका दिन आनन्दसे बीता है, तेरी कृपासे मैं आज अपना कुछ कर्त्तव्य पूरा कर सका हूँ और तेरी कृपासे आज मैं पापसे बच सका हूँ। यद्यपि मेरे मनमें कुछ दुर्बल विचार आ गये और कितने ही विषयोंमें मैं ढीला रहा तो भी औसतन मेरा आजका दिन ठीक ठीक तौर

पर बीता है इसलिये मैं नम्रतापूर्वक तेरा उपकार मानता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि हे प्रभु! ऐसा करना कि मेरी आजकी रात शान्तिसे बीते। मुझे सब प्रकारकी आफतोंसे बचाना; खाट पर पड़े पड़े मनमें उठनेवाले निकम्मे विचारोंसे बचाना, बुरे सपनोंसे बचाना और निद्रावस्थामें जीव जो अन्तःकरणकी वासनाओंके साथ रमा करता है तथा बाहर भटकता फिरता है उससे बचाकर उसको सच्ची शान्तिमें रखनेकी कृपा करना। हे नाथ! हे नाथ! हे नाथ! इस समय मैं नींदमें पराधीन होता हूँ इससे ऐसी आफतोंसे मैं अपने बलसे अपने जीवको नहीं बचा सकता। हे शान्तिदाता! हे सन्मार्गमें प्रेरणा करनेवाला! हे अविद्याका नाश करनेवाला! हे ज्योति स्वरूप! हे जीवोंका उद्धार करनेवाला! हे मोक्षदाता पवित्र पिता! ऐसा कर कि आजकी रात तेरे रुचने योग्य शान्तिमें कटे। ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

सूचना—सदा सोते समय इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिये और इसके बाद ऐसा करना चाहिये कि महान प्रभुका पवित्र नाम लेते लेते ही नींद आ जाय। किसी तरह अपनी उत्तम भावनाओंको खिलने देने, पापसे बचने, अपनी जिन्दगीको उपयोगी बनाने, अपनी जिन्दगीका सच्चा स्वाद चखने और अपनी आत्माको परमात्मासे जोड़ रखनेके लिये यह सब करना है। परन्तु जिसकी भक्तिमें प्रेम नहीं है तथा जिसमें प्रार्थना करनेकी टेव नहीं है उसको आरम्भमें पहले ऊब सी मालूम होगी और रोजकी आदतके अनुसार निकम्मे विचार मनमें रमा करेंगे इससे ठीक ठीक प्रभुका नाम नहीं लेते बनेगा। परन्तु भाइयो और बहनो! जरा प्रेम रख कर

कुछ दिन ऐसा कर तो देखिये। याद रखिये कि इसका फल बहुत बड़ा है।

कोई बड़ा काम आरम्भ करनेके समयकी प्रार्थना।

हे चन्द्रसूर्यको बनानेवाले! हे समुद्रको वशमें रखने वाला! अनन्त ब्रह्माण्डके नाथ! कालके अधिपति! हे हे आकाशको बनानेवाले! हे जीवोंको जीवन देनेवाले! हे देवोंके देवके महाराज! हे सब अच्छे कामोंके प्रेरक! हे छोटोंके हाथसे भी बड़ा काम करानेवाले पवित्र पिता परमात्मा! तेरे पवित्र नामसे, तेरे निमित्त अपने भाई-बन्दोंकी मदद करने तथा अपने देशकी सेवा करनेके लिये मैं एक बड़ा काम (यहाँ उस कामका नाम लेना चाहिये) आरम्भ करना चाहता हूँ। इसलिये तू इसमें मेरा सहाय हो। हे नाथ! तेरी कृपा बिना अकेले मेरे बलसे यह बड़ा काम पूरा नहीं हो सकता; क्योंकि इसमें दूसरे बहुत आदमियोंकी मदद दरकार है, बहुत रुपयेकी जरूरत है, बहुत समय दरकार है, राज्यकी मदद दरकार है, दिलकी उमंगसे काम करनेवाले अनुभवी सज्जनोंकी जरूरत है, अच्छे स्थानकी जरूरत है और इस संस्थासे लाभ उठाकर उससे काम लेनेवाले आदमियोंकी जरूरत है। यह सब अकेले मेरे बलसे नहीं हो सकता। मैं तो स्वयं परिश्रम कर सकता हूँ या रुपया लगा सकता हूँ या जगह दे सकता हूँ या आदमी दे सकता हूँ या हाकिमों तक सिफारिश पहुँचा सकता हूँ या आस पासके कितने ही आदमियोंकी सहानुभूति जगा सकता हूँ और बहुत हुआ तो यह काम पूरा करनेके लिये मैं अपना जीवन अर्पण कर सकता हूँ। इनमेंसे कोई एकाध अंग (अपनेसे हो सकने योग्य अंगका नाम लेना) पूरा

करनेका काम मुझसे हो सकता है परन्तु सब अंग समतूल रखनेका काम अकेले मुझसे नहीं हो सकता। यह तो तेरी कृपासे ही हो सकता है। इसलिये हे प्रभु! अगर इस परमार्थके काममें मुझसे किसी तरहकी भूल न होती हो और यह परमार्थका काम तेरे नियमके अनुसार होता हो तो तू इसमें मेरा सहाय हो।

हे पिता! मैं जानता हूँ कि मेरी शक्तिके सामने यह काम बहुत बड़ा है और इसमें अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ हैं परन्तु हे नाथ! मुझे तेरे ऊपर विश्वास है कि अगर तू चाहे तो चींटीको हाथीसे भी अधिक बल दे सकता है। पंपा सरोवरका जल बड़े बड़े ऋषियोंके तपोबलसे शुद्ध नहीं हुआ पर वे ऋषि जिसको नीच समझते थे उस भीलनीके हाथसे तूने उस जलको शुद्ध कराया था। महाभारतके भयंकर युद्धके मैदानमें तूने टिटहरीके अडे बचाये थे और समुद्रको बाँधनेका जो काम रावणसे नहीं हुआ तथा राक्षसोंको हरानेका जो बड़ा काम देवताओंसे भी नहीं हुआ वह अद्भुत पराक्रमका काम तूने बन्दरोंसे कराया था। इस प्रकार तेरी गति अपार है और तू तृणसे पहाड बना सकता है। तब हे प्रभु! मेरे जैसे पापसे भरे अज्ञानी और क्षुद्र आदमीके हाथसे स्वदेश और और स्वभाइयोंकी सेवाका बड़ा काम तू करावे तो इसमें तेरी ही महिमा है और तेरी ही कृपा है; इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। मैं प्रत्यक्ष देखता हूँ कि बडे बड़े और अच्छे सुभीतेवाले काम भी अगर तेरी पसन्दके न हों तो घड़ी भरमें बिगड़ जाते हैं और तुझे रुचनेवाले छोटे छोटे और कम सुभीतेवाले काम भी आपसे आप बढ़ते जाते हैं और सैकड़ों वर्ष तक चला करते हैं। इसके सिवा अपना ज्ञान और अपने आस-

पासके संयोगोंको देखते हुए यह अच्छी तरह मेरी समझमें आ रहा है कि मैं एक अंगकी रक्षा करने योग्य हूँ परन्तु दूसरे अङ्गों तक नहीं पहुँच सकता। तिस पर भी ऐसे ऐसे अङ्गवाला बड़ा काम उठानेका मेरा विचार है इसलिये शुभ काममें तुरत ही मदद करनेवाले, अनसोचे ठिकानेसे मदद करनेवाले तथा ऐन मौके पर मदद करनेवाले हे महान् पिता! इस शुभ काममें मैं तेरी मदद माँगता हूँ। तेरी मदद माँगता हूँ। तेरी मदद माँगता हूँ। हे प्रभु! तू अपनी सेवाके इस शुभ कामको पूरा करनेकी कृपा करना और मुझे ऐसी सद्बुद्धि देना कि मैं सबसे हिलमिल कर रहूँ तथा इस काम-का अभिमान न करूँ।

सूचना—कोई बड़ा काम अच्छी तरह पूरा करना हो तो उसका आरम्भ करनेसे पहले इस प्रकार आगा पीछा सोच लेनेकी खास जरूरत है। क्योंकि इस तरह विचारनेसे उस कामकी महत्ता तथा उसकी कठिनाइयाँ समझमें आती जाती हैं और जीमें यह बात गड़ जाती है कि बहुत आदमियों-की मदद बिना अकेले मेरे बलसे यह सब नहीं हो सकता। इससे भक्तिभाववाले सज्जनोंको स्वाभाविक तौर पर ही ऐसे समय प्रार्थना करनेकी इच्छा होती है। अगर शुद्ध अन्तः करणसे प्रेमपूर्वक प्रार्थना हो तो उसी समय हृदयमें नया बल और नयी आशा आ जाती है और थोड़े ही समयमें उस काममें सफलता पानेकी कुछ नयी युक्तियाँ सूझ जाती हैं। इससे आपसे आप कितने ही तरहके अनुकूल संयोग आ मिलते हैं जिससे अच्छी रीतिसे काम आरम्भ किया जा सकता है। इसके बाद भी नजर दौड़ाकर तथा हृदयमें प्रार्थनाका बल रखकर काम किया जाय तो वह बहुत अच्छी

रीतिसे पूरा हो जाता है। इससे बहुत लोगोंको बड़ा फायदा होता है और देखादेखी काम करनेवालोंके ऊपर भी इसका बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। तब उस कामकी देखादेखी दूसरे कितने ही अच्छे काम होने लगते हैं। अगर वह बड़ा काम पूरा न हो या उसमें कुछ गडबड हो जाय तो यह देखकर मुद्दत तक दूसरे कितने ही अच्छे काम रुक जाते हैं। इसलिये जो काम करना वह अपनी शक्तिके अनुसार करना, सबके साथ बहुत मेल रखकर करना, अपना स्वार्थ त्याग कर करना, तन्मय होकर करना, अच्छे आदमियोंकी सलाह लेकर करनी और अपने हृदयमें ईश्वरको हाजिर जानकर उसकी प्रेरणाके अनुसार करना। तब काम पूरा ही समझना और भरोसा रखना कि तुम्हारी विजय ही है।

सोचा हुआ कोई बड़ा काम पूरा होनेके समयकी प्रार्थना।

हे दीनदयालु शान्तिदाता पवित्र पिता! तेरी कृपासे मेरा सोचा हुआ काम मेरे मनके अनुसार पूरा हुआ है इसलिये मैं शुद्ध अन्तःकरणसे तेरा उपकार मानता हूँ। हे प्रभु! अकेले मेरे बलसे किसी तरह यह काम पूरा नहीं हो सकता था; क्योंकि इसमें बड़ी बड़ी अड़चलें थीं, अनेक प्रकारके विघ्नोंका खटका था, नासमझीके कारण कितने ही मनुष्योंके विरोधी होनेकी सम्भावना थी और मेरे निजके कितने ही स्वार्थ आड़े आ सकते थे; परन्तु इन सब कठिनाइयोंसे तूने मुझे बचा लिया और इस कामको पूरा कर दिया यह तेरी ही कृपा है, तेरी ही प्रभुता है और तेरी ही महिमा है। इसमें मेरा कुछ भी नहीं है। मैं तो निमित्त मात्र हूँ। ऐसे अच्छे

काममें निमित्त होनेके लिये तूने लाखों आदमियोंमेंसे मुझको पसन्द किया इसके लिये मैं तुझको हजारों बार धन्यवाद देता हूँ। क्योंकि हे प्रभु! मैं जानता हूँ कि तूने मेरे ऊपर मेरी योग्यतासे कहीं अधिक कृपा की है। कहाँ मेरे मनकी कमजोरी और कहाँ इतना बड़ा काम? कहाँ मेरे पासका जरा सा सामान और कहाँ इस महान कामका विस्तार? कहाँ इस कामके विरुद्ध दिखाई देनेवाली कठिनाइयाँ और कहाँ ऐसी सुन्दर रीतिसे प्रतिष्ठापूर्वक सफलता? और कहाँ कोनेमें पड़ा हुआ मैं अज्ञानी गरीब और कहाँ महात्माओंको भी प्रसन्न करनेवाला यह शुभ काम? हे प्रभु! इस तरह मैं ज्यों ज्यों विचार करता हूँ त्यों त्यों मुझे अपनी कमजोरी तथा तेरी कृपा ही समझमें आती जाती है, इससे तुझ पर अधिक अधिक प्रेम होता जाता है और तेरी शरणमें पड़े रहनेका मन करता है। हे प्रभु! हे नाथ! हे नाथ! हे नाथ! हे नाथ! हे नाथ! किन शब्दोंसे मैं तेरा बखान करूँ? किस प्रकार तेरे चरणोंमें पड़ा रहूँ? किस उपायसे तुझे पकड़ रखूँ? और क्योंकर तुझमें तदाकार हो जाऊँ? मेरी समझमें नहीं आता और तेरे लिये मुझे तड़पना भी नहीं आता। परन्तु इस शुभ कामसे अच्छी तरह तेरी कृपा समझमें आ गयी है जिससे मुझमें नया बल आ गया है। इसलिये अब मुझे भरोसा है कि इस कृपाके बलसे मैं आगे बढ़ सकूँगा। क्योंकि इस बड़े काममें सफलता होनेसे ऐसे दूसरे अच्छे काम करनेकी इच्छा हुई है जिससे अब मैं जरूर ऐसे ऐसे और अच्छे काम करूँगा और उन कामोंके अच्छे असरसे तेरे मार्गमें चल सकूँगा तथा आगे जाकर उन कामोंके पुण्यसे तुझे पा सकूँगा। यह अच्छा काम करनेसे तेरी कृपा मेरी समझमें

आ गयी है; उस कृपाके बलसे 'तेरे रुचने योग्य' दूसरे अच्छे काम करने तथा उन कामों के द्वारा तुझे पानेका रास्ता मुझे मिल गया है। इसलिये हे नाथ! अब तो इस रास्ते में तेरा, तेरा और तेरा ही हूँ और तू मेरा, मेरा और मेरा ही है।

सूचना—जब कोई बड़ा काम अपने हाथसे हो जाय तब उसमें अगर कोई ईश्वरकी कृपा न समझे और यह मान ले कि यह काम हमारे ही बलसे हुआ है तो अपनेमें एक तरहका कोरा अभिमान आ जाता है। इस अभिमानके कारण हम अपने भाई-बन्दोंको नीच समझा करते हैं तथा अपनेमें स्वाभाविक तौर पर जितना तत्त्व होता है उससे कुछ अधिक मान बैठते हैं जिससे मनका समतूलपन नहीं रह सकता और मनका समतूलपन न रहनेसे कितनी बड़ी खराबी होती है यह विचारना कुछ कठिन नहीं है। हमको कितनी ही बार अनुभव होता है कि जब मनका समतूलपन नहीं रहता तब काम करने और ज्ञान प्राप्त करनेका दरवाजा बन्द हो जाता है, इससे कर्त्तव्यभ्रष्ट होना पड़ता है और फिर उससे एक प्रकारका पागलपन शुरू होता है। याद रहे कि यह सब अभिमानसे होता है, सैकड़ों मनुष्योंकी सहायतासे पूरे हुए कामका सारा बोझ-अपने ऊपर ले लेनेसे ऐसा होता है और ईश्वरको बीचमें न रखनेसे ऐसा होता है। इस-लिये अधिक अच्छे काम करना हो, अपने देशकी उन्नति करनी हो और अपनी आत्माका कल्याण करना हो तो अपनी मार्फत बने हुए भले कामोंका यश सदा भगवानको ही देना चाहिये। और शुद्ध अन्तःकरणसे यह मानना चाहिये कि उसीकी कृपासे यह काम हुआ है, इसमें मैं तो निमित्त मात्र हूँ। इतना ही नहीं, बल्कि जब जब अपने हाथसे ऐसे अच्छे

काम हों तब उस पवित्र पिताका हृदयसे विशेष उपकार मानना चाहिये और ऐसी प्रार्थना करनी चाहिये कि वारंवार ऐसा अवसर दे। झूठे अभिमानसे बचानेवाली तथा सब प्रकारके कल्याणकी चाभी प्रार्थना है। इसलिये प्रार्थना कीजिये। प्रार्थना कीजिये।

वर्षगांठके दिनकी प्रार्थना

हे देवादिदेव! हे जीवोंको जीवन देनेवाले। हे सच्चिदानन्द परमात्मा! हे परम कृपालु पिता! तेरी कृपासे आज मेरा जन्म दिन है। तेरी कृपासे मेरा पिछला वर्ष एक प्रकार शान्ति और आनन्दसे बीता है। यद्यपि उसमें दो चार प्रसङ्ग जरा मनको धक्का देनेवाले भी थे, तथापि औसतन नुकसानसे फायदा अधिक हुआ है, दुःखसे सुख अधिक मिला है और कुछ पुराना खोया जिसके बदले बहुत कुछ नया मिला है। इस प्रकार लाभदायक रीतिसे पिछला वर्ष बीता है इसके लिये मैं तुझको हजार हजार वार धन्यवाद देता हूँ, अन्तःकरणसे तेरा उपकार मानता हूँ, वारंवार तुझे दण्डवत करता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि हे प्रभु! आज जो मेरा नया वर्ष आरम्भ हुआ है वह भी आनन्दसे जाय, ऐसी कृपा करना। हे दीनदयालु! मुझे ऐसा बल देनेकी कृपा करना कि मै इस वर्षमें अपना कर्त्तव्य और अच्छी तरह पालन कर सकूं। ऐसी कृपा करना कि इस वर्ष आसुरी सम्पत्तिके साथ लड़नेमें मैं अधिक साहस रख सकूं। मुझ पर ऐसी कृपा करना कि इस वर्ष मैं अपने देशकी सेवा करनेमें अधिक बहादुरी दिखा सकूं। ऐसी कृपा करना कि इस वर्ष मैं अपने भाईबन्दोंके साथ हर विषयमें अधिक उदारतासे बर्ताव कर

सकूं। ऐसी कृपा करना कि इस वर्ष मेरे घर कोई शुभ प्रसङ्ग आवे और मैं अपने गुणवान मेहमानोंकी अधिक आदर-अभ्यर्थना कर सकूं। ऐसी कृपा करना कि सत्यका अधिक पालन कर सकूं और दिलसे और साफ हो सकूं। ऐसा अवसर देनेकी कृपा करना कि इस वर्ष विद्वानोंके सहवासमें अधिक रहूँ और नया नया ज्ञान प्राप्त कर सकूं। ऐसी कृपा करना कि मैं इस वर्ष कुछ नया हुनर सीख सकूं या स्वदेशी शिल्पकी मदद कर सकूं। मुझे ऐसा बल देना कि इस वर्ष और अच्छी तरह धर्म पाल सकूं। मुझे ऐसी शक्ति देना कि इस वर्ष अपने कुटुम्बके साथ अधिक प्रेमभावसे वर्त सकूं। मुझ पर ऐसी कृपा करना कि तेरे नियमोंको इस वर्ष और अच्छी रीतिसे पाल सकूं। ऐसी कृपा करना कि इस वर्ष और भी तन्दुरुस्त रहूँ और हे पवित्र पिता! मुझ पर ऐसी कृपा कर कि मैं तुझे अपने हृदयमें रखकर तेरी सेवा करनेके लिये ही तेरा दासानुदास होकर अपनी जिन्दगीका सब व्यवहार चलाऊं। ऐसी कृपा कर। ऐसी कृपा कर।

सूचना—अपनी वर्षगांठके दिन अगर शुद्ध अन्तःकरणसे ऐसी प्रार्थना हो और इसके बाद व्यवहारके कामकाज करते समय सदा यह चित्र नजरके सामने नाचा करे तो अपनी जिन्दगी सुधारनेमें यह विषय बहुत उपयोगी हो जाय इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। क्योंकि प्रकृतिका यह नियम है कि हम जैसी भावना रखें वैसा हमें फल मिलता है। अगर हमारे मनमें उत्तम विचार रमा करें और सुन्दर चित्र हमारी नजरके सामने नाचते रहें तो अवश्य हम आगे बढ़ सकते हैं। इतना ही नहीं बल्कि अगर ईश्वरकी कृपाका रहस्य समझमें आ गया हो, वह प्रत्यक्ष अनुभव होता हो कि हर घड़ी मद्द

भावसे ईश्वरकी कृपा जगतमें तथा हमारे ऊपर बरस रही है, और अगर यह सब प्रत्यक्ष न होने पर भी ईश्वरकी कृपा पर पूरा भरोसा हो तथा यह विश्वास हो कि हम सुधरनेकी इच्छा करें तो वह हम पर अवश्य कृपा करता है और अगर उत्तम उद्देश ध्यानमें रखकर प्रसङ्ग वश उसकी सहायता मांगा करें तो अपनी जिन्दगी सुधारनेमें आशासे कहीं अधिक लाभ होता है। इसलिये अगर सब आदमियोंसे हमेशा न बन पड़े तो अपनी वर्षगांठ जैसे आवश्यक दिनको तो अवश्य उत्तम विचार करना चाहिये तथा अपनेसे होने योग्य अच्छे काम करनेका ठहराव करना चाहिये। क्योंकि अगर साल भरमें इने गिने दिन भी ऐसा लाभ न लिया जाय तो हमारी जिन्दगीमें उत्तमता नहीं आ सकती। इसलिये जो दिन अपनी जिन्दगीमें महत्वका जान पड़ता हो तथा अपनी रहन सहन पर असर कर सकता हो उस दिनका हमें विशेष लाभ लेना चाहिये। और कुछ न होने पर अगर इतना ही लाभ लेना आवे तो भी बहुत है। इसलिये जैसे बने वैसे ऐसे उत्तम दिनोंसे अपनी जिन्दगी सुधारनेमें लाभ उठाइये। लाभ उठाइये।

ब्याह होनेके समयकी प्रार्थना।

हे प्रभु! हे नाथ! हे दीनदयालु! हे जुदे जुदे जीवोंको जोड़नेवाले! हे अभेद दाता! हे मेल चाहनेवाले! हे कार्य-कारणकी कड़ियोंको मिलानेवाले! हे वृद्धि चाहनेवाले! और हे ऐक्य करानेवाले परम मंगलकारी पिता! तेरी कृपासे तेरे नियमोंके अधीन होकर मैं पसन्द योग्य एक कन्यासे आज ब्याह करता हूँ। हे प्रभु! ऐसा करना कि मेरा यह ब्याह

सुखकर हो। ब्याहका बोझ उठाने और घर गृहस्थीका जंजाल सहनेकी मुझे शक्ति देना। एक पराये कुटुम्बकी छोकरी पर— जिसको ब्याह कर मैंने अपनी अर्द्धाङ्गिनी बनाया है—स्नेह रखनेकी प्रेरणा मेरे हृदयमें करना। उसको सुखी रखनेके लिये मैंने सैकड़ों मनुष्योंके बीच सूर्यनारायण तथा अग्निदेव को साक्षी रखकर आज जो प्रतिज्ञा की है उस प्रतिज्ञाको पालनेका मुझे बल देना। ऐसा करना कि मैं अपनी इस अर्द्धाङ्गिनीकी सहायतासे बढ़ूं। ऐसा करना कि अपनी प्यारी के प्रेमके बलसे मुझमें नया जीवन आवे और मुझे ऐसी शक्ति देना कि मैं उसे सुखी रखनेके लिये अधिक परिश्रम करूं।

हे प्रभु! यह ब्याह करनेसे मेरा कर्त्तव्य बढ़ गया है। आज तक मैं अकेला था, अब हम दो जन हो गये हैं। आज तक मैं अपनी मरजीके अनुसार करता था परन्तु अब मुझे अपनी पत्नीका मन रखना चाहिये और आज तक मैं ब्रह्मचारी था परन्तु अब मैं गृहस्थ हुआ हूं जिससे मेरा कर्त्तव्य बढ़ गया है। अब मैं कितने ही सज्जनोंका रिश्तेदार बना हूं। अब मेरे यहाँ मेहमान आवेंगे, अब मेरे यहाँ अतिथि पधारेंगे; अब मुझमें पितर और देवता अपना भाग पानेकी आशा करेंगे और अब अपनी अच्छी इच्छाएं पूरी करनेके लिये मेरी प्यारी भी मेरा भरोसा रक्खेगी और अपने मुसकुराते मुखड़ेसे मेरे मुंहकी ओर देखेगी। इन सबको सन्तुष्ट करना मेरा कर्त्तव्य है। इसलिये हे प्रभु! यह सब कर्त्तव्य पूरा करनेके लिये अब तू मुझे बल दे। बल दे।

हे आनन्ददाता! ऐसा करना कि इस ब्याहसे मेरी और मेरी प्यारीकी आत्मा एक हो। हे प्रेमस्वरूप! ऐसा करना कि जिन्दगीकी आखिरी सांस तक हम दोनोंमें प्रेम रहे। हे

आनन्दस्वरूप! ऐसा करना कि मैं अपनी प्यारीके जीवनसे सदा नया आनन्द पाया करूँ। हे रसस्वरूप! मेरी रसीलीके जीवनमें ऊँचे दरजेका नया नया रस भरना और उसकी मार्फत यह रस मुझमें ढालनेकी कृपा करना। हे शान्तिदाता पिता! ऐसा करना कि अपनी प्यारीके चरित्रसे मुझे शान्ति मिले और मुझसे उसको शान्ति मिले। और हे प्रभु! ऐसी कृपा करना कि इस ब्याहके यज्ञ द्वारा तेरी सेवा करके हम अपना ब्याह सफल कर सकें तथा इस ब्याहके यज्ञसे हम दोनोंकी आत्मा उन्नति पाकर कृतार्थ हो और अन्तको तुझे पा सके।

अपने ब्याहके समय वरको इस प्रकारकी या इससे मिलती जुलती अपने पसन्द योग्य दूसरे ढङ्गकी प्रार्थना करनी चाहिये। ब्याही जानेवाली कन्याको भी हृदयकी उमंगसे शुद्ध अन्तःकरणसे एकान्तमें प्रार्थना करनी चाहिये कि हे प्रभु! हे दीनदयालु! हे धीरज धरनेवाले! हे मन-कामना परिपूर्ण करनेवाले! हे शान्तिदाता पिता! आज मेरा ब्याह होता है। अहा ब्याह है! ब्याह माने जुड़ जाना, ब्याह माने दोसे एक हो जाना, ब्याह माने नया जीवन पाना, ब्याह माने देवताई सहायता पाना, ब्याह माने उन्नतिके रास्तेमें आत्माके उड़नेके नये पंख और ब्याह माने यज्ञ। धन्य प्रभु! धन्य। आज ऐसा मांगलिक मेरा ब्याह होता है। यह तेरा उपकार है; क्योंकि तेरी कृपासे मुझे मन योग्य वर मिला है। हे प्रभु! मुझे ऐसी शक्ति दे कि मैं अपने इस प्यारेको प्रसन्न कर सकूँ। क्योंकि तेरी मदद बिना मैं एक कच्ची उमरकी और बिना अनुभवकी छोकरी एकदम अनजान घरमें और अपरि-चित कुटुम्बमें कैसे सफलता पा सकती हूँ? हे नाथ! हे नाथ! हे नाथ! हे नाथ! हे नाथ! मुझे अब तेरी मददकी बहुत

जरूरत है। क्योंकि अब मेरे रिश्तेदार बढ़ गये, मेरे प्यारेके रिश्तेदार मेरे रिश्तेदार हैं, मेरे प्यारेके मित्र मेरे मित्र हैं। इन सबका मन खुश रखना और अपने पतिको प्रसन्न रखना मेरा मुख्य काम है। इससे अब मेरा कर्त्तव्य बढ़ गया है और यह कर्त्तव्य धर्मका बल आये बिना पाला नहीं जा सकता। इसलिये हे धर्मावतार! मुझे अपना धर्म पालनेका बल दे। हे पवित्र पिता! मुझे अपना पतिव्रत बनाये रखनेका बल दे। हे प्रेमस्वरूप! मुझे अपने प्यारे पर और उनके हित-मित्रों पर प्रेम रखनेकी सद्बुद्धि दे। हे अनन्त ब्रह्माण्डका भार उठानेवाले! मुझे अपनी घर गृहस्थीका भार उठानेकी शक्ति दे और हे अभेददाता पिता! ऐसी कृपाकर कि मेरे प्यारेका मन ही, मेरा मन हो, मेरे प्यारेकी इच्छा ही मेरी इच्छा हो और मेरे प्यारेका सुख ही मेरा सुख हो, इतना ही नहीं बल्कि मेरे प्यारेका और मेरा जीव एक हो जाय। ऐसी कृपा कर। ऐसी कृपा कर।

सूचना—पवित्र ब्याहकी ऐसी महिमा समझने योग्य उमर होने पर ऐसी ऊँची भावनाएँ रखकर अपनी राजी खुशीसे स्त्री पुरुषोंको अपना ब्याह करना चाहिये। क्योंकि ब्याह यज्ञ है और ब्याह आत्मिक मिलाप है; इतना ही नहीं बल्कि स्त्री तथा पुरुष दोनोंकी आत्माकी उन्नतिके लिये ही ब्याह है; कुछ विषय वासना तृप्त करनेके लिये ही ब्याह नहीं है। इसलिये ब्याहका जीवन प्रेम है; ब्याहका मूल प्रेम है, ब्याहका उद्देश प्रेम है और प्रेमको बढ़ाते बढ़ाते परमात्मा तक पहुँचाना ब्याहका परिणाम है। ऐसा होने पर ही ब्याहकी सार्थकता है। इसके सिवा जो ब्याह है वह तो सिर्फ लोकाचारका ब्याह है, वह तो सांप गया और केंचुल रह

गधीके समान है और वह तो बिना ऊँचे उद्देशके तथा बिना प्रेमके पुतले पुतलीके व्याह समान है और वह सिर्फ व्याह नामको शरमानेवाला व्याह है। और बेजोड़का व्याह, दहन देकर बीबी लानेका व्याह, बेटी बेचने या बेटा बेचनेका व्याह, कुलीनताके अभिमानका व्याह, कई स्त्रियोंके साथ व्याह और मा बापके विनोदका व्याह तो व्याह ही नहीं है, वह तो पशुवृत्ति है। बूढ़ोंका व्याह अर्थात् मुर्दोंके सिर मौर बाँधनेका व्याह, बालकोंका व्याह अर्थात् गुड़ियोंका व्याह, हर रोज़ लड़नेवाली अनेक स्त्रियोंका व्याह और अपने स्वार्थके लिये अज्ञान मा-बाप चाहे जैसे ईंट पत्थर जोड़ दें वह व्याह क्या व्याह कहलाने योग्य है? यह तो सरासर नीचता है। इसलिये भाइयो और बहनो! ऐसी नीचतामें न पड़े रहनेका ख्याल रखना और अगर संयोगवश आप इसमें फँस गये हों तो निबहा ले जाना परन्तु अपने प्यारे बच्चोंका ऐसा बुरा हाल मत करना और उनको ऐसे अधर्मके गढ़ेमें मत डालना; बल्कि व्याहके यज्ञकी महिमा उनको समझाना और ऊँचे उद्देशसे प्रेमका व्याह करनेमें उन्हें मदद देकर उनकी जिन्दगी सुधारना। अगर ऐसा कीजियेगा तो उनके आशीर्वाद से प्रभु आपका कल्याण करेंगे।

परदेश जाते समयकी प्रार्थना।

हे सर्वशक्तिमान पवित्र पिता परमात्मा! हे अनन्त ब्रह्माण्डके नाथ! हे जगतके मालिक! हे सर्वव्यापक! हे सब कुछ जाननेवाले! हे सब पर दया करनेवाले! और हे निकटसे निकट रहनेवाले। अन्तर्यामी पिता! मैं अपनी जीविकाके लिये आज परदेश जाना चाहता हूँ; अपने कुटुम्बकी मदद

करनेके लिये आज परदेश जाना चाहता हूँ; अपने दूसरे भाइयोंके निमित्त विदेशका रास्ता खोलनेको विदेश जाना चाहता हूँ, परदेशकी नयी नयी शिल्पकला सीख कर अपने देशको लाभ पहुँचानेके लिये मैं परदेश जाना चाहता हूँ, नये नये अनुभवसे अपनी योग्यता बढ़ानेके लिये मैं परदेश जाना चाहता हूँ और तरह तरहका अद्भुत सृष्टि-सौन्दर्य्य तथा तेरी अलौकिक लीला देखकर उससे तेरी महिमा समझनेके लिये मैं परदेश जाना चाहता हुँ। इसलिये हे कृपालु! इन शुभ उद्देशोंके पूरे होनेमें तू मेरा सहाय हो। सहाय हो। सहाय हो। क्योंकि परदेश जानेमें अनेक प्रकारकी कठिनाइयाँ हैं। जैसे, स्नेहियोंका वियोग होता है, टका लगता है, शरीरसे कष्ट सहना पडता है, अपरिचित आदमियोंमें रहना पड़ता है, भाषा समझनेकी कठिनाई पड़ती है, परदेशकी आबहवा भी तुरत अनुकूल नहीं आ जाती और विदेशके दुर्गुण अपनेमें आ जानेका हमारे हितमित्रोंको डर लगता है तथा आरम्भमें और अनेक प्रकारकी अडचलें भोगनी पडती हैं। इसके सिवा इन सब अड़चलोंका सामना करके विदेशसे लाभ उठानेकी हिम्मत आजकल हमारे देशके बहुत कम आदमियोंको है जिससे विदेश जानेसे मना करनेवाले भी बहुत आदमी मिलते हैं। इन सब कठिनाइयोंसे तेरी कृपा बिना बहुत बचाव नहीं हो सकता। इसलिये हे प्रभु! इन सब प्रकारकी अड़चलोंको सह लेनेका बल मुझको दे और मेरा शुभ मनोरथ पूर्ण करनेकी कृपा कर। कृपा कर। कृपा कर।

सूचना—इस प्रकार सफरकी कठिनाइयोंको और विदेश जानेका उद्देश पहले सोच कर पीछे देशाटन करनेका मन हो तो बड़ा लाभ होता है। परन्तु सिर्फ कठिनाइयोंको देखकर

और लाभके सामने न देखें तो परदेश नहीं जा सकते और मगर केवल लाभका विचार किया करें, कठिनाइयोंका ख्याल न करें तो भी अड़चल आ पड़ने पर निराश होना पड़ता है। ऐसा न होने देनेके लिये पहले दोनों पहलू देखना चाहिये और पीछे अपनी प्रकृति अपने इर्दगिर्दका संयोग तथा देश काल देखकर और अपना या दूसरोंका फायदा विचार करके जो देश अनुकूल जान पड़े उस देशमें जाना चाहिये। याद रखिये कि घरसे निकलते समय इस प्रकारकी अथवा अपने मन लायक एक वार प्रार्थना कर लेना ही बस नहीं है, वल्कि परदेशमें सदा वारंवार ईश्वरकी प्रार्थना करनी चाहिये और धर्मको अपने सामने रखकर तथा ईश्वरको अपने हृदयमें रखकर हर एक काम करना चाहिये, तभी सफलता होती है। नहीं तो उल्टे मामला बिगड़ जाता है। क्योंकि हमको अंकुशमें रखनेके लिये परदेशमें हमारा कोई बड़ा बूढ़ा उपस्थित नहीं रहता, और न अपनी जाति बिरादरीके रीति रिवाज ही होते। वहां हमको हमारा कर्त्तव्य समझानेवाले हमारे धर्मके उपदेशक या हमारे धर्मके मन्दिर नहीं होते। वहां हमारे देशके से राज्यके कानून नहीं होते, और न वहां ऐसे जान पहचानके आदमी ही होते हैं कि जिनकी लाजसे हम दबें। वहां तो हमें सब प्रकारकी स्वाधीनता रहती है, शरीरमें जवानीका जोश होता है, जेबमें पैसा होता है, कोई बडा काम मिल गया हो तो उसका मद होता है, परदेशमें बुरे मित्र बिना ढूढ़े भी मिल जाते हैं और वहां उस समय कोई कुछ पूछने जांचनेवाला नहीं होता। इससे उस समय हमारी स्थिति तूफानी समुद्रमें भागती फिरती हुई बिना लंगरकी नावकी सी होती है। याद रखना कि तूफानी समुद्रमें पड़ी हुई बे कर्णधारकी तथा बे लंगरकी

नाव या तो थोडी ही देरमें डूब जाती है या कहीं खराब जगह में फंस जाती है या बे ठिकाने बहक जाती है। वैसे ही पर-देशमें रहते समय अगर हमारे अन्तःकरणमें धर्म्मका मजबूत लंगर न हो तथा जीवके पास ईश्वरका कर्णधार न हो और प्रार्थनारूपी अनुकूल पवन न हो तो हम भी अवश्य बहक जाते हैं। इसलिये परदेशमें धर्म्मकी तथा ईश्वरकी खास जरूरत है। यह बात अवश्य ध्यानमें रखना और अधिक न बन पड़े तो सदा प्रार्थना अवश्य करना। अवश्य करना। अवश्य करना।

पुत्र या पुत्रीका जन्म होनेके समयकी प्रार्थना।

हे परम कृपालु पवित्र परमात्मा! तेरी कृपासे आज हमारे परिवारमें एक पवित्र आत्माका जन्म हुआ है, यह बड़े ही आनन्दकी बात है। क्योंकि तूने हमारा विश्वास करके यह अनमोल थाती हमें सौंपी है। इसके सिवा जगतकी आबादी बढ़ानेकी तेरी इच्छा है, और इस शुभ काममें इस बालकके जन्मसे हम मददगार हो सकते हैं इसका हमें सन्तोष है। हे प्रभु! इस निर्दोष बालकको देख देख कर हमको एक प्रकारका प्राकृतिक आनन्द होता है। इस बालक-के शरीर तथा मनके खिलनेके साथ हमारा मानसिक बल खिलता जायगा; इस बालककी मन्द मन्द स्वाभाविक मुस-कान हमारे लिये प्रकृतिमेंसे हास्य खींच लावेगी। इस बाल-कको खेलाते हुए कभी कभी हम थोड़ी देरके लिये जगतका अस्तित्व भूल जायँगे और सहज समाधिका आनन्द अनुभव कर सकेंगे। इस बालकके कारण, इसे सुखी रखनेके लिये

अब हम अधिक परिश्रम करेंगे जिससे पुरुषार्थके प्रतापसे कुछ अनसोचा नया लाभ हो जायगा। इस बालकके कारण अब हमारी नातेदारी बढ़ेगी, कर्त्तव्य बढ़ेगा तथा जिम्मेवारी बढ़ेगी और इन सबके लिये हमें अवश्य करके योग्यता प्राप्त करनी होगी जिससे धीरे धीरे हम तेरे रास्तेमें आते जायँगे और इस पवित्र आत्माके पधारनेसे हममें भी पवित्रता आती जायगी। इतना ही नहीं, हे प्रभु! इस निर्दोष सुन्दर बालकको देख देख कर हम वारंवार आपसे आप तेरा कृतज्ञ हुआ करेंगे। यह क्या थोड़ा लाभ है? इस तरह इस नन्हें बालकके पधारनेसे हमारी आत्माकी उन्नति होने लगेगी; इससे बढ़कर आनन्द और क्या है? इसलिये हे प्रभु! अब तो हमारी यही प्रार्थना है कि हम पति-पत्नीको अधिक प्रेमसे जोड़ रखनेवाली इस कड़ीको दीर्घायु करना। तेरी महिमा प्रगट करनेवाले इस फूलको विकसित करनेकी हमें शक्ति देना; इसके सुखके लिये तथा इस रास्ते तेरा स्नेह चमकानेके लिये अनेक प्रकारकी अड़चलें सह लेनेका हमें बल देना। तू अपनी इस अनमोल थातीका व्याज बढ़ानेकी अर्थात् इसे सद्गुणी बनानेकी हमें योग्यता देना और हे नाथ! हमें ऐसी सद्बुद्धि देना कि जिससे तेरी यह आत्मा हमारे यहां आकर हमारे कारण दुखी न हो, हमारी ओरसे अपमान न सहे, हमारी भूलसे अंधकारमें न रहे और हमारे दोषसे संकीर्णतामें न रहे। क्योंकि हे पिता! यह बालक हमारा नहीं है, तेरा है। हे नाथ! यह तेरा ऐश्वर्य है, यह तेरी दया है, यह तेरी महिमा है, यह तेरे बगीचेका फूल है; इसमें हमारा कुछ भी नहीं है। हम तो सिर्फ माली हैं। इसलिये हमें ऐसी सद्बुद्धि देना कि जिससे तेरा यह फूल हमसे कुचल न जाय, तेरी

दयाका हमसे बुरा उपयोग न हो जाय, तेरा ऐश्वर्य हमारी भूलसे अंधकारमें न रह जाय और हम अपने तुच्छ स्वार्थके कारण तेरे महान् प्रकाशको बुझा न दें और हे नाथ! ऐसी कृपा कर कि हम इस नये जन्मे बालकसे नया जीवन प्राप्त कर सकें तथा अपने जीवनसे इस बालकको नया जीवन दे सकें। ऐसी कृपा कर। ऐसी कृपा कर।

सूचना—हमारी सन्तान हमारी निजकी, खानगी मिलकियत नहीं है बल्कि वह प्रभुकी हमें सौंपी हुई थाती है और वह भी सिर्फ हमारे कामके लिये तथा मनमाने तौर पर बर्तनेके लिये प्रभुने नहीं सौंपी है वरंच जगतकी आबादी बढ़ानेके लिये और जगतकी सेवा करनेके लिये ही प्रभुने उसे यहां भेजा है। इसलिये हम अपनी सन्तानोंके मालिक नहीं हैं बल्कि वे जब तक छोटी उमरमें हैं और जब तक हमारे आसरे पड़ी हैं तब तक हम प्रभुके नियुक्त किये हुए उनके ट्रस्टी हैं; हम उनके मास्टर हैं और हम उनके रखवार (गार्ड) हैं। अगर ऐसी उत्तम समझ हमें हो जाय तो फिर हम अपने बालकों पर मनमाना हुकम न चलावें; फिर तो हम अपना उल्लू सीधा करनेके लिये उनको मारें पीटें नहीं; पोता खेलानेकी साध पूरी करनेके लिये जैसा तैसा ब्याह करके उनको खराबीके गढ़ेमें न डालें; उनको शिक्षा देनेमें लापरवाही न रखें और फिर तो आज कल हम उनके साथ जैसी बेइज्जतीकी काररवाई करते हैं वैसी काररवाई न करें। इसके सिवा अगर हमें यह विश्वास हो जाय कि वे हमारी निजकी जायदाद नहीं हैं बल्कि भगवानकी थाती हैं, वे हमें अपना मौरूसी बनानेके लिये नहीं हैं बल्कि प्रभुकी कृपाके फल हैं, वे बालक अपने छोटे छोटे स्वार्थके लिये ही हमें नहीं सौंपे गये हैं बल्कि

जगतकी सेवा करनेके लिये ही हमें सौंपे गये हैं और हम उनके मालिक नहीं हैं बल्कि हम तो उनके केवल रखवार-ट्रस्टी हैं—अगर हमारी समझमें ऐसा आ जाय तो फिर अगर दैवयोगसे वे जहांसे आये हैं वहां चले जायं तो हमें बहुत अफसोस न हो, फिर हमें रोना धोना न पडे और फिर जिन्दगी न बिगड़े। सो हमारे लड़के हमारी मौरूसी जायदाद नहीं हैं बल्कि वे प्रभुके बालक हैं और जब तक छोटे हैं तब तक हम उनके सिर्फ वली हैं। इसलिये हमें जो थाती प्रभुकी ओरसे सौंपी गयी है उसका ब्याज बढ़ाकर उसकी सेवामें लौटा देना अर्थात् उनके सद्गुणोंको विकसित कर उन्हें जगतकी सेवामें लगाना और ईश्वरकी सृष्टि आगे बढ़ानेमें उन्हें मददगार बनने देना ही हमारा फर्ज है, यही हमारा कर्त्तव्य है और यही हमारा धर्म्म है। कुछ अपनी ओछी वासनाओंके अनुसार और अपने विकारोंके जोशके अनुसार उनकी अच्छी वृत्तियोंको कुचल डालना हमारा धर्म्म नहीं है, उनको खास अपना ही मान लेना और उनके ऊपरसे प्रभुका हक उड़ा देना हमारा धर्म्म नहीं है और अनेक प्रकारके वहममें, अनेक प्रकारकी दहशतमें, अनेक प्रकारके व्यसनोंमें, अनेक प्रकारकी गुलामीमें, अनेक प्रकारकी पोलमें या अनेक प्रकारके आडम्बरमें ही रख छोड़ना, तथा उन पर मनमानी अनुचित हुकूमत चलाना हमारा धर्म्म नहीं है, बल्कि उनको प्रभुके बालक समझना और यह समझना तथा इसके अनुसार बर्ताव करना हमारा सच्चा धर्म्म है कि हम तो उनके सिर्फ गार्ड (रखवार) हैं, उनके ट्रस्टी हैं, उनको दुनियादारीकी चतुराई सिखानेवाले गुरु हैं और हम तो सिर्फ प्रभुके बगीचेके माली हैं।

दूसरे इससे यह भी समझना है कि ब्राह्मणोंके लिये ब्रह्म-कर्म सिखानेवाली पाठशालाएं जुदी होती हैं; क्षत्रियोंके लिये युद्ध सिखानेवाले अखाड़े अलग ही होते हैं और वैश्योंके लिये अलग ही व्यापार-विद्यालय होते हैं। राजकुमारोंके लिये अलग ही कालेज होते हैं और उनके मास्टरोंसे पहले ही खास तौर पर कह दिया जाता है कि ये राजाके लड़के हैं, ये मामूली आदमी नहीं हैं इस लिये इनको विशेष रीतिसे शिक्षा देना; ऐसा करना कि ये बहादुर हों, ऐसा करना कि ये अपना अधिकार, अपना बल, अपना बड़प्पन और अपने बड़ोंकी मर्यादाको समझें और यह समझ कर कि भविष्यमें ये सब पर हुकूमत चलानेवाले राजा होंगे, इनकी योग्यतानुसार इन्हें शिक्षा देना। ऐसे आदेशके साथ राजाके लड़के मास्टरोंको सौंपे जाते हैं। अब विचार कीजिये कि जब इस जगतके छोटे से राजाओंके कुमारोंकी शिक्षाके लिये भी इतनी सावधानी और सम्हाल रखी जाती है तब जो राजाओंका राजा है और अनन्त ब्रह्माण्डका नाथ है उसके बालकोंको शिक्षा देनेके लिये कितनी बड़ी सावधानी और सम्हाल रखनी चाहिये? और उनके ट्रस्टी तथा उनके गार्ड होनेके लिये कितनी अधिक योग्यता रखनी चाहिये? जब इस जगत-के धन जैसी साधारण वस्तुकी थाती सम्हालनेके लिये भी बहुत कुछ सावधानी रखनी पड़ती है तब पवित्र आत्माकी थाती सम्हालनेके लिये कितनी सावधानी रखनी चाहिये? यह विचारना चाहिये। अगर यह विचारें तो इस बातका ख्याल आये बिना न रहे कि अपने बालकोंको सुधारनेके लिये हम पर कितनी बड़ी ज़िम्मेदारी है। "हमारे लड़के सिर्फ हमारे नहीं हैं बल्कि वे प्रभुके बालक हैं" यह समझनेसे इन

सब बातोंका असली अर्थ समझमें आ सकता है। इसलिये अगर सत्यधर्म पालना हो तो ऐसा उत्तम ज्ञान प्राप्त करना सीखिये और ऐसी ऊंचे दरजेकी प्रार्थना करना सीखिये। फिर तो प्रभु आपके ही हैं और आप प्रभुके ही हैं।

पितरोंके श्राद्धके दिन करनेकी प्रार्थना।

हे सर्वशक्तिमान् महान ईश्वर! आज मेरे यहाँ (अपने पिता, माता या दादा का—जिसकी वर्षी या छमसिया हो उसका नाम लेना) श्राद्ध है इससे तेरा गुण गाना है और यथाशक्ति अपने सगे सम्बन्धियों, विद्वानों, विद्यार्थियों, अतिथि साधुओं, अनाथ बालकों तथा गरीबोंका सत्कार करना है। इसलिये हे प्रभु! तू इसमें मेरा सहाय हो और ऐसे प्यारोंके स्मरणके पवित्र दिनोंको ऐसे अच्छे काम करनेकी मुझे सद्बुद्धि दे। क्योंकि मेरे स्वर्गवासी प्यारे पूर्वजोंका उपकार मुझ पर ऐसा वैसा नहीं है। अहा! उनकी क्या बात है! धन्य है उनके शुद्ध प्रेम को। उनके सद्गुणोंके हम हकदार हैं, उनके आशीर्वादसे हम सुखी हैं, उनकी कमाई हम भोगते हैं; उन्होंने हमारे सुखके लिये हजारों प्रकारके झंझट उठाये हैं; उन्होंने हमारे सुखके लिये बड़े बड़े स्वार्थत्याग किये हैं और वे अब भी, पितृलोकसे भी हमारा कल्याण मनाया करते हैं। अहा! उनके स्नेहका क्या कहना है! ऐसे अलौकिक स्नेहके कारण—ऐसे स्वर्गीय स्नेहके कारण—ऐसे स्वाभाविक शुद्ध स्नेहके कारण और तुझे प्रिय लगनेवाले आत्मिक स्नेहके कारण उनकी यादगारके पवित्र दिनको हम जो कुछ करें वह उनके स्नेहके लेखे थोड़ा ही है और जिस देशमें उनकी मिट्टी पड़ी हो उस देशकी जमीनको हम चूमें,

उस देशकी धूलको हम सिर, आँखों पर लगावें और उस देश-की भलाईके लिये हम अपना प्राण दें तो भी थोड़ा ही है। अहा! यह पवित्र श्राद्धका दिन है, प्यारे पूर्वजोंकी मीठी यादगारका दिन है। जिन्होंने हमारे लिये अपना सुख त्याग दिया है उन बड़ोंके इस दुनियासे स्वर्गमें बिदा होनेका दिन है। और शास्त्रके अनुसार हमारी भली इच्छाओंके उनके पास पहुँचनेका दिन है। धन्य प्रभु! धन्य! ऐसा दिन बड़े भाग्यसे मिलता है। क्योंकि यह दिन हमारे जीवनमें नयी बिजली भरनेके लिये है, यह दिन महान ऋषियोंके पवित्र आचरणोंका अनुकरण करनेके लिये है; यह दिन पूर्वजोंके गुण गानेके लिये है; यह दिन पितरोंकी पवित्र यादगारके निमित्त अच्छे काम करनेके लिये है, यह दिन कर्त्तव्य पालने-का बल प्राप्त करनेके लिये है, यह दिन यह विचारनेके लिये है कि जैसे ये सब मर गये वैसे ही हम भी मर जायँगे इस-लिये कुछ भले काम कर लेना चाहिये और यह दिन पितृ-लोकमें अपने पितरोंको सुखी रखनेकी प्रभुसे प्रार्थना करनेके लिये है। कुछ पिण्ड बनाकर उतनेमें ही सब खतम कर देनेके लिये यह पवित्र दिन नहीं है, बल्कि वर्ष भरमें सिर्फ एक दिन आनेवाला यह अनमोल समय बड़ा ही उपयोगी है। इसलिये हे धर्मको स्थापनेवाले! दुष्टोंका संहार करने-वाले! अनाथोंकी रक्षा करनेवाले! सबका हक चुकानेवाले! सब जीवोंकी स्वतन्त्रता चाहनेवाले! गरीबोंको ऊपर उठाने-वाले! गिरनेवालेको सहारा देनेवाले! और सबका कल्याण चाहनेवाले हे परम कृपालु पिता! तू मुझे मेरे पूर्वजोंका अलौ-किक स्नेह दे, मेरे पूर्वजोंकी स्वतन्त्रता मुझे दे; मेरे पूर्वजोंकी वीरता मुझे दे; मेरे पूर्वजोंका आध्यात्मिक ज्ञान मुझे दे; मेरे

पूर्वजोंकी पवित्रता मुझे दे; मेरे पूर्वजोंका स्वदेश-प्रेम मुझे दे; मेरे पूर्वजोंकी प्रेमलक्षणा भक्ति मुझे दे; मेरे पूर्वजोंकी निस्पृहता मुझे दे; मेरे पूर्वजोंकी अच्छी वृत्तियाँ मुझे दे; मेरे पूर्वजोंका अभेदभाव मुझे दे; मेरे पूर्वजोंका शारीरिक बल मुझे दे; मेरे पूर्वजोंकी ऊँची अभिलाषा मुझे दे; मेरे पूर्वजोंका कुटुम्ब-स्नेह मुझे दे और मेरे पूर्वजोंके तेरे प्रति अनन्य भाव मुझे दे। हे प्रभु! यह सब पानेके लिये मैं अपने पूर्वजोंको उनकी विदाईके दिन श्रद्धाके साथ याद करता हूँ और प्रेमपूर्वक उनका श्राद्ध करता हूँ। इसलिये हे कल्याणकारी! हे मङ्गल स्वरूप! हे सबको ऊँचे चढ़ानेवाले! हे थोड़ेसे भी बहुत कर देनेवाले! हे जीवोंकी ऊँची अभिलाषा पूरी करनेवाले! हे मरे हुओंको शान्ति देनेवाले! हे सर्वशक्तिमान पवित्र पिता! तू मेरे पितरोंको शान्ति दे और उनके सद्गुणों तथा उनकी भली इच्छाओंके अनुसार चलनेकी शक्ति मुझे दे। हे कृपालु! ऐसी कृपा कर। कृपा कर। कृपा कर।

सूचना—इस प्रकारके विचारोंसे, इस प्रकारकी प्रार्थनाओंसे और इस प्रकारके आचरणोंसे अपने पूर्वजोंकी शक्ति अपनेमें भरना और उनकी आत्माकी शान्ति चाहना श्राद्धका मुख्य उद्देश है और ऐसा करनेका नाम ही श्राद्ध है तथा यह हमारा कर्त्तव्य है। इसलिये अपने पूर्वजोंके माननीय स्मारकके पवित्र दिनको अपनी आत्माके कल्याणके, अपने कुटुम्बके कल्याणके, अपनी जातिके कल्याणके, अपने भाइयोंके कल्याणके तथा अपने देशके कल्याणके कुछ न कुछ अच्छे काम करना चाहिये और अपनेसे होने योग्य अपने पूर्वजोंका कोई महान गुण ग्रहण करनेकी उस दिन प्रतिज्ञा करनी चाहिये। अगर इस तरहकी कुछ भी बात हो तभी श्राद्धकी सार्थकता है;

नहीं तो सिर्फ पिण्ड देनेसे ही कुछ नहीं होने का। इसलिये ऐसा काम कीजिये कि जिन्दगीमें कुछ उत्तमता आवे। ऐसा काम कीजिये कि जिन्दगीमें कुछ उत्तमता आवे।

अपने लड़केकी वर्षगाँठके दिन करनेकी प्रार्थना।

हे कृपालु! हे दयालु! हे प्रेमस्वरूप! हे अखण्ड आनन्द रूप! हे शान्तिदाता! हे मंगलकारी! हे छोटेसे बड़ा बनानेवाले! हे खराबसे अच्छा करनेवाले! और हे मनुष्यसे देवता बनानेवाले पवित्र पिता महान ईश्वर। तेरी कृपासे आज मेरे छोटे पुत्रकी वर्षगाँठ है। आज उसका दसवाँ वर्ष लगता है। हे पिता! ऐसा करना कि यह वर्ष उनको और हमको सुखदायी हो। ऐसा करना कि उसमें अच्छी विद्याका बीज लगे। ऐसा करना कि उसमें तेरे दिये हुए पवित्र धर्मके मूल तत्त्व जमें। ऐसा करना कि यह लड़का हमारे कुलमें नाम पैदा करे। इस पर ऐसी कृपा करना कि दूसरोंका दु:ख देखकर इसका जी दुखे। ऐसी कृपा करना कि इसमें मेरे सद्गुण आवें। इसे ऐसी सद्बुद्धि देना कि यह मेरे अधूरे कामों तथा भली इच्छाओंको पूर्ण करे। इसे ऐसी शक्ति देना कि यह हमारे देशके कल्याणके लिये अपना स्वार्थ त्याग सके। जगतका सौन्दर्य्य बढ़ानेमें इसको निमित्त होने देनेकी कृपा करना। तू अपने नियम पालनेके लिये इसे बल देना और हे नाथ! यह सब होनेके लिये इस बालकको भली भाँति शिक्षा देनेकी मुझे सद्बुद्धि देना।

हे नाथ! हे नाथ! हे नाथ! हे नाथ! हे नाथ! इसका, मेरा और सबका असली पिता तू ही है; मैं तो दुनियादारीके नियमके अनुसार इसका घड़ी भरका निमित्त मात्रका पिता

हूँ; इससे मुझे अपने तुच्छ स्वार्थकी छोटी छोटी बातें इसमें ठूसनेका कुछ भी हक नहीं है। अपनी मरजीके अनुसार इसको चलानेके लिये इस पर जोर जुल्म करनेका मुझे कुछ भी हक नहीं है; इसको अज्ञान रखकर तरह तरहकी गुलामीमें बाँध रखनेका मुझें कुछ भी हक नहीं है; अपनी मरजीके मुताबिक अपना मन खुश करनेके लिये बिना कुछ विशेष विचार किये जैसे तैसे व्याह कराके जीवन भर बन्धनमें इसको बाँध देनेका मुझे कुछ भी हक नहीं है और दरअसल यह तेरा पुत्र है इसलिये तेरे जिन महान गुणोंका अंश इसमें है उन महान गुणोंको अपने स्वार्थके लिये दबा देनेका मुझे कुछ भी हक नहीं है। क्योंकि मैं भली भाँति समझता हूँ कि यह पवित्र आत्मा मेरा नहीं तेरा पुत्र है और तूने मेरे ऊपर कृपा करके यह अनमोल धन मुझे सौंपा है। तूने इस इच्छासे और इस आशासे ही मुझे पवित्र आत्मा जैसी अनमोल थाती सौंपी है कि इसका सदुपयोग करके मैं भवसागर तर सकूँ; इस जिन्दगीमें स्वर्ग पा सकूँ और अन्तको तुझे पा सकूँ। इसलिये हे प्रभु! मैं अपना ऐसा विश्वास करनेके लिये तुझे हजार हजार वार धन्यवाद देता हूँ। इस थातीका व्याज बढ़ाकर उचित समय पर इसको लौटा देना मेरा कर्त्तव्य है अर्थात् इस बालकमें सद्गुणोंको चमकाकर तेरे चरणोंकी शरणमें इसे डालना मेरा कर्त्तव्य है और यह कर्त्तव्य जितनी उत्तमतासे हम पूरा कर सकें उतना ही अधिक तू हम पर प्रसन्न रहता है। इसलिये हे प्रभु! इस निर्दोष बालकमें तेरे सद्गुण चमकानेकी और इस रास्ते उसकी तथा अपनी जिन्दगीमें अमृत भरनेकी, सृष्टिका सौन्दर्य्य बढ़ानेकी, तेरे मार्गमें चलनेकी, संसारमें स्वर्ग अनुभव करनेकी और अन्तको तू अपनेपाने-

की मुझे और इस बालकको शक्ति दे, शक्ति दे। क्योंकि हे प्रभु! लोकाचारके अनुसार मेरी समझमें यह मेरा बालक है परन्तु ज़रा ध्यानसे देखता हूँ तो मुझे ऐसा मालूम होता है कि यह सिर्फ मल मूत्रका या केवल हाड चामका बालक नहीं है जैसा कि इस समय बाहरसे, ऊपरी निगाहसे, मालूम होता है बल्कि यह बालक तो आकाशका तारा है। इसमें सारी नयी दुनिया है और यह अनेक जगतको बहुत समय तक अपना प्रकाश दे सकता है। यह बालक तो स्वर्गका देवता है और इस संसारमें स्वर्ग लानेके लिये यह यहाँ आया है। यह बालक ऐसी अमर आत्मा है जिसका किसी तरह कभी नाश नहीं हो सकता और यह मृत्युके भयसे जगतको छुड़ानेके लिये यहाँ आया है। यह बालक पवित्रताका अवतार है और जगतमें पवित्रता फैलानेके लिये आया है। यह बालक आनन्द-रूप है और जगतके सब जीवोंको आनन्द देनेके लिये ही यहाँ आया है। यह बालक प्रेमका अवतार है और जगतको प्रेम सिखानेके लिये यहाँ आया है। यह बालक, बालक नहीं है बल्कि ईश्वरी मायाका एक बड़ा चमत्कार है। इतना ही नहीं, मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यह बालक, जैसा कि इस समय मालूम होता है, अज्ञान बालक नहीं है बल्कि बालकके रूपमें स्वयं ईश्वर ही है। हे प्रभु! क्या यह बात सच है? क्या तू आप ही हम लोगोंके यहाँ बालक रूपमें आता है? क्या तू स्वयं बालकोंके रूपमें हमारा प्राणसे भी प्यारा धन है? क्या तू आप ही हमको तारनेके लिये बालक-रूपमें हमारे घर आता है? और जो किसीके ख्यालमें भी नहीं आ सकता, जिसका पार नहीं मिलता है, जो निरंजन है, जो निराकार है, जिसका आदि अन्त नहीं है, जिसका शिव ब्रह्मादिको भी

पता नहीं लगता और वेद भी जिसको नेति नेति कहते हैं वह अव्यक्त रहनेवाला तू क्या आप ही व्यक्ति रूपमें—बालक रूपमें यहाँ आया है ? धन्य प्रभु ! धन्य !! तेरी प्रभुताको धन्य है, धन्य है, धन्य है। परन्तु हे प्रभु ! यह ज्ञान मेरे हृदयमें नहीं ठहरता और तेरा यह स्वरूप मेरी समझमें नहीं आता और समझनेकी कोशिश करता हूँ तो भी नहीं जँचता। इससे यह बात ठीक ठीक समझमें नहीं आती कि तू बालक रूपमें आप है। परन्तु यह तो हम अवश्य मानते हैं कि जगतके सब जीव तेरे पुत्र हैं और अंश हैं। तिस पर भी अफसोस है कि जिस प्रेमभावसे उनके साथ वर्ताव करना चाहिये उस प्रेमभावसे हम उनके साथ वर्ताव नहीं करते क्योंकि हमारा यह मानना भी ऊपर ही ऊपर का है। इसलिये हे प्रभु ! हम पर ऐसी कृपा कर कि अपने बालकों तथा जगतके सब जीवोंको तेरा अंश और तेरा पुत्र समझकर हम उनके साथ इसीके अनुसार वर्ताव करें और उनमें भी तेरे गुण तथा तेरा स्वरूप हमको अच्छी तरह दिखाई दे। ऐसी कृपा कर। कृपा कर।

सूचना—जब हम अपने बालकोंकी महिमा इस प्रकार समझेंगे और जब मनुष्य इस प्रकार मनुष्योंका मूल्य समझेंगे तभी हम लोग अधिक उदारतासे, अधिक जी खोल कर, अधिक क्षमासे और अधिक स्वतन्त्रतासे वर्ताव कर सकेंगे। और जब इस प्रकार स्वाभाविकताको सामने रखकर, प्रेमके भक्त होकर, बुद्धिको मददमें रखकर, जीवनके उत्तम उद्देश समझ कर और आत्माके असली स्वरूपके रास्ते खुले रखकर आगे बढ़ेंगे तभी इस संसारमें स्वर्ग आ सकेगा, तभी हमें हृदयका सन्तोष मिल सकेगा, तभी जगतका अधिकसे अधिक कल्याण हो सकेगा और तभी बीचमें कुछ भेद न रह

कर परमात्माके साथ आत्मा तन्मय हो सकेगी तथा तभी जीवनकी सार्थकता होगी। यह सब अपने लड़कोंको कमजोर बनाये रखनेसे तथा अपने भाइयोंका खुल्लमखुल्ला नाहक तिरस्कार करनेसे नहीं वरंच जगतके सब मनुष्योंको कोमल समझनेसे और अपने बच्चोंको ईश्वरकी थाती समझनेसे होता है। इसलिये इन बातोंकी खास सम्हाल रखना चाहिये कि अपने बालकोंमें अपना कोई अवगुण न आ जाय, उनकी कोई अच्छी वृत्ति हमारे स्वार्थके कारण कुम्हला न जाय, उनकी कोई ऊँची इच्छा हमारी भूलसे मर न जाय, हमारे रिवाजोंके बन्धनके कारण उनसे किसी तरहका पाप न हो जाय और उनके आत्मविकासमें हम कहीं पर किसी तरह बेजाने भी आड़े न आवें। इसके सिवा उनको अच्छे रास्तेसे आगे बढ़ानेमें जहाँ तक बन पड़े मदद करनी चाहिये। क्योंकि हमारे बालक हमारे देशकी भविष्यकी आशा हैं; हमारे बालक हमारे कुलके दीपक हो सकते हैं, हमारे बालक हमारे कीर्तिस्तम्भ हो सकते हैं; हमारे बालक हमारे देशके कल्याणके शिखर हो सकते हैं, हमारे बालक हमारे देशकी उन्नतिकी नींव हो सकते हैं, हमारे बालक हमारे देशकी पिछड़ी हुई जनतामें जागृति ला सकते हैं, हमारे बालक कुदरतके मददगार हो सकते हैं, हमारे बालक सृष्टिका सौन्दर्य बढ़ा सकते हैं; हमारे बालक हमारी तथा हमारे देशकी नाक हैं और हमारे बालक, जैसा कि आजकल हम समझते हैं रोनी सूरतके बालक नहीं हैं, बल्कि भविष्यमें बड़े बड़े चमत्कार कर सकनेवाले असलमें जादूगर हैं। क्योंकि वे प्रभुके पुत्र हैं और उनमें प्रभुका अंश मौजूद है। इसलिये अपने तथा दूसरे बालकोंको जैसे बने वैसे सुधारना, उनको आगे बढ़ाना और

ऐसा करता कि वे सुखी हों। इसमें हमारा तथा हमारे देश का कल्याण है और इसीसे ईश्वर प्रसन्न होता है। इसलिये इस विषयमें खास ध्यान रखना। खास ध्यान रखना। खास ध्यान रखना।

बीमारीके समयकी प्रार्थना।

हे प्रभु! हे अभिमानियोंका अभिमान उतारनेवाले! हे पापियोंको पुण्यके रास्तेमें लानेवाले! हे अपने नियम तोड़नेवालेको सज़ा देनेवाले! हे सूलीका संकट सुईसे घटानेवाले! और सजामें भी कल्याण करनेवाले हे दयालु पिता! तेरा कोई नियम तोड़नेसे मैं बीमार पड़ा हूँ, शरीरके सुखदायक नियम न पालनेसे मैं बीमार पड़ा हूँ, अपनी इन्द्रियोंको वशमें न रखनेसे मैं बीमार पड़ा हूँ; बिना कारण अपनी खुशीसे झूठी नज़ाकतका गुलाम बननेसे मैं बीमार पड़ा हूँ; कितने विषयोंमें व्यर्थ हाय हाय करने, बिना कारण घबराने, अनमोल ज़िन्दगी बिगाड़ने, जान बूझ कर पोल चलाने, मिताहारपन न रखने और प्रकृतिके नियम समझ कर न पालनेसे मैं बीमार पड़ा हूँ; क्योंकि तुझसे विमुख रहनेके कारण ही मुझमें ऐसे ऐसे दोष हैं और इन दोषोंके कारण ही मैं बीमार पड़ा हूँ। इसलिये हे प्रभु! अब मुझे मालूम होता है कि यह रोग मेरी कड़ी सजा करनेवाला गुरु है; इससे मैंने यह सीखा है कि तेरे नियम न पालने और तेरे मार्गमें न चलनेसे ऐसा बुरा हाल होता है। हे प्रभु! अब मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि: जहाँ तक बन पड़ेगा, तेरे नियम पालूँगा; जहाँ तक बनेगा मिताहारी हूँगा; यथाशक्ति इन्द्रियोंको वशमें रखूँगा और जहाँ तक बनेगा तेरी भक्ति करूँगा।

इसलिये हे प्रभु! हे पिता! मुझे इस दुःखदायक रोगसे बचा। मुझे रोगरूपी कठोर शिक्षागुरुके पंजेसे छुड़ा और इस मौतका वारंट लानेवाले यमदूतके फन्देसे छुड़ा, छुड़ा, छुड़ा। इसकी सजाका असर मुझ पर भरपूर हो गया और इस सजाके कारणोंको मैं समझ गया। अगर यह रोग न आया होता तो मैं जल्द चेत न सकता। इसलिये जो हुआ है वह अच्छा ही हुआ है, परन्तु अब मुझको इससे छुड़ा; क्योंकि अब मैं तेरे नियम पालने और तेरी भक्ति करनेका शुद्ध अन्तःकरणसे वादा करता हूँ। हे परम कृपालु पिता! अपने भाइयोंकी सेवा करनेके लिये, अपने देशकी भलाई करनेके लिये, अपना जीवन सार्थक करनेके लिये और तू अपनी भक्ति करनेके लिये मुझे इस बीमारीसे बचा, बचा, बचा।

सूचना—अगर इस प्रकार प्रभुके नियम पालने और धर्म्मके मार्गमें चलनेकी प्रतिज्ञा शुद्ध अन्तःकरणसे कीजियेगा तो ईश्वर-कृपासे जरूर बीमारीसे छूट जाइयेगा। क्योंकि, हमारी समझसे हमारी कल्पनासे और हमारे विश्वाससे भी प्रार्थनाका तथा धर्म्मका बल बहुत अधिक है। इसके सिवा दयालु ईश्वरसे अपने बालकोंको रोगमें हैरान होते नहीं देखा जाता। परन्तु हम जब किसी तरह नहीं समझते और लगातार भूल करते ही जाते हैं तब उन भूलोंसे हमें बचानेके लिये और हमें सुधारनेके लिये ही बीमारी आती है। और दयालु ईश्वरकी खास खूबी तो यह है कि किसी रोगको हमारे शरीरमें रहना भाता ही नहीं क्योंकि उसके आरामसे रहने लायक हमारा शरीर नहीं है इससे शरीरकी प्रकृति आप ही रोगोंको बाहर निकाल देनेके लिये भीतरसे धक्का मारा करती है और प्रकृति भी रोगके विरुद्ध है, इसलिये किसी किसका

रोग हमारे शरीरमें सहजमें आ ही नहीं सकता॥ परन्तु जब हम उसको खास चाह कर बुलाते हैं अर्थात् प्रकृतिके न सहने योग्य बड़ी बड़ी भूलें करते हैं तभी डरते डरते रोग लाचारीसे आता है और तिस पर भी जरा सा भी मौका पाते ही हर घड़ी भागनेको तय्यार रहता है। क्योंकि प्रकृति स्वयं इसको अन्दरसे धक्के मारा करती है। अगर हम प्रकृतिके नियम पालें, ईश्वरके मार्गमें चलें और धर्मका बल रखें तो किसी किसकी शुरूकी बीमारीका मिट जाना कुछ बड़ी बात नहीं है। इसलिये जिन्दगी सुधारनेकी प्रतिज्ञा कीजिये। तब अनेक प्रकारके रोग बहुत सहजमें तथा बहुत जल्द मिट जायंगे।

बीमारीके विषयमें हमने अब तक बहुतेरी भली बुरी बातें सुनी हैं, इससे यह सिद्धान्त तुरत नहीं जंच सकेगा परन्तु श्रद्धा रख कर जरा करके तो देखिये। अगर यह सोचते हों कि बहुत फायदा न होगा तो भी इससे कुछ नुकसान तो नहीं होगा? तब क्यों डरते हैं? जरा करके तो देखिये। तब थोड़े ही समयमें जान लीजियेगा कि प्रभुके नियम पालनेकी और प्रार्थनाकी खूबी कुछ और ही है; धर्मके बलकी खूबी कुछ और ही है और प्रभुको बीचमें रखकर जिन्दगी सुधारनेका ठहराव करनेकी खूबी कुछ और ही है। इन खूबियोंके पास बेचारा रोग टिक नहीं सकता और टिक नहीं सकेगा। इसलिये अगर बीमारीसे बचना हो तो इन खूबियोंसे लाभ उठाइये। इन खूबियोंसे लाभ उठाइये।

रोग मिटनेके समयकी प्रार्थना।

हे पिता! हे पिता! हे रोगसे बचानेवाले! हे शत्रुसे बचानेवाले! हे मुरझाये हुएको हरा-बनानेवाले! हे पुरानेमें;

नया करनेवाले ! हे तिनकेसे पहाड़ करनेवाले ! हे सब तरह-की बलाओंसे बचानेवाले ! और हे मृत्युसे जीवनमें ले जाने-वाले परमात्मा ! तेरी कृपासे मैं बीमारीसे आराम हो गया हूँ; तेरी कृपासे मैं अब अच्छा हुआ हूँ, तेरी कृपासे इस बीमारीमें भी मुझे तेरी दया और तेरी महिमा दीख पड़ी है; तेरी कृपासे अब मेरे जीवनमें नया फेर बदल होगा और तेरी कृपासे ही आज मैं इन सबका उपकार माननेमें समर्थ हुआ हूँ। क्योंकि मैं देखता हूँ कि इस किसमकी बीमारीसे बहुतेरे आदमियोंकी जिन्दगी ख़राब हो गयी है; इस किसमकी बीमा-रीसे कितने ही आदमियोंकी अनेक प्रकारसे तबाही हुई है और इस किसमकी बीमारीसे कितने ही आदमी मेरी आंखोंके सामने मर गये हैं। परन्तु हे प्रभु ! हे प्रभु ! हे प्रभु ! इन सब आफतोंसे मैं जो बच गया वह केवल तेरी कृपासे। इसमें मेरी बुद्धि कुछ काम नहीं कर सकती थी परन्तु तू ने विशेष दया करके इस बीमारीके बहाने मेरे कितने ही विकारोंको हर लिया है और मुझे पहलेकी तरह हलका फूल सा और कुछ नया आदमी बना दिया है। इसलिये हे प्रभु ! बीमारीके समय चाल चलन सुधारनेके लिये मैंने जो जो संकल्प किये थे, बीमारीके समय दान पुण्य करनेके लिये मैंने जो जो मन्नतें मानी थीं, बीमारीके समय मेरे हृदयमें जो जो उत्तम भावनाएं जगी थीं और बीमारीके समय मुझे जैसी तेरी जरूरत जान पड़ी थी वैसी जरूरत, वैसी भावना, वैसी मन्नत और वैसे संकल्प अब सदा बने रहें और वे मेरे रोज रोजके व्यवहारमें काम आवें ऐसी कृपा कर। ऐसी कृपा कर। क्योंकि तेरी कृपाका बल होनेसे ही, तेरे आसरेका बल होनेसे ही और तेरी महिमा समझमें आनेसे ही मुझमें आत्मिक बल आ

सकूंगा और तभी मैं अपनी प्रतिज्ञाएं पाल सकूंगा। इसलिये हे भगवान! बीमारीके समय अपनी जिन्दगी सुधारनेके लिये मैंने जो जो प्रतिज्ञाएं की हैं उनके पालनेका मुझे बल दे। बल दे।

सूचना—बीमारीसे अच्छा होना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है। यों तो हम हजारों आदमियोंको अपनी नजरके सामने आराम होते देखते हैं, परन्तु आराम हो जाने पर बीमारीके समय की हुई अपनी जिन्दगी सुधारनेकी प्रतिज्ञाएं पालना, बीमारीके समय जैसे जगतका मिथ्यापन समझमें आता था वैसे ही आराम हो जाने पर भी समझा करना, बीमारीके समय जैसी उदारता आती है वैसी उदारता आराम होने पर भी बनाये रखना और बीमारीके समय जैसे प्रभुकी दयाकी, प्रभुकी भक्तिकी, प्रभुके मार्गमें चलनेकी और प्रभुके कोपसे बचनेकी जरूरत समझमें आती है, वैसी ही समझका आराम हो जाने पर भी हमेशा बना रहना खूबीकी बात है। अगर ऐसा हो तो रोग भी आशीर्वाद रूप हैं। परन्तु यह तो उन्हींसे होता है जो महाभाग्यशाली हैं और दृढ़ मनके हैं। और लोग श्मशान वैराग्यकी तरह आराम हो जाने पर सब भूल जाते हैं और पहलेकी तरह बन जाते हैं। इसलिये भाइयो! और बहनो! ऐसे कमजोर न होकर महान ईश्वरके कृपापात्र होनेकी चेष्टा करना और बीमारीके समय प्रकृतिके घटाये हुए अपने विकारोंके फिरसे गुलाम मत बन जाना।

किसी प्रिय परिजनके मर जानेके समयकी प्रार्थना।

हे प्रभु! हे रुद्र! हे उग्र रूपवाले! हे संहारकर्त्ता! हे कालके भी काल! और नाश करनेमें भी खूबी दिखानेवाले हे परम मंगलकारी महान पिता! आज मेरी छोटी लड़की

तेरे चरणकी शरणमें गयी है। हे प्रभु ! तूने, हमें जो थाती सौंपी थी उसे आज ले लिया है इससे हम सबको बहुत बुरा मालूम हो रहा है; क्योंकि हमने उस पर बड़ी बड़ी आशाएँ बाँधी थीं। वह हमारे स्नेहकी जगह थी; वह हमारे आनन्द-की मूर्त्ति थी, वह हमारे गुणोंको चमकानेवाली थी; वह हमारे मनका खेलौना थी; वह हमारा जंजाल भुलवाकर हम-को हँसानेवाली बालिका थी और वह हमको प्रसन्न करके हममें नयी जान डालकर उन्नतिके मार्गमें ले जानेवाली हमारी स्वर्गकी नन्ही देवी थी। उसके चले जानेसे हमको बड़ा शोक होता है और रुलाई आती है, इसके लिये तू हमें क्षमा कर। क्योंकि हे नाथ ! शास्त्रकी आज्ञासे हम जानते हैं कि किसीके मरने पर रोना नहीं चाहिये। किसीके मरने पर रोना पाप है, मरने पर रोना नालायकी है; मरने पर रोना अज्ञानता है; मरने पर रोना हमारी आत्माकी अधोगति है और किसीके मरने पर रोना मरे हुएकी आत्माको महा दुःख देनेके बराबर है। इसलिये मरने पर रोना न चाहिये। यह हम जानते हैं तो भी हमें स्वार्थके कारण रुलाई आती है; इस अपराधके लिये हे प्रभु ! क्षमा करना।

हे नाथ ! कुछ दिन पहले जब हमारे वृद्ध पिताजी गुजर गये तब भी मैं बहुत रोने लगा था। उस समय मेरे एक पड़ोसी भक्तने मुझे समझाया था कि भाई ! आत्मा अमर है और देहका नाश हुए बिना नहीं रहता। जो जन्मा है वह तो मरेगा ही। इसके सिवा हम जन्म लेनेसे पहले कहाँ थे यह कोई नहीं जानता और न यही कोई जानता है कि मरने पर हम कहाँ जायँगे। सिर्फ जन्म और मरणके बीच यह शरीर दिखाई देता है, इसलिये इसका अफसोस न करना चाहिये।

हमारे अफसोस करनेसे प्रकृतिका नियम नहीं बदलनेका, हमारे अफसोस करनेसे शरीरका मूल गठन नहीं बदलनेका और हमारे अफसोस करनेसे कालको दया नहीं आनेकी; बल्कि अफसोस करनेसे उल्टे हमारी तथा मरे हुएकी खराबी ही होती है। क्योंकि हम जब तक रोते हैं तब तक मरे हुए जीवकी वासनाएँ हमारी ओर खिंचती हैं परन्तु अपनी वासनाएँ पूरी करनेके लिये उस समय उसके पास कोई उपाय नहीं रहता, इससे हमारे अफसोसके कारण प्रेतलोकमें उसको बहुत दुःख होता है। इसलिये अगर मरे हुए पर हमें स्नेह हो और उसे शान्ति देना हो तो हमें जरा भी अफसोस न करना चाहिये; बल्कि यह समझना चाहिये कि जब देह बूढ़ी होती है, अशक्त होती है तथा सोचा हुआ काम नहीं कर सकती और उसका जीव अनेक प्रकारका ज्ञान तथा अनुभव पाकर पक्का हो जाता है और अधिक अच्छा काम करने योग्य हो जाता है तब प्रभु कृपा करके उसकी पुरानी देह ले लेते हैं और उसके बदले उसकी योग्यताके अनुसार उसको और अच्छी देह देते हैं। जैसे, हम अपना अँगरखा पुराना होने, फट जाने या तंग हो जाने पर छोड़ देते हैं और उसके बदले अपने बदनमें होने योग्य नया, सुन्दर और टिकाऊ अँगरखा पहनते हैं; वैसे ही हमारे जीवको जब हमारी देह तंग पड़ जाती है अर्थात् उसमें रहकर वह अधिक उन्नति नहीं कर सकता और घबराता है तब उसके ऊपर दया करके ईश्वर उसको उस निरुपयोगी बनी हुई देहसे छुटकारा देते हैं और इसके बदले ऐसी नयी देह देते हैं कि जिससे वह उन्नति कर सके। इसलिये मृत्यु दुःख नहीं है बल्कि मृत्यु उन्नति है। मृत्यु भय नहीं है बल्कि मृत्यु आशा है। मृत्यु नाश नहीं है

बल्कि मृत्यु स्थितिका फेर बदल है। मृत्यु अवनति नहीं है बल्कि मृत्यु जीवकी वृद्धि है और मृत्यु प्रकृतिकी क्रूरता नहीं है बल्कि मृत्यु ईश्वरकी दया है। अतएव हमें मृत्युका अफसोस न करना चाहिये। हे नाथ! हमारे देशमें हमारे लाखों भाई बहनें इन सभी बातोंको नहीं जानतीं परन्तु तेरी कृपासे मैं इन बातोंको जानता हूँ तो भी इनको पाल नहीं सकता, इससे मुझे रुलाई आती है। इसके लिये मुझे क्षमा कर। क्षमा कर। और ऐसी परीक्षाके प्रसङ्गोंमें धीरज रखनेका मुझे बल दे।

हे नाथ! मेरी बेटी मेरा रत्न थी; मेरी बेटी मेरा दीपक थी; मेरी बेटी मेरे घरकी शोभा थी, मेरी बेटी मेरा आधार थी; मेरी बेटी मेरा खिलौना थी, मेरी बेटी निर्दोषिताका नमूना थी; मेरी बेटी आनन्दका अवतार थी; मेरी बेटी प्रेमकी पुतली थी; मेरी बेटी रूपका भंडार थी और मेरी बेटी गुणकी खान थी। इससे उस हंसमुख लड़की पर मैंने बड़ी बड़ी आशाएं बांधी थीं। परन्तु दैव इच्छा बलवान है। प्रभु! प्रभु!

हे नाथ! अब अन्तमें मेरी यही प्रार्थना है कि उसका नाम बनाये रखनेके शुभ काम करनेकी सद्बुद्धि मुझे दे और मेरी उस लाडलीकी आत्माको शान्ति देना! शान्ति देना!

सूचना—बन्धुओ! याद रखना कि "जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु" जो जन्मा है वह अवश्य मरेगा। इससे किसी दिन हमें भी मरना ही पड़ेगा और हमारे कुलमें भी ऐसा प्रसङ्ग आये बिना नहीं रहेगा। इसलिये पहलेसे ही मनमें ऊंचे दरजेके संस्कार बिठाना चाहिये कि जिससे उस समय घबरा न जायं। अभीसे हमें समझ लेना चाहिये कि मृत्यु केवल दुःख नहीं है बल्कि उसमें भी ईश्वरकी दया है। इसलिये मृत्यु हमें

पसन्द न हो तो भी उस समय सन्तोष करना सीखना चाहिये और खूब अच्छी तरह यह समझ लेना चाहिये कि अपने स्वार्थके कारण हमारे रोने बिलखनेसे मरे हुएका कल्याण नहीं होता। परन्तु उसकी आत्माको शान्ति देनेके लिये हम ईश्वरसे प्रार्थना करें और अपनी शक्तिके अनुसार उसके नाम पर कुछ दानपुण्य करें तभी उसकी आत्माको शान्ति होती है। इसके सिवा यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है कि जो आदमी अपना कर्त्तव्य ठीक ठीक नहीं पालते; जो आदमी ऊंचे उद्देशसे परमार्थमें जिन्दगी नहीं बिताते; जो आदमी देश काल और अपनी स्थितिकी खोज खबर नहीं रखते; जो आदमी अपनी आत्माको भीतरी ढारस देने योग्य अच्छे काम नहीं करते; जो आदमी जगतका मिथ्यापन न समझ कर अन्त तक मायाके मोहमें ही पड़े रहते हैं और जो आदमी प्रेमपूर्वक प्रभुकी भक्ति नहीं करते तथा जो आदमी बुरी रीतिसे अपनी जिन्दगी बिताते हैं वे ही आदमी मृत्युसे डरते हैं। इसलिये अगर मृत्युके शोकसे बचना हो तो हमें अच्छीसे अच्छी रीति पर जीवन बिताना सीखना चाहिये।

जब कुछ नुकसान हो उस समयकी प्रार्थना।

हे नाथ! हे पापकी सजा देनेवाले! हे सजामें भी भलाई करनेवाले! और हे सूलीका संकट सुईसे पटानेवाले परम कृपालु परमात्मा! कुछ मेरी भूलके कारण तथा कुछ प्रतिकूल-संयोगके कारण मेरी नौकरी आज छूट गयी है; इससे आज मुझे बड़ा अफसोस होता है; क्योंकि मैं गरीब आदमी हूँ और मेरे कुटुम्बका गुजारा मेरी इस नौकरीकी तलबसे ही होता था। उसके बन्द हो जानेसे मुझे बहुत अफसोस होता है और यह फिकर होती है कि अब कैसे क्या करूंगा। इसलिये

हे नाथ! ऐसे कुसमयमें तू मुझे मनका सामंजस्य बनाये रखनेका धीरज दे। मनमें ऐसी आशा उपजा कि इससे भी परिणाममें कुछ अच्छा ही होगा। अगर इससे भी गहरा दुःख आ पड़ता तो मैं क्या कर सकता? इसके बदले इतनेसे ही छुटकारा हुआ इसलिये ऐसी सद्बुद्धि दे कि मैं तेरा उपकार मानूं। हे नाथ! आज तक नौकर रह कर मैंने अपने भाग्यको थोड़ी तनखाहमें बेच डाला था परन्तु अब इस गुलामीसे मैंने उसको छुड़ाया है। जब मैं दूसरेका नौकर था और पराधीन था तब मुझे समय नहीं मिलता था, इससे आगे बढ़नेका, बाहर निकलनेका, भाग्य आजमानेका और सुखी होनेका मौका नहीं मिलता था; परन्तु अब नौकरी छूटनेसे यह सब मौका मेरे हाथमें है इससे मैं कुछ अधिक पुरुषार्थ करके जरूर अधिक लाभ उठाऊंगा, ऐसा ढारस रखनेकी मुझमें प्रेरणा कर। और हे परम कृपालु पिता! मेरे जैसे अयोग्यकी अधिक परीक्षा मत लेना; मेरे जैसे अधीर स्वभाववालेको अधिक समय तक न भटकाना; मेरे जैसे गरीबको अधिक गरीबीमें डालनेका परिश्रम मत करना; मेरे जैसे उपाधिवाले झंझटी जीवको अधिक तरददुदमें मत डालना और हे नाथ! मैं तुझसे दूर हूँ इससे तू मेरे पापोंका ख्याल करके मुझसे दूर मत होना बल्कि तू अपनी प्रभुताका विचार करके मेरे ऊपर दया ही करना, दया ही करना, दया ही करना। हे नाथ! मेरी जो यह छोटी सी नौकरी गयी उसके बदले तू कुछ अधिक लाभ देनेकी कृपा कर। हे प्रभु! मुझे विश्वास है कि तू मुझे भूलेगा नहीं। हे प्रभु! कृपा करके अब इस घबराते जीवको जल्द सम्हाल ले, जल्द सम्हाल ले, जल्द सम्हाल ले।

सूचना—हमें सदा यह बात अच्छी तरह याद रखना चाहिये कि हमारी जिन्दगीमें प्रसङ्गवश जैसे कितने ही छोटे बड़े फायदे होते हैं वैसे ही छोटे बड़े कितने ही तरहके नुकसान भी होंगे और दुःख भी आवेंगे; इसमें कुछ सन्देह नहीं है। क्योंकि यह संसार सुखदुःखसे भरा हुआ है और हमारी जिन्दगी भी उसीमें है, इससे हम उससे बच नहीं सकते। जैसे, किसी समय नौकरी छूट जाती है; किसी समय रोजगार-धन्धेमें घाटा लग जाता है; किसी समय कहीं रुपया मारा जाता है; किसी समय परीक्षामें फेल होना पड़ता है; किसी समय कहीं अपमान होता है; किसी समय मनके वशमें न रहनेसे दुःख होता है; किसी समय रेलमें, जहाज या नावमें, रास्तेमें या घरमें कोई दुर्घटना हो जाती है; किसी समय कुटुम्बमें कोई बीमार पड़ जाता है; किसी समय जाति बिरादरीसे, दुश्मनसे, राजासे, चोरसे या अग्निसे कुछ कष्ट भोगना पड़ता है; और किसी समय लड़के-वालोंसे कुछ सुनना सहना पड़ता है। यों अनेक प्रकारसे सब आदमियोंको प्रसङ्गवश कुछ-न कुछ नुकसान होता है; उस नुकसानके कारण मन दुःखी होता है। मन वारंवार दुःखी हुआ करे तो इससे जीवको नरकमें जाना पड़ता है। ऐसा न होने देनेके लिये श्रीकृष्ण भगवानने गीतामें कहा है—

मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्ण सुखदुःखदाः।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत॥

अ० २ श्लो० १४

विषयों और इन्द्रियोंके संयोगसे जो सुखदुःख उत्पन्न होते हैं वे आते हैं और चले जाते हैं और थोड़ी देर रहते हैं; इसलिये हे अर्जुन! तू उन्हें सह ले।

प्रभुका ऐसा साफ हुकम है कि सुखसे फूल मत जाओ और दुःखसे डरकर रोया मत करो; बल्कि सुख और दुःख दोनोंमें शान्ति रखना सीखो। हमारी जिन्दगीमें सुख और दुःख वारंवार आते हैं। अगर दुःखसे हम वारंवार हैरान हुआ करें तो फिर कैसे निबहेगा? इसलिये हमें सुख दुःखमें समता रखनी चाहिये और ऐसे कठिन प्रसङ्गोंमें भी समता रखनेके लिये प्रार्थनाकी आदत डालनी चाहिये। क्योंकि बड़े भक्त सदा यह समझते हैं कि भगवान जो करते हैं वह अच्छा ही करते हैं और जो दुःख होता है वह भी कुछ सुखके लिये ही होता है। यह समझ कर दुःखके समय भी भक्त लोग प्रभुकी इस दयाके लिये कृतज्ञता प्रकट करते हैं कि उसने इतना ही थोड़ा दुःख दिया। जैसे—

एक भक्त था वह कुछ आदमियों सहित एक गलीसे चला जाता था। इतनेमें ऊपरसे किसी ओने अनजानमें एक खाँची राख डाल दी। वह उस भक्तके ऊपर पड़ी जिससे उसकी पगडी और अँगरखेमें राख भर गयी और आँख, मुँह तथा कानमें भी थोड़ी राख पड़ गयी। वह भक्त उस समय वहीं खड़ा हो गया और उसने अपना मुँह पोंछा तथा कपड़े झाड़े। फिर वह भगवानकी प्रार्थना करने लगा। यह देखकर उसके साथियोंमेंसे किसीने पूछा कि महाराज! यह क्या कर रहे हैं? भक्तने कहा कि भाई! प्रार्थना कर रहा हूँ और ईश्वरका उपकार मानता हूँ। यह सुनकर उस आदमीने कहा कि क्या यहाँ कोई तीर्थ है? या कोई मन्दिर है? या यहाँ कोई महात्मा हैं? वा यहाँ कोई देवता हैं? यहाँ तो रास्तेमें खड़े हैं, यह कोई प्रार्थनाकी जगह थोड़े है। और सिर पर टोकरीकी राख गिरी इसमें उपकार किस

बातका है? क्या कुछ धन मिला है, मान मिला है, अधिकार मिला है, या मनमाना काम हुआ कि उपकार माना जाय? टोकरीकी राख गिरनेसे कपड़ा बिगड़ा और आँखें मलनी पड़ीं, इसमें उपकार माननेकी क्या बात है? यह सुनकर उस भक्तने कहा कि भाई! राखसे ही छुटकारा मिला यह उपकार माननेकी बात है। राखके बदले अगर ऊपरसे गेंहुअन साँप गिरा होता तो हम क्या कर सकते? राख गिरनेके बदले अगर हम पर यह दीवार गिर गयी होती तो हम क्या कर सकते? राखके बदले अगर ज्वालामुखीका धधकता अंगारा आ गिरता तो हम क्या कर सकते? और अगर राखके बदले आकाशसे हम पर बिजली गिर पड़ी होती तो भी हम क्या कर सकते थे? परन्तु भाई! दयालु प्रभुने अपनी कृपासे यह सब नहीं होने दिया और सिर्फ राखसे निबटाया इसलिये मैं उनका उपकार मानता हूँ। इस प्रकार सच्चे भक्त जब भारी आफतके समय भी ईश्वरका उपकार मानते हैं तब सुखमें उपकार मानना कौन बड़ी बात है? इसलिये भाइयो! धन मिलने पर, प्रतिष्ठा मिलने पर, परीक्षामें पास होने पर, अच्छा रोजगार धन्धा या नौकरी चाकरी होने पर, कुछ अचानक लाभ हो जाने पर और ऐसे ही ऐसे दूसरे अच्छे प्रसङ्ग आने पर तथा बुरे प्रसङ्गोंमें भी—सब समय प्रेमपूर्वक प्रार्थना किया कीजिये। तब आप अपने मनका समतूलपन बनाये रख सकेंगे, ढारस बाँध सकेंगे, धीरज रख सकेंगे और ठीक मौके पर सर्वशक्तिमान परम कृपालु परमात्माकी सहायता पा सकेंगे। इसलिये अच्छे या बुरे हर एक प्रसङ्ग पर प्रेमपूर्वक प्रभुकी प्रार्थना किया कीजिये। प्रार्थना किया कीजिये।

इस प्रकार अपनी जिन्दगीके सब बड़े बड़े प्रसङ्गों पर

देशकाल तथा अपनी दशा और इर्दगिर्दका संयोग देखकर अपनी बुद्धिके अनुसार प्रसङ्गके अनुकूल ऊँचे दर्जेकी प्रार्थना करनी चाहिये। ऐसा करनेसे हृदयमें एक प्रकारका मानसिक ढारस और मनमें कुछ उत्तम भाव रहता है और ईश्वरकी मदद मिलती है। इसलिये ऊँचे उद्देश रखकर प्रार्थना कीजिये। प्रार्थना कीजिये।

मन्दिरमें देवताके सामने करनेकी प्रार्थना।

हे प्रभु! हे दीनदयालु! हे मनकामना पूर्ण करनेवाले! हे अधम-उधारन! हे शान्तिदाता! और हे मोक्षदाता परम पवित्र पिता! तूने कृपा करके जो अनुकूलताएं दी हैं और सद्बुद्धि दी है उसके लिये तेरा गुण गाने, तेरी महिमा समझने और तेरा प्रेम, तेरा ज्ञान तथा तेरी पवित्रता प्राप्त करने आज मैं तेरे पवित्र मन्दिरमें आया हूँ। इसलिये हे नाथ! अपनी यह मनकामना पूर्ण करनेकी शक्ति मुझे दे। हे प्रभु! मैं जानता हूँ कि तेरे पवित्र मन्दिरमें तेरा गुणगान, तेरे नामका जप और तेरा ध्यान करना चाहिये, इसके सिवा और कोई विचार मनमें न आने देना चाहिये; तो भी मन वशमें नहीं रहता और तेरे पवित्र मन्दिरमें भी मेरे मनमें उपाधियोंके तथा दूसरे निकम्मे विचार आ जाते हैं। इस अपराधके लिये, मेरे मनकी इस कमजोरीके लिये हे प्रभु! तू मुझे क्षमा कर, क्षमा कर। हे प्रभु! तू शान्तिका समुद्र है, तू दयाका देवता है, तू अनाथका नाथ है, तू निराधारका आधार है, तू पतितको पावन करनेवाला है, तू बिगड़े हुएको सुधारनेवाला है, तू बुद्धिका दाता है, तू नया जीवन देनेवाला है, तू जिन्दगीमें रस भरनेवाला है, तू सुखका सागर है, तू आनन्द स्वरूप है, इसलिये हे परम कृपालु पिता! तू अपने इस स्वाभाविक

महान गुणोंका मुझे लाभ देनेकी कृपा कर, कृपा कर, कृपा कर। हे दीनानाथ! हे दीनबन्धु! हे दयाके देव! अगर तू मेरे अपराध देखा करे, मेरी भूलें देखा करे, मेरे मनकी कमज़ोरी देखा करे, मेरी ढिलाई देखा करे और मेरी नीचता देखा करे तो फिर मेरा कभी निस्तार न हो। परन्तु हे प्रभु! तू अपनी प्रभुताका विचार कर मुझे सद्बुद्धि दे और ऐसे पापोंको त्यागनेका बल देकर मेरा उद्धार कर। हे प्रभु! मैं तेरे इस पवित्र मन्दिरमें किस लिये आया हूं? लोगोंका मुह देखने नहीं आया हूँ, गपाष्टक करने नहीं आया हूँ, अगला पिछला विचार करने नहीं आया हूँ, अपना टीमटाम दिखाने नहीं आया हूँ और व्यवहारके झंझटोंमें मनको दौड़ाने नहीं आया हूँ। तिस पर भी हे नाथ! यह सब थोड़ा बहुत मुझसे हो जाता है, इसमेंसे बचा, बचा, बचा। जहाँ तेरे नामका असंख्य बार जप हुआ है, जहां तेरे गुणोंका करोडों बार कीर्त्तन हुआ है, जहां तेरी महिमाकी लाखों स्तुतियां हुई हैं, जहां तेरे लिये करोडे रुपये खर्चनेके संकल्प हुए हैं, जहां तेरे लिये हजारों मन घी तथा धूप जलायी गयी है, जहां हज़ारों वर्षोंसे हजारों हरिजन तेरे लिये आया करते हैं और इन सब बातोंके कारण जहां तेरी विशेषतासे वास हुआ है तेरे उस पवित्र मन्दिरमें शान्ति पानेके लिये मैं आया हूँ; तेरे उस आनन्ददायक मन्दिरमें आनन्द लेने आया हूँ, तेरे इस उत्तम मन्दिरमें उत्तमता सीखने आया हूँ, तेरे उस निर्दोष मन्दिरमें पवित्रता लेने आया हूँ, तेरे उस अच्छे असरवाले मन्दिरमें अच्छा असर अनुभव करने आया हूँ और जैसे इस पवित्र मन्दिरमें तेरा वास है, वैसे मेरे हृदयमें तेरा वास हो इसके लिये मैं यहां आया हूँ। इसलिये हे कृपालु! ऐसा करनेकी कृपा कर,

कृपा कर, कृपा कर। हे प्रभु! मैं जानता हूँ कि उस समता पानेके लिये ऐसे उत्तम प्रभाववाले मन्दिरमें मुझे हर रोज बहुत समय बिताना चाहिये, परन्तु अफसोस है कि ऐसा आनन्द छोड़कर अभागे मनको उपाधि भाती है, इससे वह यहाँ अधिक देर तक नहीं ठहरता। और जब कभी आनन्द आ जाता है तब अधिक बैठनेको मन करता है परन्तु उस समय व्यवहारकी कोई कोई अड़चल वाधा देती है जिससे मैं मनमाना लाभ नहीं उठा सकता। इसके सिवा तेरे मन्दिरमें शान्ति है, तेरे मन्दिरमें पवित्रता है, तेरे मन्दिरमें अच्छा असर है, तेरे मन्दिरमें उत्तमता है, तेरे मन्दिरमें परोपकार है, तेरे मन्दिरमें पापको निकाल भगानेकी सामर्थ्य है, तेरे मन्दिरमें ऊंची भावनाएं हैं, तेरे मन्दिरमें सत्यता है, तेरे मन्दिरमें ऊंचे दरजेका ज्ञान है, तेरे मन्दिरमें कुछ खास भव्यता है और तेरे मन्दिरमें मेरी अन्तरात्माको जगानेवाली कोई चीज़ है तथा मेरी जीवात्माको रुचने लायक कोई चीज है यहां तक कि मन्दिरमें तू आप रूपसे है इसलिये तेरे मन्दिरमें आनेसे यह सब लाभ मुझे मिलना चाहिये। परन्तु अफसोस है कि अपने मनकी चंचलताके कारण, अपनी मंद बुद्धिके कारण, अपने विश्वासकी ढिलाईके कारण, अपनी इन्द्रियोंके विकारोंके कारण, अपने शरीरकी नज़ाकतके कारण, अपनी मौज शौककी टेवोंके कारण और अपनी प्रकृतिको जड़ बना डालनेके कारण तथा अपनी जीवात्माको ठीक ठीक न जगा सकनेके कारण इन सब अलौकिक वस्तुओंसे जितना लाभ लेना चाहिये उसका हजारवां भाग भी मैं नहीं ले सकता। इसलिये हे परम कृपालु पिता! मुझे ऐसी सद्बुद्धि दे कि मैं तेरे शान्तिदायक पवित्र मन्दिरसे वह लाभ उठाकर अपनी

जिन्दगी सुधार सकूं और तेरे रास्तेमें चल सकूं। ऐसा वक्त मुझे दे। ऐसा वक्त मुझे दे।

सूचना--बन्धुओ! आज कल हम मन्दिरोंमें दर्शन या प्रार्थना करने जाते हैं परन्तु सिर्फ रिवाजके कारण जाते हैं, लोकलाजके कारण जाते हैं, देखादेखी जाते हैं; बचपनसे जानेकी आदत पड़ी होनेके कारण जाते हैं और हम मन्दिरमें हो आये यह अपने मनको समझानेके लिये जाते हैं; कुछ ऐसी ऊँची भावनाओंके कारण वहाँ नहीं जाते इससे हम अपना पाप नहीं घटा सकते या न वहाँसे नयी कृपा प्राप्त कर सकते। इस कारण हम रोज रोज मन्दिरोंमें धक्के खाते हैं तो भी जैसेके तैसे बने रहते हैं। और सदा ऐसा ही हो तो मन्दिरोंमें जानेकी क्या जरूरत है? मन्दिरोंमें जानेसे क्या होता है? महात्मा लोग कहते हैं कि भगवानके पवित्र मन्दिरमें जानेसे हमारे हृदयका बोझ हलका होता है; मन्दिरमें जानेसे हममें उदारता आती है; मन्दिरमें जानेसे हममें प्रसन्नता आती है; मन्दिरमें जानेसे हमें कितने ही किसके पापसे बचनेकी इच्छा होती है; मन्दिरमें जानेसे एक तरहका जरूरी स्वाभाविक वैराग्य आता है; मन्दिरमें जानेसे कई तरहका मोह घटता है; मन्दिरमें जानेसे अच्छी चाल चलनेका मन करता है; मन्दिरमें जानेसे उस समय कितनी ही उपाधियाँ घट जाती हैं; मन्दिरमें जानेसे नया ज्ञान मिलता है; मन्दिरमें जानेसे सब पर प्रेम करनेका मन होता है; मन्दिरमें जानेसे श्रद्धा भक्ति बढ़ती है और मन्दिरमें जानेसे ऐसा जान पड़ता है मानो हमारे जीवमें नया जीवन आ रहा है। यह सब होता है तो भी यह सब साधारण भक्तोंके लिये ही है। बहुत आगे बढ़े हुए भक्तोंको जो ऊँचे दरजेका अनुभव होता है और

अत्यन्त बड़ा लाभ होता है उसका हाल यहाँ नहीं कहा जाता क्योंकि हमारे लाखों भाई बहनें अभी इन नयी बातोंको नहीं मानतीं और जो लोग थोड़ा बहुत मानते हैं उनको भी, जितना चाहिये उतना साफ अनुभव नहीं हो सकता। इसलिये ऐसे लोगोंके सामने ऐसी ऊँचे दरजेकी बाते कहना व्यर्थ है जहाँ उनका ख्याल भी न पहुँच सके। थोड़ेमें इतना ही कह दिया जाता है कि अगर अपने इष्ट देवताके पवित्र मन्दिरमें जाकर शुद्ध हृदयसे प्रार्थना करना आवे और भगवानकी महिमा समझ कर उसका ज्ञान तथा उसका स्नेह हृदयमें उतारना आवे तो उससे मोक्ष तक जो चाहिये वह प्राप्त कर सकते हैं। इसलिये ऊँचे उद्देश रखकर मन्दिरोंमें जाना सीखिये और वहाँ सिर्फ व्यर्थका चक्कर मत लगा आइये बल्कि ऐसा कीजिये कि वहाँका जाना सार्थक हो।

नये वर्षकी प्रार्थना।

हे शान्तिदाता पिता! आज नया वर्ष आरम्भ होता है इस नये वर्षमें हमें नया नया आनन्द देना; इस नये वर्षमें हमारी गृहस्थीका सुख बढ़ाना; इस नये वर्षमें हमारे कुटुम्ब-स्नेहमें वृद्धि करना, इस नये वर्षमें हमें उत्तम सिद्धान्त समझनेका ज्ञान देना, इस नये वर्षमें ऐसी कृपा करना कि हममें धर्मका बल बढ़े; हमारे राजपुरुषोंको ऐसी सद्बुद्धि देना कि वे इस नये वर्षमें हमको अधिक हक दें; इस नये वर्षमें ऐसा करना कि हमारे देशकी उन्नति हो; इस नये वर्षमें मुझे ऐसी शक्ति देना कि मैं किसी न किसी तरह अपने भाईबन्धोंकी मदद कर सकूँ; इस नये वर्षमें ऐसा करना कि हमारे देशका शिल्प खिले; इस नये वर्षमें ऐसा करना कि हमारे देशमें विद्या

बढ़े; इस नये वर्षमें ऐसा करना कि हमारे भाइयोंमें फैला हुआ कल्पित वहम घटे; इस नये वर्षमें ऐसा करना कि हमें कुछ विशेष नया लाभ हो; इस नये वर्षमें ऐसा करना कि हमारी तन्दुरुस्ती बनी रहे, इस नये वर्षमें खूब वर्षाकी कृपा करना; इस नये वर्षमें ऐसा करना कि रोग शोक न हो; इस नये वर्षमें ऐसा करना कि सब प्राणी सुखी हों; इस नये वर्षमें ऐसा करना कि सब लोगोंमें मेल बढ़े; इस नये वर्षमें ऐसा करना कि ज्ञानका, सत्यका, परमार्थका, स्वतन्त्रताका और आत्माका बल बढ़े और इस नये वर्षमें ऐसा करना कि हमारे हृदयमें तेरा राज्य हो और तेरा ज्ञान तथा तेरा प्रेम बढ़े। हे नाथ! तेरी कृपासे पिछला वर्ष भी आनन्दसे बीता है। यद्यपि उसमें दो चार मौके कुछ कठिनाईके भी थे तथापि औसतसे वह वर्ष अच्छा रहा। यह वर्ष उससे भी अच्छा हो और अधिक आनन्दसे बीते ऐसी कृपा हम लोगों पर कर, कर, कर।

सूचना—यह प्रार्थना देखकर कोई कोई यह भी सोचेंगे कि इस तरह मुँहसे कह जानेमें क्या है ? इसके अनुसार होता कहाँ है इसके उत्तरमें जानना चाहिये कि दुनियाके श्रद्धा भक्तिवाले बुद्धिमान् मनुष्य कहते हैं कि शुभ इच्छाएँ रखना हमारा काम है, और उन इच्छाओंको पूरा करना परमात्माके हाथमें है। तो भी नये वर्ष जैसे महान दिनको इस प्रकारकी शुभ भावनाएँ रखना बुरा नहीं है बल्कि ऐसी शुभ इच्छाएँ रखना हमारा कर्त्तव्य है। क्योंकि समय आनेपर भावनाके अनुसार फल मिलता है। इसके सिवा हमारे मन का स्वभाव ऐसा है कि अगर हम उसे ऊँचे दरजेके विचारोंमें न लगा रखें तो वह ओछे दरजेके विचारोंमें दौड़ जायगा।

इसलिये सदा अच्छी इच्छाएँ रखना हमारा काम है और उसमें भी ऐसे महान दिनोंको पवित्र स्थलोंमें पवित्र समय पर तथा महात्माओंके पास ऐसी ऊँची भावनाएँ रखना और ऐसी शुभेच्छा ईश्वरके सामने प्रगट करना हमारा कर्त्तव्य है। दुनियादारीमें चतुर कहलानेवाले मनुष्य ऐसा कहते हैं। परन्तु इससे आगे बढ़े हुए बड़े सन्त कहते हैं कि अगर तुम्हारी इच्छामें बल हो तो तुम्हारी कोई प्रार्थना व्यर्थ नहीं जाती, जल्द या देरसे थोड़ी या बहुत अवश्य फलीभूत होती है। इतना ही नहीं, अगर आत्माका बल समझकर प्रार्थना की जाय, परमेश्वरकी महिमा समझकर प्रार्थना की जाय, उत्तमसे उत्तम उद्देश लक्ष्यमें रखकर प्रार्थना की जाय, जिस रीतिसे करना चाहिये उस रीतिसे प्रार्थना करना आवे और जिस स्थानसे प्रार्थना करना चाहिये उस स्थान तक पहुँचकर प्रार्थना करना आवे तो प्रार्थनाके बलसे सारे ब्रह्माण्डमें जो चाहे वह ले सकते हो।* परन्तु सच बात यह है कि हम अपनी अन्तरात्माका बल नहीं समझते, हमें अपने हृदयमें जितने गहरे उतरना चाहिये उतने गहरे नहीं उतरते; अपनी इच्छाशक्तिके जितने बलसे प्रार्थना करनी चाहिये उतने बलसे प्रार्थना नहीं करते और जैसी पवित्रता रखनी चाहिये वैसी पवित्रता नहीं रखते। इससे हमारी प्रार्थनाएँ ठीक ठीक फलीभूत नहीं होती। फलीभूत न होनेमें हमारा ही दोष है तो भी हम यह दोष भगवान पर डाल देते हैं और बका करते हैं कि प्रार्थनासे कुछ नहीं होता जाता। परन्तु

---

* इस विषयको और अच्छी तरह समझना हो तो "भाग्य फेरनेकी कुञ्जी" पढ़नेका कष्ट उठाइये। वह स्वर्गमाला कार्यालयमें मिलती है।

महात्मा लोग कहते हैं कि अगर शुभेच्छाका बल रखकर ऊपर कहे अनुसार प्रार्थना करना आवे तो तुरत ही इसका पूरा पूरा फल मिलता है। बन्धुओ! अभी हममें इतनी बड़ी योग्यता न होनेके कारण सम्भव है कि कम फल मिलता हो, पीछेसे फल मिलता हो या हमारे न जाननेमें उल्टी रीतिसे फल मिलता हो। इसलिये अश्रद्धालु मत बनिये और अगर सदा न बन पड़े तो अपनी भावनाओंको चमकानेके लिये ऐसे महान दिनोंको अवश्य प्रेमपूर्वक प्रार्थना किया कीजिये, प्रार्थना किया कीजिये।

सबका कल्याण चाहनेकी प्रार्थना।

हे सबका कल्याण करनेवाले प्रभु! हे मंगलकारी! हे शान्तिदाता! हे आनन्दस्वरूप! और हे कल्याणस्वरूप! मैंने अपने मतलबकी प्रार्थनाएँ तो बारंबार की हैं; अपनी उपाधियाँ घटानेकी अनेक बार इच्छा की है; अपना दुःख दूर करनेकी अर्ज करते समय मैं कितनी ही बार रोया हूँ और अपने तथा अपने कुटुम्बके सुखके लिये मैंने तेरी हजारों बार बिनती की है; परन्तु हे नाथ! आज मेरी प्रार्थना कुछ और ही तरहकी है, आज सबका कल्याण चाहनेका मेरा मन हुआ है। क्योंकि हे नाथ! मैं गरीब आदमी हूँ इससे धनकी मदद देकर बहुत जीवोंका कल्याण नहीं कर सकता; मैं शरीरसे भी कुछ बहुत बलवान नहीं हूँ और जो जरूरत भर बल है वह अपने गुजारेका उपाय करनेमें लग जाता है, इससे शरीरके बलसे भी मैं बहुत आदमियोंकी सेवा नहीं कर सकता। बुद्धिमें भी मैं साधारण आदमी हूँ इससे उन्नतिका कोई असाधारण रास्ता बताकर, नया ज्ञान देकर और नया प्रकाश

डाल कर लोगोंको धड़ल्लेके साथ चलाना या उन्नतिके रास्तेमें उड़नेके पंख देना मुझसे नहीं हो सकता। तो भी मुझे सबको मदद करना है। यह कैसे हो सकेगा? हे नाथ! टिटहरी अपनी चोंचसे समुद्र उलीचना चाहती है यह कैसे होगा? यद्यपि यह असम्भव है तो भी तेरी दया कुछ ऐसी है कि अनहोनी भी हो जाती है; तेरे नाममें कुछ ऐसा चमत्कार है कि जिसके प्रभावसे कठिन भी सहज हो जाता है, तुझे बीचमें रखनेसे अधूरा भी पूरा हो जाता है; तेरे लिये जो किया जाता है वह थोड़ा होने पर भी बहुत हो जाता है और तू ऐसा कृपालु है कि जहाँ सीधे तौर पर तेरा कुछ भी सम्बन्ध न दिखाई देता हो वहाँ भी तू होता है और वहाँ भी हमारी भावनाका असर पहुँच जाता है। इसलिये मैं अपने साधनोंके बल पर भरोसा करके नहीं—क्योंकि मैं बिना साधनके हूँ—बल्कि तेरी दया, तेरे बड़प्पन, तेरे प्रेम, तेरे अभेदभाव और सबका कल्याण करनेके तेरे नियमोंको देखकर सब जीवोंकी कुछ मदद करनेकी मेरी इच्छा हुई है।

एक महात्माने एक बार उपदेश करते हुए कहा था कि तुम अपनी भलाई चाहो तो इसमें क्या खूबी है? यों तो कुत्ते, गधे और कीड़े मकोड़े भी चाहते हैं कि हम सुखी हों; अगर तुम भी इतनी ही इच्छा रखो तो फिर तुममें उत्तमता क्या रही? तुममें उत्तमता यही है कि तुम दूसरोंका कल्याण मना सकते हो, शुभेच्छा रख सकते हो, अपने स्वार्थको अंकुशमें रख सकते हो और प्रभुको जान सकते हो। यही हम सबसे उत्तमता है; इसलिये स्वार्थकी प्रार्थनाएँ तो रोज करते हो पर किसी दिन परमार्थकी प्रार्थना, सबका कल्याण चाहनेकी प्रार्थना तो कर देखो! इसकी खूबी कुछ और ही है, क्योंकि

यह प्रभुके मनलायक बात है। इससे पहलेके ऋषि मुनि हमेशा यही प्रार्थना करते थे कि—

सर्वेऽत्र सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखमाप्नुयात्॥

सब जगह जीव सुखी हों; किसी जीवको किसी तरहका रोग न हो; सबका कल्याण हो और कहीं दुःख न रहे।

ऐसी उत्तम भावनाएं रखनेसे हममें उत्तमता आती है; इस प्रकार सब जीवोंका कल्याण चाहनेसे हमारा कल्याण होता है और इस प्रकार दूसरे जीवोंका दुःख मिटानेकी प्रार्थना करनेसे दयालु प्रभु हमारे अनन्तकालका दुःख हर लेते हैं। इसलिये हमें सदा यह इच्छा रखनी चाहिये कि सब जीव सुखी हों।

उस महात्माका यह उपदेश मेरे दिलमें बैठ गया परन्तु मैं ऐसा स्वार्थी और अभागा हूँ कि इसके अनुसार मुझसे नहीं होता। हृदयके भीतरसे सब जीवों पर अभी मुझे इतना अधिक स्नेह रखना नहीं आता इससे मैं सिर्फ मुँहसे कह देता हूँ कि सबका कल्याण हो। परन्तु इसके महान लाभका मैं अनुभव नहीं कर सकता। इसलिये हे नाथ! मुझ पर ऐसी कृपा कर कि आज मैं शुद्ध अन्तःकरणसे, हृदयकी उमंगसे और आत्मिक बलसे सबका कल्याण चाहनेकी प्रार्थना कर सकूँ। हे नाथ! हे नाथ! हे नाथ! हे नाथ! हे नाथ!

सबका हो कल्याण दयानिधि! सबका हो कल्याण।
नरनारी पशु पंछिनके संग; जहँ लगि जीव जहान॥
आनँद युक्त रहैं सब कोई, पावैं सुख सनमान।
जगमें रोग अकाल न व्यापे, होय न दुख निदान॥

'सुख औ' शान्ति बढ़े नित जगमें और बढ़े धनधान।
अपने अपने धर्म्म प्रमाणे सबै भजै 'भगवान॥'

हे नाथ! आज मैंने इस प्रार्थनाका फल देखा है। अहा! इसकी बात क्या कहूँ? ये शब्द जब हृदयसे निकलते थे उस समय मेरे चेहरे पर कुछ विशेष आनन्द था; मेरी जीभमें अमृत सा कुछ मीठा तत्व था, मेरी आंखोंमें उस समय नम्रता की देवियां थीं, मेरे हृदयका परदा उस समय उघड़ गया था और उतनी देर मैं दुनियाकी और सब बातें भूल गया था जिससे मेरे रोएं रोएंमें आनन्द समा रहा था। हे प्रभु! सबका कल्याण चाहनेकी प्रार्थनासे मेरे हृदयका बोझ हलका हो गया है, मेरे हृदयको ढारस मिला है, मेरी आत्माको शान्ति हुई है, मेरा मन आनन्दमें आ गया है, मेरी बुद्धि ठहर गयी है और ऐसा जान पड़ता है कि मुझमें कुछ कुछ नया जीवन आ गया है। हे प्रभु! मैंने अपने मतलबकी हजारों बार प्रार्थनाएं की हैं और कितनी ही बार प्रार्थना करते करते गिड़गिड़ाया भी हूँ परन्तु आजका सा आनन्द मैंने कभी नहीं पाया। अहा! उस आनन्दका क्या वर्णन करूं? कुछ कहते नहीं बनता। सारांश यह कि तीर्थोंमें घूमनेके आनन्दसे, व्रत करनेके आनन्दसे, बाहरी भक्तिके आनन्दसे और मनको समझा समझा कर जबरदस्ती योगकी क्रियाएं करनेके आनन्दसे भी सबका कल्याण चाहनेका आनन्द मुझे अधिक मालूम पड़ा है। और वह भी सेंतमें! सिर्फ थोड़ेसे शब्दोंसे!! इसलिये हे प्रभु! अब तो मुझे इसी प्रकार गहरे उतर कर वह आनन्द लूटनेकी सद्बुद्धि दे और वारंवार सबका कल्याण चाहनेकी ही प्रार्थना करने दे। इससे सबके कल्याणके साथ मेरा भी कल्याण हो जायगा।

सूचना—सबका कल्याण चाहनेसे ऐसी ऊंची दशाका होना कुछ आश्चर्य नहीं है; क्योंकि उसमें अपना कुछ भी स्वार्थ नहीं होता, बल्कि केवल परमार्थकी इच्छाका बल होता है और परमार्थकी इच्छा प्रभुको बहुत रुचती है इससे वह थोड़ेमें भी अधिक फल दे देते है। परन्तु हमने अभी अपनी उत्तम भावनाओंको जैसा चाहिये वैसा विकसित नहीं किया है इससे हम नहीं जानते कि इन भावनाओंके बलसे सहज बातमें भी क्या क्या चमत्कार हो सकते हैं। इस कारण हम हृदयमें गहरे उतर कर शुद्ध अन्तःकरणसे सबका कल्याण नहीं मना सकते। परन्तु महात्मा लोग कहते हैं कि सबका भला चाहना ऊंचीसे ऊंची भक्ति है; सबका भला चाहना अन्तिमसे अन्तिम ज्ञान है; सबका भला चाहना प्रभुकी बड़ीसे बड़ी आज्ञा है; सबका भला चाहना मनुष्यका मुख्य कर्त्तव्य है; सबका भला चाहना महात्माओंका उपदेश है, सबका भला चाहना जगतके सब शास्त्रोंकी मुख्य आज्ञा है और सबका भला चाहना बड़ेसे बड़ा और सहजसे सहज योग है। इसलिये इन सब वस्तुओंसे जो फल मिल सकता है वह फल सबका भला चाहनेसे मिल जाता है। बन्धुओ! अब विचार कीजिये कि जब केवल मानसिक रीतिसे सबका भला मनानेसे इतना बड़ा लाभ होता है तब प्रत्यक्ष रीतिसे सबका भला करनेवालेका कितना बड़ा लाभ होता होगा। जरा ख्याल तो कीजिये! इसलिये भाइयो और बहनो! ऐसा कीजिये जिससे किसी न किसीकी भलाई हो; किसी न किसीकी भलाई हो। अगर इतना न बन पड़े तो शुद्ध अन्तःकरणसे प्रभुसे प्रार्थना कीजिये कि सबका कल्याण हो।

—:*:—

दसवीं पैड़ी ।

प्रभुका हुक्म है कि तुम अपनी जिन्दगीका हर एक काम बुद्धिसे भली भाँति विचार विचार कर करो ।

ईश्वरके रास्ते चलते हैं उन हरिजनोंको ईश्वर सद्बुद्धि देते हैं ।

नवीं पैड़ीमें कहे अनुसार जो हरिजन अपनी जिन्दगीके हर एक बड़े मौके पर ऊँचे उद्देशके साथ प्रभुकी प्रार्थना करते हैं और प्रभुका उपकार मानते हैं उनपर दया करके उन्हें इस जिन्दगीमें सुखी रखनेके लिये तथा मरने पर अपने हुजूर रखकर मोक्ष धामका अलौकिक सुख देनेके लिये प्रभु पहले सद्बुद्धि देते हैं । इसके लिये प्रभुने कहा है कि—

तेषां सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम् ।
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते ॥

अ० १० श्लो० १०

अर्थात्—इस प्रकार जो सदा मेरे साथ जुड़े रहते हैं और प्रेमपूर्वक मुझे भजते हैं उन पर कृपा करके उनका कल्याण करनेके लिये ही मैं उनको सद्बुद्धि देता हूँ । इससे वे समझते हैं कि उनकी आत्मामें मैं मौजूद हूँ और ज्ञान रूपी प्रकाशित

दीपकसे उनका अज्ञान रूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है। इससे वे मुझे पाते हैं।

याद रखना कि, जिनको ऐसा उत्तम ज्ञान हो जाता है कि अपने हृदयमें ही—अपनी आत्मामें ही परमात्मा विद्यमान है वे हरिजन मनमानी चाल नहीं चलते; वे धर्मात्मा कुछ पुराने रिवाजोंकी बेड़ीमें नहीं पड़े रहते और वे भक्त बिना अर्थ समझे तथा विना उद्देश समझे कोई काम नहीं करते। भक्त-वत्सल भगवानके बुद्धि देनेसे उनकी समझमें यह बात आ जाती है कि हमारी जिन्दगी चाभी दी हुई पुतलीकी सी नहीं है। जैसे, किसी पुतलीमें ऐसी युक्ति होती है कि उसका हाथ हिला करता है; किसीमें ऐसी कल होती है कि उसका सिर हिला करता है; किसी पुतलीमें ऐसी कारीगरी होती है कि वह पूरी झूला करती है; किसी पुतलीकी ऐसी बनावट होती है कि उसकी आँखें नाचा करती हैं; कोई पुतली बार बार जीभ निकाला करती है और कोई पुतली अपना पैर घुमाया करती है। इस प्रकार जिस ढंगकी कल लगी रहती है उसके अनुसार पुतली किया करती है परन्तु उससे कुछ अधिक या नयी बात नहीं कर सकती। इसीसे वह पुतली है। अगर हम भी वैसा ही करें अर्थात् जारी रिवाजोंके अनुसार ही चला करें और उन रिवाजोंका अर्थ तथा उद्देश न समझें और समझनेकी कोशिश भी न करें तो फिर कलवाली पुतली और हम में अन्तर ही क्या रहा? इतना ही नहीं, जिन भक्तोंको भगवान की ओरसे बुद्धिका योग हुआ रहता है उनको आगे जाकर ऐसा भी मालूम देता है कि—

हम अपने ही कर्मसे तरेंगे।

हमको तारनेके लिये कुछ ऊपरसे स्वर्गका विमान नहीं आ

टपकेगा; हमको तारनेके लिये बिना हमारी इच्छाके, आपसे आप भगवानके दूत नहीं आ जायँगे; जैसे अयोध्याके हरिजनोंको सहजमें रामका विमान मिल गया था वैसे हमें किसीका विमान मंगनी नहीं मिल जायगा और जैसे कितने ही महात्माओंको कितने ही कारणोंसे कोई कोई देवता या फिरिश्ते स्वर्गमें उड़ा ले गये थे वैसे हमको कोई देवता या फिरिश्ता नहीं उड़ा ले जायगा। बल्कि हमें तो अपनी जिन्दगीके अपने कर्मोंसे ही तरना है। इसके लिये प्रभुने भी कहा है कि—

स्वे स्वे कर्म्मण्यभिरत. ससिद्धिं लभते नरः ।
स्वकर्म्मनिरत. सिद्धिं यथा विंदति तच्छृणु ॥

अ० १८ श्लो० ४५

अपना कर्तव्य भली भाँति करनेवाला मनुष्य बड़ी सिद्धि पाता है। इसलिये अब तू यह सुन कि अपना कर्म अच्छी तरह करनेवाला कैसे सिद्धि पाता है।

यत प्रवृत्तिर्भूताना येन सर्वमिद ततम् ।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानव. ॥

अ० १८ श्लो० ४६

जिससे प्राणीमात्रकी उत्पत्ति हुई है और जो इस सारे जगतमें व्याप रहा है उस परमात्माको मनुष्य अपने कर्मसे अच्छी तरह प्रसन्न कर सिद्धि पाता है।

यह उपदेश देकर प्रभु हमको समझाते हैं कि तुम्हारे अच्छे कामोंसे ही मै प्रसन्न होता हूँ और तुम्हारा अच्छा काम करना ही मेरी पूजा करनेके बराबर है; इतना ही नहीं बल्कि तुम्हारे कामोंसे ही तुमको बड़ी सिद्धि मिलती है। इससे हमें समझना चाहिये कि हमारी जिन्दगीके काम कुछ तुच्छ वस्तुएं नहीं हैं बल्कि हमारी जिन्दगीके छोटे बड़े सब काम

स्वर्गकी सीढ़ीकी एक एक पैड़ी है। इसलिये हमें अपनी जिन्दगीका हर एक काम खूब सोच विचार कर करना चाहिये, क्योंकि हमें अपने कर्मोंसे ही तरना है। प्रभुने कहा है कि—

यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दान तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

अ० १८ श्लो० ५

यज्ञ यानी ईश्वरके प्रति कर्त्तव्य, या दान यानी जगतके जीवोंके प्रति कर्त्तव्य और तप यानी मनको रोकनेका कर्त्तव्य ये तीनों कर्म त्यागने योग्य नहीं हैं; इनको तो करना ही चाहिये। क्योंकि यज्ञ, दान और तप बुद्धिमानोंको भी पवित्र करनेवाले हैं।

परन्तु इसमें शर्त यह है कि—

एतान्यपि तु कर्माणि सगं त्यक्त्वा फलानि च।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम्॥

अ० १८ श्लो० ६

हे अर्जुन! आसक्ति छोड़कर और फलकी आशा त्याग कर अपना कर्तव्य समझ कर इन कर्मोंको करना उत्तम बात है, यह मेरा पक्का मत है।

जानना चाहिये कि आसक्ति छोड़ देना कुछ सहज बात नहीं है और फलकी आशा त्याग देना भी कुछ खेलवाड़ नहीं है और किसी पर उपकार करनेके लिये नहीं वरंच सिर्फ अपना कर्त्तव्य समझ कर दृढ़ताके साथ यज्ञ, दान और तप करना अर्थात् प्रभुकी तरफका, जगतकी तरफका और अपने मनकी तरफका फर्ज अदा करना ऊँचे दरजेका ज्ञान मिले बिना नहीं हो सकता। यह सब कर्त्तव्य पूरा करने के लिये ज्ञान प्राप्त करना ही चाहिये। क्योंकि जब यज्ञ, दान और तप इत्यादि

कर्मोंसे भी हम पवित्र होते हैं तब ये कर्म जिससे उत्पन्न होते हैं उस ज्ञानसे पवित्र होना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है । इसके लिये प्रभुने भी कहा है—

ज्ञानकी महिमा ।

नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विंदति ॥

अ० ४ श्लो० ३८

ज्ञानके समान पवित्र पदार्थ इस संसारमें और कुछ नहीं है । क्योंकि बहुत परिश्रम करने, बहुत समय लगाने, मनका बहुत निग्रह करने और भगवानके साथ अपने जीवको जोड़ देने पर ही मनुष्यको ज्ञान मिलता है ।

ज्ञान पानेमें ऐसी कठिनाई है, परन्तु उसके साथ ही ऐसी महिमा है; इससे प्रभु वारंवार स्थान स्थान पर श्रीमद्भगवद्गीतामें कहते हैं कि ज्ञान तो प्राप्त करना ही चाहिये; क्योंकि वह मनुष्योंको पवित्र करनेवाला है । इसके सिवा अगले और पिछले जन्मोंके पापोंका भी ज्ञानसे नाश हो जाता है । इसके लिये प्रभुने कहा है कि—

यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा ॥

अ० ४ श्लो० ३७

हे अर्जुन ! जल्द सुलग उठनेवाले काठको जैसे सुलगी हुई आग भस्म कर देती है वैसे ज्ञान रूपी आग सब कर्मोंको जला देती है । इससे भी आगे बढ़ कर प्रभु कहते हैं—

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि ॥

अ० ४ श्लो० ३६

अगर तू सब पापियोंसे भी बढ़कर पापी होगा तो भी कुछ चिन्ताकी बात नहीं है। तू मत डर। क्योंकि ज्ञान रूपी नावसे पाप रूपी समुद्र तू सहजमें तर जायगा।

ज्ञानमें इतना बल होनेका कारण यही है कि उसमें सत्व-गुण है। इसके लिये प्रभु ने कहा है कि

सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाश उपजायते।
ज्ञान यदा तदा विद्याद्विवृद्ध सत्वमित्युत ॥

अ० १४ श्लो० ११

इस देहकी सब इन्द्रियोंमें जब ज्ञान रूपी प्रकाश हो; अर्थात् जब आंखोंको सर्वत्र आत्मदर्शन होने लगे, कानोंको अनहद नाद सुनाई देने लगे, नाकमें दिव्य सुगन्ध आने लगे, जीभमें प्राकृतिक अमृत तथा एक प्रकारकी स्वाभाविक तृप्ति आने लगे, चमड़ेमें प्रभु-प्रेमसे रोमांच हो जाय और मन सहज समाधिकी दशामें रहने लगे तब समझना कि सत्वगुण बहुत बढ़ गया है।

इस प्रकार ज्ञानमें सत्वगुण है। इसके सिवा ज्ञान दैवी सम्पत्तिका लक्षण है और दैवी सम्पत्ति उसीमें होती है जो भगवानका कृपापात्र हो। श्रीमद्भगवद्गीताके सोलहवें अध्यायमें दैवी सम्पत्तिके जो लक्षण कहे हैं उनमें पहले ही श्लोकमें स्वाध्याय अर्थात् अपनेको जो जरूर सीखना है उस ईश्वरी ज्ञानको पानेका अभ्यास करना दैवी सम्पत्तिका लक्षण माना जाना है।

इस प्रकार ज्ञानमें सत्वगुण है और ज्ञानमें दैवी सम्पत्ति है; इससे ज्ञानकी महिमा बतानेके लिये प्रभु कहते हैं कि कर्म योगसे भी ज्ञान प्राप्त करना उत्तम है।

इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासात् ।

अ० १२ श्लो० १२

अभ्याससे भी ज्ञान बहुत कल्याण करनेवाला है ।

अभ्याससे ज्ञानके श्रेष्ठ होनेका कारण यह है कि सब कर्म ज्ञानमें आ जाते हैं । इसके लिये प्रभुने भी कहा है कि—

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञ परंतप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ॥

अ० ४ श्लो० ३३

हे बहुत तपवाले अर्जुन ! जगतकी वस्तुओंसे जो यज्ञ होता है उससे ज्ञानयज्ञ अधिक कल्याण करनेवाला है, क्योंकि सब कर्मोंका पूरा पूरा फल ज्ञानमें आ जाता है ।

ज्ञानी भक्त प्रभुको बहुत प्यारे हैं ।

इस प्रकार जगतके और सब कर्मोंसे ज्ञान श्रेष्ठ है । इसलिये गीताके बारहवें अध्यायके अठारहवें श्लोकमें प्रभु कहते हैं कि स्थिर बुद्धिवाले भक्त मुझे बड़े प्यारे हैं, सिर्फ इतना ही नहीं, इससे भी आगे जाकर ज्ञानियों पर प्रेम होनेके कारण प्रभु कहते हैं कि सब तरहके भक्तोंसे ज्ञानी भक्त मुझे बहुत प्यारे हैं और मैं उनको बहुत प्यारा हूं । इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ॥

अ० ७ श्लो० १७

उनमें (सब भक्तोंमें) ज्ञानी उत्तम हैं; क्योंकि वे एक ही बुद्धिवाले होते हैं और सदा मेरे साथ जुडे रहते हैं । इसलिये ज्ञानी मुझे बहुत प्यारे हैं और मैं भी उनको बहुत प्यारा हूं ।

कोई कोई अज्ञानी मनुष्य शंका कर सकते हैं कि क्यों ज्ञानी भक्त प्रभुके इतने अधिक प्यारे हैं। ऐसी शंका न रहने देनेके लिये दयालु प्रभु खुलासा करके कहते हैं कि ज्ञान होना कुछ हंसी खेल नहीं है, यह बहुत समयकी, बड़े पुरुषार्थकी और महा भाग्यशालिताकी बात है। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि

बहूना जन्मनामते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।
वासुदेव. सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभ.॥

अ० ७ श्लो० १९

अनेक जन्मोंके अनुभवके बाद ज्ञान मिलता है और ज्ञान मिलने पर मनुष्य मेरी शरणमें आता है। इसके बाद उसको यह ज्ञान होता है कि सब भगवद्रूप है। ऐसे ज्ञानी महात्मा दुर्लभ हैं।

बन्धुओ! ज्ञानकी महिमा देखिये। भगवान स्वयं कहते हैं कि ज्ञानी दुर्लभ हैं। इतना ही नहीं वह स्वय ज्ञानी भक्तोंको महात्मा कहते हैं। तब हमारे जैसे साधारण मनुष्य वैसे निस्पृही ज्ञानी भक्तोंकी थोड़ी बहुत प्रतिष्ठा करें या उन्हें थोड़ा बहुत धन दें तो कौन बड़ी बात है? कुछ नहीं। इसलिये हमें ज्ञानियोंकी सेवा करनी चाहिये और भगवानके प्यारे होनेके लिये ज्ञान पानेकी कोशिश करनी चाहिये।

ऊपरके श्लोकमें प्रभुने पहले यह कहा कि बहुत जन्मोंके बाद ज्ञान होता है, दूसरे यह कहा कि ज्ञानी मेरी शरण लेते हैं; तीसरे यह कहा कि वे दुर्लभ हैं अर्थात करोड़ों आदमियोंमें कोई ही कोई आदमी ज्ञानी भक्त होता है और चौथे यह कहा कि ज्ञानी महात्मा हैं। इतना कह जाने पर भी कृपाके भण्डार भक्तवत्सल भगवानको सन्तोष नहीं होता क्योंकि

ये सब विशेषण अभी उनको बाहरी जान पड़ते हैं, इससे वह और भी आगे बढ़कर कहते हैं कि—

उदारा सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थित सहि युक्तात्मा मामेवानुत्तमा गतिम् ॥

अ० ७ श्लो० १८

सब प्रकारके भक्त उदार होते हैं अर्थात् ऊँचे मनके, विशुद्ध अन्तःकरणके, स्वार्थ-रहित और परमार्थमें लगे हुए होते हैं तथापि उन सबमें ज्ञानी तो मेरी आत्मा ही है क्योंकि उनकी आत्मा मेरे साथ जुड़ी हुई है और वह मुझे ही अति उत्तम गति मानती है ।

शायद कितने ही आदमियोंको शंका हो कि भगवान क्यों ज्ञानीको अपनी आत्मा समझते हैं और यह बात सिर्फ कह देनेकी हैं या अनुभवमें भी आने लायक है ? इसके उत्तरमें जानना चाहिये कि यह बात केवल शिष्टाचारकी नहीं है बल्कि अनुभवमें आने योग्य है । क्योंकि गीताके दसवें अध्यायके अड़तीसवें श्लोकमें प्रभुने कहा है—

ज्ञानकी खूबी ।

ज्ञान ज्ञानवतामहम्—अर्थात् ज्ञानियोंका ज्ञान मैं हूं । इसके सिवा गीताके सातवें अध्यायके दसवें श्लोकमें कहा है कि—

बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि—अर्थात् बुद्धिमानोंकी बुद्धि मैं हूं ।

विचारनेकी बात है कि जब बुद्धिमानोंकी बुद्धि भगवान ही हैं और ज्ञानियोंका ज्ञान भी भगवान ही हैं तब ज्ञानियोंको भगवान अपनी आत्मा समान मानें तो क्या आश्चर्य है ? याद रहे कि इसमें जरा भी अत्युक्ति नहीं है बल्कि यह एक दम स्वाभाविक है, क्योंकि इससे भी आगे बढ़कर परम कृपालु

महात्मा श्रीकृष्ण भगवानने गीताके तेरहवें अध्यायके सत्रहवें श्लोकमें कहा है कि—

ज्ञानं ज्ञेय ज्ञानगम्य—अर्थात् प्रभु ज्ञान स्वरूप है और ज्ञानसे पाया जा सकता है।

ज्ञानकी इतनी बड़ी महिमा बता कर प्रभु हमको यह समझाना चाहते हैं कि ज्ञान कोई साधारण वस्तु नहीं हैं ज्ञान जगतकी स्थूल वस्तु नहीं है; ज्ञान खेलवाड़में मिल जानेवाला खेलौना नहीं है और ज्ञान वचनोंका तमाशा नहीं है, बल्कि ज्ञान जिन्दगी सुधारनेका विषय है, ज्ञान प्रकृतिका भेद समझनेकी कुंजी है, ज्ञान स्वर्गका प्रकाश है, ज्ञान मोक्षका मार्ग है और ज्ञान भगवानका हृदय है। क्योंकि ज्ञानसे ही सब कुछ हो सकता है और ज्ञानमें ही ऋद्धिसिद्धि है यहाँ तक कि ज्ञानमें ही मोक्ष है। इसलिये जगतके सब बुद्धिमान मनुष्य ज्ञानकी महिमा समझ कर अपनी जिन्दगी सुधारनेमें और जगतके उपयोगी होनेमें उससे काम लेते हैं। जिनकी समझमें ज्ञानकी महिमा आ गयी है वे यह समझ जाते हैं कि सत्वगुणी बुद्धि कैसी होती है, रजोगुणी बुद्धि कैसी होती है और तमोगुणी बुद्धि कैसी होती है। इससे वे अपनी जिन्दगीका हर एक काम करनेमें बहुत विचार विचार कर कदम उठाते हैं। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है—

बुद्धिके भेद।

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बंध मोक्ष च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्विकी॥

अ० १८ श्लो० ३०

हे अर्जुन! जिससे यह बात समझमें आवे कि किस वस्तुमें जीवको लगाना चाहिये और किसमें शान्ति रखनी चाहिये उसको सत्वगुणी बुद्धि कहते हैं। जिस बुद्धिमें यह समझमें आवे कि कौन काम करने योग्य है और कौन काम नहीं करने लायक है वह बुद्धि सत्वगुणी है। किस वस्तुमें भय है और कहाँ सच्ची निर्भयता है यह जिससे समझ पड़े उसे सत्वगुणी बुद्धि कहते हैं और जन्ममरणका तथा चौरासी लाख फेरोंका बन्धन किसमें है और मोक्ष कैसे होता है यह तत्त्व जिस बुद्धिसे समझ पड़ें वह बुद्धि सत्वगुणी कहलाती है।

इसके बाद रजोगुणी बुद्धिके लिये प्रभु कहते हैं कि

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च ।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धि सा पार्थ राजसी ॥

अ० १८ श्लो० ३१

हे अर्जुन! जिस बुद्धिसे यह समझमें न आवे कि हमारा धर्म क्या है और अधर्म क्या है वह बुद्धि रजोगुणी कहलाती है। और जिससे अपने करने योग्य काम और न करने योग्य काम ठीक ठीक समझमें न आवे वह बुद्धि रजोगुणी कहलाती है।

इसके बाद तमोगुणी बुद्धिके लिये प्रभु कहते हैं कि

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसा वृता ।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी ॥

अ० १८ श्लो० ३२

हे अर्जुन! मोहके अन्दर जो बुद्धि ढक गयी हो जिससे अधर्मको धर्म मानें तथा सब विषयोंमें उलटा ही अर्थ समझा करें वह बुद्धि तमोगुणी कहलाती है।

भाइयो! बुद्धिके ये भेद समझाकर प्रभु हमसे क्या कहना

चाहते हैं आप समझते हैं? वह यह समझाना चाहते हैं कि तुम जैसी बुद्धि रखोगे वैसा फल इस लोकमें और परलोकमें पाओगे। इतना ही नहीं बल्कि,

थोड़ी बुद्धिवालेको थोड़ा फल मिलेगा।

इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

अन्तवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसाम्।

अ० ७ श्लो० २३

अल्प बुद्धिवालोंको जो फल मिलता है वह फल नष्ट हो जाने योग्य होता है।

प्रभुके ऐसा कहनेका कारण यही है कि अल्प बुद्धिसे जगतके मायाके छोटे छोटे सुख मिलते हैं और इन्द्रियोंको ऐसे सुख मिलते हैं जिनका घड़ी भरमें नाश हो जाय। अल्प बुद्धिवालोंको कुछ आत्मिक आनन्दके सुख नहीं मिलते, परमात्माके सुख नहीं मिलते और मोक्षके अखण्ड सुख नहीं मिलते। ये सब महान सुख तो ज्ञानियोंको ही मिलते हैं। और याद रहे कि अन्तिमसे अन्तिम इच्छा यही होनी चाहिये कि हमारी आत्माका कल्याण हो। यह परिपूर्ण ज्ञानसे होता है, कुछ अल्प बुद्धिसे नहीं होता। इसलिये प्रभुके मार्गमें चलनेवाले जो हरिजन होते हैं वे छोटी बुद्धि नहीं रखते, बल्कि प्रभुकी आज्ञानुसार बुद्धियोगका ही आश्रय लेते हैं। इसके लिये प्रभुने कहा है कि—

बुद्धि लड़ाकर काम करो।

दूरेण ह्यवरं कर्म्म बुद्धियोगाद्धनञ्जय।
बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः॥

अ० २ श्लो० ४९

हे अर्जुन! बुद्धियोगसे और सब कर्म बहुत हलके हैं। इसलिये तू बुद्धियोगका आसरा ले। क्योंकि जो फलकी इच्छा रखता है वह कृपण है।

यों हुकम देकर प्रभु यह समझाते हैं कि फलकी इच्छा रखना यानी अपने स्वार्थके लिये कर्म करना बहुत हलके दरजेकी बात है और ऐसा काम अज्ञानी ही करते हैं। ज्ञानकी परिपक्व दशामें स्वार्थ नहीं टिक सकता। इससे बहुत ओर देकर भगवान कहते हैं कि बुद्धिपूर्वक जो काम होता है उसके सिवा और सब काम बहुत हलके हैं। इसलिये तू बुद्धियोगकी ही शरणमें जा। अर्थात् जो काम कर उसे बहुत सोच विचार कर बुद्धि पूर्वक कर।

इस प्रकार बुद्धियोगकी शरण जानेको प्रभु कहते हैं, तब बुद्धियोगकी विशेषता समझनी चाहिये। उसको ठीक ठीक समझ लेनेसे हमें भी बुद्धियोगका आसरा लेनेकी इच्छा हो सकती है। इसलिये बुद्धियोगकी शरण जानेका लाभ हमें जानना चाहिये और वह अपने मनका गढ़ा हुआ नहीं, बल्कि भगवानका वचन होना चाहिये। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण भगवानने कहा है—

बुद्धिकी शरण लेनेसे लाभ।

> बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदुष्कृते।
> तस्माद्योगाय युज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्॥
>
> अ० २ श्लो० ५०

जो बुद्धिसे जुड़ा हुआ है अर्थात् बुद्धिवाला है—ज्ञानी है उसे पुण्य या पाप नहीं लगता, इसलिये तू बुद्धियोगमें लग।

क्योंकि काम करनेमें अर्थात् अपना कर्त्तव्य पूरा करनेमें कुशलता रखनेका नाम ही योग है।

योग माने क्या ?

भाइयो! क्या समझा? यह श्लोक कह कर प्रभु हमको यह समझाते हैं कि जो बुद्धिपूर्वक काम करता है उसको पुण्य या पाप नहीं लगता; इसके सिवा अपनी जिन्दगीका कर्त्तव्य पूरा करनेमें कुशलता रखनेका नाम ही योग है। और योगका अर्थ बहुत विशाल है। योग माने चित्तका निरोध, योग माने मोक्षका दरवाजा, योग माने ऋद्धिसिद्धि पानेकी कुंजी, योग माने प्रभुके पास पहुँचनेका छोटा सा मार्ग, योग माने महात्माओंके रहनेकी कोटि, योग माने अजीत मनको जीतनेका उपाय और योग माने ईश्वरके साथ जीवका जुड़ना। ऐसी ऊंची दशाका नाम योग है और योगके ऐसे ऐसे अर्थ हैं। प्रभु कहते हैं कि यह महान योग अपनी जिन्दगीके काम कुशलतासे करनेमें ही है। यह कह कर प्रभु हमको ज्ञानकी महिमा समझाते हैं और बुद्धि पूर्वक काम करनेको कहते हैं। परन्तु बहुत आदमी ऐसे मूर्ख होते हैं जिनको योगकी परवा नहीं होती; क्योंकि वे इतने ऊंचे दरजे तक पहुँचे हुए नहीं होते। ऐसोंको समझानेके लिये प्रभु एक लालच देते हैं। वह लालच भी ऐसा वैसा या छोटा नहीं है बल्कि बहुत बड़ा है और वह यही है कि अगर तू बुद्धि पूर्वक कर्म करेगा तो तुझे पाप या पुण्य नहीं लगेगा।

पाप और पुण्यसे बचनेका उपाय।

भाइयो! याद रखना कि यह छोटी मोटी बात नहीं है। हम सब लोग जानते हैं कि पापके कारण नरकमें गिरना पड़ता है

और पुण्यके कारण स्वर्गमें जाना पड़ता है। सारांश यह कि पाप और पुण्य दोनों जीवको बांध रखनेके लिये एक तरहके बन्धन हैं। अन्तर इतना ही है कि पाप लोहेकी बेड़ी है और पुण्य सोनेकी बेड़ी है। जितने जोरसे पाप हमको बांध रखता है उतने ही जोरसे पुण्य भी हमको बांध रखता है। इसलिये भगवानने हमको कहा है कि अगर मोक्ष लेना हो तो तुम्हें पाप और पुण्य दोनोंके पार गुणातीत अवस्थामें जाना चाहिये। जब तक पाप हो या पुण्य हो तब तक जीवका उद्धार नहीं हो सकता। पापका मूल दुःख है और पुण्यका फल सुख है; परन्तु मोक्ष पानेके लिये तो सुख और दुःख दोनोंको छोड़कर बाहर निकल जाना चाहिये। यह काम सहज नहीं है बल्कि हमें बड़ा कठिन लगता है। परन्तु दयालु प्रभु कहते हैं कि अगर तुम अपनी जिन्दगीका कर्त्तव्य बुद्धिके साथ पालन करोगे तो तुम्हें पुण्य या पाप नहीं लगेगा। यह कोई छोटी मोटी बात नहीं है, महात्मा श्रीकृष्ण भगवानका वचन है। वचन ही नहीं है परन्तु प्रभुका हुक्म है कि तू योगमें लग। याद रखना कि यह हुक्म अकेले अर्जुनके लिये ही नहीं है बल्कि सारे जगतके सब हरिजनोंके लिये है। इस-लिये हमें अपनी जिन्दगीका कर्त्तव्य बुद्धिपूर्वक पूरा करना चाहिये। क्योंकि;

बुद्धिपूर्वक कर्तव्य करनेसे मोक्ष हो सकता है।

इसके लिये प्रभुने भी कहा है कि,

> कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
> जन्मबंधविनिर्मुक्ताः पदं गच्छंत्यनामयम् ॥
>
> अ० २ श्लो० ५१

चतुर मनुष्य बुद्धिसे काम करते हैं और कर्म्मका फल त्याग देते हैं; इससे जन्म-मरणके बन्धनसे बिलकुल छूट जाते हैं और दुःख रहित पद अर्थात् मोक्ष पाते हैं।

यह श्लोक कह कर प्रभु हमको भली भांति समझाते हैं कि जो चतुर मनुष्य बुद्धिसे कर्म्म करते हैं और फलकी आशा त्याग देते हैं वे जन्ममरणके बन्धनसे छूट जाते हैं और उनको मोक्ष मिलता है। भाइयो! इससे साफ, इससे प्रभावशाली, इससे मधुर, भड़कीली और इससे बढ़कर स्वाभाविक रीतिसे आज्ञा करनेका ढङ्ग और क्या होगा? इतने पर भी अगर हम बुद्धिकी कीमत न समझें, सोच विचार कर कर्म्म करना न सीखें और कर्म्मके फलकी आशा न छोड़ें तो इससे बढ़कर हमारी नालायकी और क्या है? ध्यान रखिये कि ऐसी नालायकीमें अन्ततक न पड़े रह जायँ और ऐसी चेष्टा कीजिये कि ज़िन्दगीका हर एक काम बुद्धिपूर्वक हो।

बन्धुओ! बुद्धिके साथ काम करनेमें इतना बड़ा फल है इसलिये प्रभु फिर भी अर्जुनको कहते हैं कि तू बुद्धियोगका ही आश्रय ले। इसके सिवा, बुद्धि योगसे पाप पुण्य कैसे नहीं लगता और मोक्ष कैसे मिलता है इसकी भी कुंजी प्रभु बताते हैं।

मोक्ष पानेकी कुंजी।

श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण भगवानने कहा है—

चेतसा सर्वकर्माणि मयि सन्न्यस्य मत्परः।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव॥

अ० १८ श्लो० ५७

बुद्धियोगका आश्रय लेकर चित्तसे सब कर्म मुझे सौंप दे, मेरे अधीन हो जा और सदा मुझमें ही चित्त रख।

भाइयो! इस श्लोकमें प्रभुने चार प्रकारके हुक्म दिये हैं और चार प्रकारके धर्मके मुख्य रहस्य बताये हैं। उनमें पहला रहस्य और पहला हुक्म यह है कि बुद्धि योगका आश्रय लो; दूसरा हुक्म और दूसरा रहस्य यह है कि चित्तसे सब कर्म मेरे अर्पण कर दो; तीसरा हुक्म और तीसरा रहस्य यह है कि मेरे अधीन हो जाओ और चौथा रहस्य और चौथा हुक्म यह है कि तुम सदा मुझमें चित्त रखो।

भाइयो। याद रहे कि ये हुक्म छोटे मोटे नहीं हैं और ये कुंजियाँ ऐसी वैसी नहीं हैं, बल्कि ये बड़े महत्वकी और बड़ी गूढ़ बातें हैं। इसके साथ साथ यह भी समझ लेना कि जब इस श्लोकमें कहे हुए पिछले तीन रहस्योंका तत्व समझ पड़े और प्रभुके ये तीन महान हुक्म पाले जायँ तभी बुद्धियोगका रूप मिलता है। जब तक इन तीन महा सिद्धान्तोंका रहस्य न समझ पड़े तब तक केवल बुद्धियोग हमको नहीं तार सकता। महात्माओंने कहा है कि 'बुद्धि कर्मानुसारिणी' अर्थात् कर्मके अनुसार बुद्धि उत्पन्न होती है और कर्मके अनुसार बुद्धि चलती है। बुद्धि जड़ तत्वसे बनी है इससे वेदान्त-शास्त्रमें बुद्धिको जड़ माना है। इसलिये—

अकेली बुद्धि हमें मोक्ष नहीं दिला सकती।

परन्तु जब बुद्धि धर्मके मार्गमें रहे, महात्माओंकी चाल पर चले और प्रभुके हुक्म माने। तभी वह हमारा उद्धार कर सकती है। बिना सत्कर्मके रूखी सूखी बुद्धि पर कभी भरोसा न रखना। जब वह बुद्धि तत्व समझकर परमात्माके साथ

जुड़ी रहे तभी हमें तार सकती है । इसलिये, बुद्धियोगका आश्रय लेते समय प्रभुके ऊपर कहे तीनों हुकम और धर्मके तीनों रहस्य ध्यानमें रखना और उसके पीछे बुद्धिका आश्रय लेना ।

प्रभुको अपना कर्म किस तरह अर्पण करना चाहिये, प्रभुके अधीन कैसे होना चाहिये और सदा प्रभुमें चित्त किस तरह रखना चाहिये—ये सब विषय इस पुस्तककी पिछली पैड़ियोंमें विस्तारपूर्वक कहे गये हैं इसलिये यहाँ फिरसे उनका विवेचन नहीं किया गया ।

ज्ञान माने क्या ?

भाइयो ! अपने कर्म प्रभुके अर्पण करना, प्रभुके अधीन होकर रहना, और हमेशा प्रभुमें चित्त लगाये रखना ये तीनों बड़े काम भी बुद्धियोगसे ही हो सकते हैं । इसलिये श्रीमद्भगवद्गीतामें अपने कृपापात्र अर्जुनको भगवानने बार-बार कहा है कि तू बुद्धियोगका आश्रय ले । क्योंकि ज्ञान परमात्माका प्रकाश है, ज्ञान स्वर्गका सूर्य्य है, ज्ञान महादेवका तीसरा नेत्र है, ज्ञान परमात्माकी महान शक्ति है और ज्ञान ही मनुष्यमें मनुष्यत्व है; इतना ही नहीं स्वयं परमात्मा भी ज्ञान रूप है । ज्ञानसे ही जो कुछ करना हो वह किया जा सकता है, जो कुछ प्राप्त करना हो वह प्राप्त किया जा सकता है और जो कुछ प्राप्त करने योग्य है वह प्राप्त किया जा सकता है । इसलिये बुद्धियोगका आश्रय लेने और सोच विचार कर अपनी जिन्दगीके काम करनेको प्रभु हमसे कहते हैं ।

जीवकी स्वतन्त्रता ।

अन्तमें जब गीता पूरी हुई और अर्जुनको सब ज्ञान दिया जा चुका तब प्रभुने उनसे कहा कि—

इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद्गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ॥

अ० १८ श्लो० ६३

ऊपरके अनुसार मैंने तुझसे छिपेसे छिपा ज्ञान कहा । अब इसका पूरा विचार कर जैसा तेरे जीमें आवे वैसा कर ।

इस श्लोकमें यह खूबी है कि प्रभु कहते हैं कि पूर्ण रूपसे विचार कर काम कर । इतना ही नहीं, उसके साथ स्वतन्त्रता देते हैं कि जैसा तेरे जीमें आवे वैसा तू कर ! ऐसा कहकर प्रभु हमें बताते हैं कि मेरा कर्त्तव्य तुझे उपदेश देना है, मेरा कर्त्तव्य तुझे रास्ता बताना है, मेरा कर्त्तव्य तुझे सत्य समझाना है और मेरा कर्त्तव्य तुझे छिपा—गूढ़ ज्ञान देना है; परन्तु तुझे उठा ले चलना मेरा कर्त्तव्य नहीं है, तेरी स्वतन्त्रता छीन लेना मेरा कर्तव्य नहीं है और तुझे वे जीवनका समझना, वेतत्त्वका समझना—वे आत्माका समझना मेरा काम नहीं है; बल्कि तुझे तेरी स्वतन्त्रता सौंपना और तेरा रखवार बनना मेरा काम है । कुछ तेरी पालकी ढोनेवाला कहार बनना मेरा काम नहीं है । इसलिये तुझे अपने पैरोंके बल खड़ा होना सीखना चाहिये; तुझे अपनी स्वतन्त्रताका मूल्य समझना चाहिये और तुझे अपनी जिन्दगीके कामोंसे मोक्ष लेना सीखना चाहिये । याद रहे कि यह सब बुद्धियोग-का आश्रय लेनेसे तथा सोच विचार कर काम करनेसे होता है । इसलिये आप अपनी जिन्दगीके जो जो काम करें उन्हें खूब सोच विचार, कर करें और आगे जो कदम बढ़ावें उसको भी खूब समझ बूझ कर । यही कल्याणका सच्चा रास्ता है और इसीसे हमें तरना है ।

हमारे त्योहार हमारी जिन्दगी पर बहुत बड़ा असर डालते हैं।

बन्धुओ! बुद्धियोगका आश्रय लेकर तथा पूर्ण रूपसे सोच विचार कर कोई काम करनेके लिये प्रभुका हुकम है; इसलिये हमें अपनी जिन्दगीके सब काम खूब सोच विचार कर करना चाहिये। और उनमें भी जो काम हमारी जिन्दगी पर खास असर करते हों और जिनका असर बहुत समय तक रहता हो उन कामोंका तो बहुत ही ख्याल रखना चाहिये। अब हमें यह सोचना चाहिये कि ऐसे काम क्या हैं जो हमारी जिन्दगी पर और हमारे लोक व्यवहारमें सबसे अधिक असर करते हैं। इस पर विचार करनेसे मालूम होता है कि हमारे जो त्योहार हैं वे हमारी जिन्दगी पर बहुत असर करनेवाले हैं। जैसे—होली आती है तो महीने डेढ़ महीने पहले से लड़के ऊधम मचाने लगते हैं और गाली गलौजके अपशब्द बकने लगते हैं। दीवाली आती है तो कितने ही दिन पहलेसे लोगोंमें खुशी छा जाती है और उसके लिये कुछ कुछ तय्यारी होने लगती है, लड़के पन्द्रहियों पहलेसे जूआ खेलते हैं और दीवालीकी बाट देखते हैं। विजयादशमी आती है तो कई दिन पहलेसे लोगोंमें चहल पहल मच जाती है और सामान जुटानेकी धूम पड़ जाती है। इसी तरह हमारे सब त्योहार हम पर किसी न किसी तरहका गहरा असर डालते हैं। मनुष्योंका स्वभाव ऐसा है कि वे अपनी जिन्दगीकी रोजमर्राकी घटनाओंसे बहुत आनन्द नहीं प्राप्त कर सकते। वे कहते हैं कि नहानेमें क्या है? खानेमें क्या है? सोनेमें क्या है? घूमने फिरनेमें क्या है? कुछ बातचीत करनेमें क्या है? ऐसे

ऐसे रोजके कामोंमें सीखने समझनेकी बात क्या रखी है? इनमें कुछ दम नहीं है। परन्तु बहुत दिनों पर या कई महीनों पर जो त्योहार आते हैं जिनमें बढ़िया बढ़िया चीजें खानेको मिलती हैं, अच्छा अच्छा पहनने ओढ़नेको मिलता है और जिनमें रोजसे कुछ अधिक चटक मटक होती है, उन त्योहारोंके कामों और घटनाओंको वे कुछ बढ़ चढ़ कर समझते हैं। इससे जिन्दगीके रोजके काम साधारण मनुष्यों पर बहुत असर नहीं करते परन्तु मौके मौके पर आनेवाले त्योहार ऐसे आदमियों पर बहुत असर करते हैं।

अब हमें अपने त्योहारोंका रहस्य समझना चाहिये।

क्योंकि ज्ञानी लोग कहते हैं कि तारमें बिजली रखनेके लिये बीच बीचमें थोडी थोडी दूर पर बैटरियाँ लगानी पडती हैं। अपनी जिन्दगीके तारमें तत्त्व भरनेके लिये त्योहार नया जीवन देनेवाली बैटरियाँ हैं। जैसे बीच बीचमें बैटरियोंकी मदद रहे बिना बिजलीका प्रवाह तारमें पूरा पूरा जारी नहीं रह सकता वैसे त्योहारोंके आनन्दकी मदद बिना हमारी जिन्दगीके तारमें पूरा पूरा रस नहीं रह सकता। इसलिये जो त्योहार हैं वे कुछ निकम्मे खेलवाड नहीं हैं, बल्कि हमारी जिन्दगीमें रस भरनेवाले झरने हैं; हमारे जीवनमें नयी बिजली लानेवाली बैटरियाँ हैं, हमारे संसारका सुख बढ़ानेवाले आनन्दके तालाब हैं और हमें परमार्थ सिखानेवाले सद्गुरु हैं। इतना ही नहीं, हमारे त्योहार हमें परमात्माके रास्तेमें ले जानेवाले महात्मा हैं। इसलिये हमें

अपने त्योहारोंकी खूबी समझना चाहिये और खूब सोच विचार कर अपना त्योहार मनाना चाहिये।

हमारे त्योहारोंमें हमारी उन्नतिके कितने ही रास्ते हैं।

त्योहारोंमें इतना बड़ा रहस्य होनेका कारण यह है कि वे हमारी जिन्दगी पर बहुत जबरदस्त असर कर सकते हैं और वह असर सिर्फ एक विषयमें नहीं बल्कि जिन्दगीके सब विषयोंमें हो सकता है। जैसे, धर्मके विषयमें, आचारके विषयमें, समाज-सुधारके विषयमें, राजनीतिक सुधारके विषयमें, शारीरिक बल बढ़ानेके विषयमें, मानसिक बल प्राप्त करनेके विषयमें, शिक्षाप्रचारके विषयमें और जगतकी उन्नति होनेमें तथा स्वर्गके रास्तोंमें आगे बढ़नेमें वे सहायता करते हैं। पवित्र सनातन आर्य धर्मकी यह एक बहुत बड़ी खूबी है कि जिन्दगीके हर एक विषयमें धर्म आ सकता है, क्योंकि आर्योंका जीवन ही धर्ममय है। संसारके दूसरे धर्मवाले धर्म और व्यवहारको अलग अलग समझते हैं; परन्तु हमारे पवित्र ऋषि धर्म और व्यवहारको अलग नहीं समझते थे बल्कि यह समझते थे कि सद्व्यवहार ही धर्म है और पवित्र चरित्र, शुद्ध आचार ही धर्म है तथा यही व्यवहारकी मुख्य खूबी और मुख्य कुंजी है। इससे वे व्यवहार और धर्मको बिलगाते नहीं थे, बल्कि दोनोंको एक ही समझते थे। इसीसे उन्होंने अपने त्योहारोंमें आत्माके कल्याणके साथ देशके कल्याण, राज्यसुधार, जीवनकी वृद्धि और बुद्धि बलके विकास आदि जिन्दगीके सभी जरूरी विषयोंका समावेश किया है। तिस पर भी यह खूबी है कि उनका प्रवाह जुदी

जुदी दिशाओंमें नहीं आता बल्कि एक ही मूल उद्देशकी ओर आता है। इससे बाहरसे जुदे जुदे उद्देश दिखाई देने पर भी अन्दरसे एक ही मूलकी ओर आता है। इसलिये अब हमें अपने त्योहारोंका मूल ढूँढ़ना चाहिये और उनके असली उद्देशकी तरफ ढलना चाहिये। ऐसा करें तो हमारी उन्नति बहुत शीघ्र हो सकती है; क्योंकि हमारी जिन्दगी पर हमारे त्योहार बहुत बड़ा असर करते हैं। इसलिये प्रभुकी आज्ञाका आदर करके बुद्धियोग साधना चाहिये और विचार विचार कर काम करना सीखना चाहिये।

आज कल हमारे त्योहार हमें क्या सिखलाते हैं?

इससे हम समझ सकते हैं कि हमारी जिन्दगीमें काम आने योग्य जरूरी विषय हमारे त्योहारोंमें भरे हैं। इसके सिवा उन भिन्न भिन्न विषयोंका मूल उद्देश एक ही है और उन सबका तार एक ही दिशामें एक ही महान तत्वकी ओर आता है। परन्तु अफसोस है कि हम इन सब तत्वोंको उनके असली स्वरूपमें नहीं जानते इससे आज कल हमारे त्योहार हमें जुदी जुदी तरफ खींचते हैं। जैसे, मकरसंक्रांति दान देना सिखाती है; यह एक दिशा है। परन्तु होलीका त्योहार हमारे बालकोंको गाली बकना सिखाता है और दीवालीका त्योहार हमारे बहुतेरे भाइयोंको जूआ खेलना सिखाता है; ये उससे बिलकुल विरुद्ध हैं और उलटी दिशामें ले आनेवाले हैं। इसी तरह सलोनोका त्योहार क्षमा माँगना सिखानेवाला है यह एक दिशा है और दुर्गापूजा, गणेशचौथ, शिवरात्रि, रामनवमी, लक्ष्मीपूजा आदि त्योहार भिन्न भिन्न देवताओंकी पूजा करना सिखाते हैं। इतना ही नहीं बल्कि यह सिखाते हैं कि इन

देवताओंमें बड़ा अन्तर है। आज कलके लोग देवताओंमें यहाँ तक भेद समझते हैं कि विष्णुका नाम लेनेसे शैव पतित हो जाता है। इससे पहलेके ऋषियोंका जो यह महान सिद्धान्त था कि एक ही ईश्वरको पूजना उस सिद्धान्त पर हम पानी फेर रहे हैं और पुराने सिद्धान्तसे उल्टी ही दिशामें जा रहे हैं। इस प्रकार त्योहारोंका अर्थ समझनेमें, उनका उद्देश समझनेमें और उनके रहस्यको अपनी जिन्दगीमें लानेमें हम बहुत ही लापरवा बन गये। इसके सिवा इन विषयोंमें हमें कुछ भी ज्ञान नहीं है इसीसे हमारा समाज दुखी है, हमारा आचरण चौपट है, हमारा धर्म ढीला है, हमारा देश दुखी है और हम दुर्बल हैं। इस स्थितिसे निकलनेके लिये हमें अपने त्योहारोंका असली रहस्य समझना चाहिये और इस तरह उन त्योहारोंको मनाना चाहिये कि जिससे हम अपनी जिन्दगीमें उनसे गहरा लाभ उठा सकें। जैसे—

श्रीरामचन्द्रका जन्मदिन।

रामनवमीके त्योहार पर पहले परमात्माकी इस प्रकार प्रार्थना करना—

हे कृपालु पिता! आज रामनवमी * है अर्थात् श्रीरामके जन्मकी तिथि है। जिन रामका यश घर घर गाया जाता है जिन रामचन्द्रकी मूर्ति आज तक पूजी जाती है, जिन रामचन्द्रके चरित्रसे लाखों मनुष्योंकी जिन्दगी सुधरी है और जिन रामचन्द्रके नामसे हजारों भक्तोंको शान्ति मिली है तथा अब भी मिलती है उन भगवान श्रीरामचन्द्रकी आज जन्म-

* इसी तरह जो त्योहार हो उसका नाम लेना और उसके सम्बन्धकी बातों तथा अवसरके अनुसार प्रार्थना करना।

तिथि है । इसकी खुशीका आज उत्सव है; इससे सरकारी आफिस बन्द हैं, दुकानें बंद हैं, कारखाने बन्द हैं, बंक बन्द हैं और विद्यालय बन्द हैं । आज रामलीलाका नाटक होगा; आज रामजीका रथ निकलेगा; आज जगह जगह मेले लगेंगे, आज लोग उपवासका, फलाहारका तथा ब्रह्मचर्यका व्रत करेंगे और दुर्गाजीकी भी पूजा करेंगे । आज लोग गरीबोंको दान देंगे, आज लोग जागरण करके हरिकथा सुनेंगे, आज स्थान स्थान पर रामायण होगी और हे प्रभु ! आज लाखों हरिजन तेरे गुण गा गा कर आनन्दित होंगे तथा वारंवार तेरा उपकार मानेंगे और इससे आत्मिक ढारस पावेंगे ।

हे प्रभु ! हम जानते हैं कि महात्माओंने जो जो त्योहार ठहराये हैं वे आनन्द पानेके लिये हैं; जीवको ऊंचे चढ़ानेके लिये हैं; संसारके मोहमें फंसे हुए जीवोंको कुछ स्वार्थत्याग सिखानेके लिये हैं; व्यवहारकी उपाधिके तापमें तपते हुओंको बीच बीचमें शान्ति देनेके लिये हैं; परमार्थ सिखानेके लिये हैं; प्रभुके गुण गाने तथा उनका उपकार माननेके लिये हैं, मनको वशमें रखना सिखानेके लिये हैं और तेरा गुण गान करनेके लिये हैं । कुछ ऊपरी मौजशौक करनेके लिये ही त्योहार नहीं हैं, कुछ बढ़िया बढ़िया खानेके लिये ही त्योहार नहीं हैं, कुछ लड़कोंकी तरह खेलकूद करनेके लिये ही त्योहार नहीं हैं और वे, जरूरतका भोग विलास करनेके लिये ही त्योहार नहीं हैं, बल्कि नया जीवन पानेके लिये त्योहार हैं, व्यवहारी जंजालकी थकान उतारनेके लिये त्योहार हैं; संसारमें स्वर्गका अनुभव करनेके लिये त्योहार हैं; भ्रातृभाव बढ़ानेके लिये त्योहार हैं; गरीबोंकी मदद करनेके लिये त्योहार हैं और सर्वशक्तिमान परम कृपालु पिता महान ईश्वरकी

महिमा समझनेके लिये त्योहार हैं। परन्तु अफसोस है कि हे नाथ! हमसे इनमेंसे कुछ भी नहीं बनता। ऊपरी मौज शौकमें और तुच्छ आमोद प्रमोदमें ही हमारे त्योहारोंके दिन बीत जाते हैं। इसलिये हे परम कृपालु पिता! हमें त्योहारका उद्देश समझने और उसके अनुसार चलनेकी सद्बुद्धि दे।

हे प्रभु! आज रामनवमीका उत्सव है। उस पर विचार करनेसे मालूम होता है कि भगवान रामचन्द्र समर्थ महात्मा थे। उनका चरित्र पवित्रसे पवित्र था, उनका जीवन अनुकरण करने योग्य था और उनके सद्गुण नमूनेके तौर थे। जैसे; पुत्रके रूपमें राम माता पिताकी पूरी पूरी आज्ञा पालने वाले थे; भाइयोंके साथ रामका सम्बन्ध अलौकिक था; पतिकी हैसियतसे रामका सीता पर बेहद प्रेम था; राजाके तौर पर रामका नाम सारी दुनियामें अब तक बखाना जाता है; पिताके रूपमें लवकुश पर वात्सल्य प्रेम रखनेमें राम आदर्श थे; मित्र सम्बन्धमें सुग्रीव तथा विभीषण आदिके साथ रामकी उदारता और उनका स्नेह बारंबार याद करने योग्य था; हनुमान, जामवन्त, नल, नील, अंगद आदि सेवकों पर कृपा रखनेमें रामके समान और कोई नहीं हुआ और गुरु वशिष्ठ महाराजका ऊंचा ज्ञान समझने तथा उनकी आज्ञा पालनेमें राम जैसे शिष्य भी जगतमें विरले ही होते हैं। जिनका एकपत्नीव्रत था, जिनका एक वचन था और जिनका एक बाण था ऐसे बहादुर, ऐसे ज्ञानी, ऐसे नीतिके आदर्श, ऐसे कर्त्तव्यपरायण और ऐसे धर्मके अवतार मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्रके जन्म दिवसका आज उत्सव है। इसलिये उनके इन गुणोंको याद करना चाहिये और ऐसी कोशिश करनी चाहिये कि वे गुण हममें आवें। ऐसा हो तभी राम-

नवमीके त्योहारकी सार्थकता मानी जा सकती है। ऐसा ऊंचा उद्देश न रखकर भेड़िया-धसानकी तरह, लोकाचारके अनुसार मन्दिरमें जय जय कर आने और न पचने योग्य भारी और बे अन्दाज भोजन करने तथा अच्छी अच्छी पोशाक पहन कर मेले ठेले या नाटक देखने जानेमें ही त्योहारकी सार्थकता नहीं है। तो भी अफसोस है कि हे प्रभु! अब तब तक हम इसीमें पड़े हैं। इसलिये अब तो हमें सद्बुद्धि दे और ऐसी अज्ञानतासे तथा ऐसी पोलमपोलसे छुड़ानेकी कृपा कर, कृपा कर, कृपा कर।

सूचना—बन्धुओ! इस प्रकार हर एक त्योहारका अर्थ तथा उद्देश समझना चाहिये और उससे अपनी जिन्दगीमें कुछ उच्चता लानी चाहिये; क्योंकि जिन्दगीके तारमें नयी बिजली भरनेके लिये जुदे जुदे त्योहार जुदी जुदी किसकी बिजली पैदा करनेवाली बैठरियां हैं। याद रखना कि हमारे हर एक त्योहारमें कुछ गूढ रहस्य है, परन्तु उसको समझने और उससे काम लेनेकी हम कोशिश नहीं करते इसीसे हम पीछे रह जाते हैं, इसीसे हम निस्तेज पड़ जाते हैं, इसीसे हम कर्तव्य-भ्रष्ट होते जाते हैं और इसीसे हम ईश्वरसे विमुख होते जाते हैं। इसलिये हमें अपने मुख्य मुख्य त्योहारोंका अर्थ और उद्देश समझना चाहिये। अगर कोई समर्थ विद्वान हमें यह रहस्य समझावे और कोई श्रीमान इनाम देकर इस ढङ्गके ग्रंथ रचवा कर अपने भाइयोंमें फैलावे तो वह भी देशकी बहुत अच्छी सेवा समझी जाय। क्योंकि हम अपने त्योहारोंकी उत्पत्ति और उनका रहस्य समझेंगे तो किसी दिन उसमेंसे कुछ करनेकी भी हमारी इच्छा होगी। इसलिये यह रहस्य जाननेकी खास जरूरत है।

जन्माष्टमीका रहस्य।

जैसे रामनवमीके त्योहारकी बात कही वैसे ही जन्माष्टमीके लिये भी समझना चाहिये कि इस पवित्र तिथिको महात्मा श्रीकृष्ण भगवानका जन्म हुआ था। महात्मा श्रीकृष्णने अपने मा बापका बंधन छुड़ाया था; अपने भाइयोंको इन्द्रके कोपसे बचाया था; जरासंध, कंस, कालयवन आदि दुष्ट राजाओंका नाश करके उनकी प्रजाको दुःखसे छुड़ाया था और धर्मके पक्षमें रहकर अधर्मी कौरवोंका सहार कराया था। उनका प्रेम मनुष्य जाति पर ही नहीं था बल्कि गाय तथा बन्दर जैसे जानवरों पर भी उनका बेहद प्रेम था। अपने भाइयोंके कल्याणके लिये उन्होंने महाभयंकर जोखिममें पड़ कर कालीनाग जैसे महादुःखदायक जन्तुओंका संहार किया था और वह गीतारूपी ऐसा ज्ञान जगतको दे गये हैं जिससे संसारके अंत तक सारी दुनियामें उनका गुण बखाना जायगा और उनके सिद्धान्त भिन्न, भिन्न रूपोंमें पाले जायंगे। ऐसे महात्माकी जन्मतिथि जन्माष्टमी है। इन सब बातोंको याद करके हमें ऐसा करना चाहिये कि ऐसे गुण हममें आवें। ऐसा करना आवे तभी इस त्योहारकी सार्थकता होगी।

श्राद्धकी खूबी।

इसी तरह पितृपक्षमें जब अपने पितरोंकी तिथि आवे तब हमें उनके गुण याद करने चाहियें। जैसे, हमारे पितर महाज्ञानी थे; हमारे पूर्वज बड़े बहादुर थे; हमारे पूर्वज मृत्युका भय नहीं रखते थे; हमारे पूर्वज भ्रष्ट विदेशी चीजें नहीं बर्तते थे; हमारे पूर्वज अपने भाइयों पर अतिशय प्रेम रखते थे और एक दूसरेकी मदद करते थे; हमारे पूर्वज बड़े उद्योगी

थे और हमारे बाप दादे अपना धर्म्म पालनेमें बड़े श्रद्धालु थे। इसलिये स्वर्ग गयी हुई उनकी आत्माओंको प्रसन्न करनेके लिये और उनका आशीर्वाद लेनेके लिये हमें उनके सद्गुणोंका अनुकरण करना चाहिये। ऐसा करनेका नाम ही पितृश्राद्ध है और ऐसा करना ही श्राद्धकी सार्थकता है। इसलिये अब अंधश्रद्धामें न पड़े रह कर इस प्रकार हमें त्योहारोंका कारण समझना चाहिये। अगर यह जाननेकी कोशिश करें तो इससे कितने ही महान तत्त्व हमें मालूम हों। जैसे—

विजयादशमी

के दिन गरीबोंको सतानेवाले महाबलवान राक्षस रावणको श्रीरामने मारा था; अपने ऊपर अनुचित रीतिसे अत्याचार करनेवाले कौरवोंके विरुद्ध विजयादशमीके दिन पाण्डवोंने हथियार उठाया था और दिल्लीके मुसलमान बादशाहोंके अंधेरके समय उनके सूबेदारोंसे लड़नेके लिये राजपूत और मराठे सरदार दशहराके दिन अपना सिवाना छोड़ कर शत्रुके देशमें कूच करते थे, क्योंकि विजयादशमी बड़ी विजय पानेके लिये बिना पूछे शुभ मुहूर्त्त मानी जाती है। इसलिये हमें भी अपने तथा अपने देशके कल्याणके लिये विजयादशमीके दिन किसी भारी पराक्रमका श्रीगणेश करना चाहिये। परन्तु इसमें इस बातका ख्याल रखना चाहिये कि अब हमें किसीके साथ हथियारकी लड़ाई करनेकी जरूरत नहीं है; बल्कि अब तो अपने देशकी कारीगरीका उद्धार करनेकी जरूरत है— शिल्पकलाकी लड़ाई करनेकी जरूरत है; वाणिज्य व्यवसायमें चढ़ाऊपरीकी लड़ाई करनेकी जरूरत है; अपने मालके लिये विदेशी बाजार खुला रखनेकी लड़ाईकी जरूरत है; दूसरे

देशोंमें अपना हक बनाये रखनेके लिये न्यायानुसार बुद्धि पूर्वक लड़नेकी जरूरत है, राज्यमें प्रजाकी सुनवाई हो ऐसा लोकमत प्रबल करनेके लिये निरुपद्रव भावसे महान गर्जना करनेकी जरूरत है: विदेशी वस्तुओंका व्यवहार करनेसे हमारे देशकी शिल्पकला किस तरह चौपट हो रही है—इससे हमारे भाइयोंकी कैसी अधम दशा होती जाती है यह समझना और अपने अज्ञान भाइयोंको समझाना तथा विदेशी वस्तुओंकी आमदनीके मुकाबले देशी चीजें बाजारमें जुटाना और उन दोनोंकी चढ़ाऊपरीमें विदेशी चीजों पर देशी चीजोंको विजय पाने देना हमारा काम है। यह कब होता है मालूम है ? जब विदेशी चीजोंसे हमारे देशकी चीजें अच्छी हों, सस्ती हों, अधिक सुरंगेकी हों, अधिक टिकाऊ हों, अधिक सुन्दर हों तथा और सब तरहसे फायदेमन्द हों तभी वे विदेशी वस्तुओं पर विजय पा सकती हैं। इसलिये याद रखना कि आज कलके जमानेमें हथियारसे लड़नेकी जरूरत नहीं है बल्कि दसों इन्द्रियोंको वशमें रखनेके लिये उनकी मनमानी चालसे लड़नेकी जरूरत है; सादगीसे रहना सीखते हुए मौजशौकसे लड़नेकी जरूरत है; कलमसे लड़नेकी जरूरत है, व्यापारसे लड़नेकी जरूरत है और शिल्पकलासे लड़नेकी जरूरत है। कुछ जंगलियोंकी तरह या राक्षसोंकी तरह लड़ना नहीं है बल्कि मित्रता रखकर बाजी जीतने और इनाम लेनेकी लड़ाई करनी है। इसलिये विजयादशमीके दिन अब हमें इस प्रकारकी विजय करना सीखना चाहिये।

धनतेरसका त्योहार कैसे मनाना चाहिये ?

धनतेरसके दिन लक्ष्मीपूजा करनेका रिवाज है; पर

लक्ष्मीपूजा माने क्या यह आपको मालूम है? हम थालीमें रुपया रखकर दूधसे धोवें; उस पर रोली छिड़कें और फूल चढ़ावें तथा उसकी आरती उतारें तो यह लक्ष्मीपूजन नहीं कहलाता। महात्मा लोग कहते हैं कि लक्ष्मीको प्रसन्न रखनेका नाम लक्ष्मीपूजा है। और लक्ष्मी कैसे प्रसन्न रहती है यह आप जानते हैं? धनधान्यकी वृद्धि होनेसे लक्ष्मी प्रसन्न रहती है; धनका अच्छा उपयोग होनेसे लक्ष्मी प्रसन्न रहती है; रुपयेके खुले खजाने सर्वत्र घूमते फिरते रहनेसे लक्ष्मी प्रसन्न रहती है; विदेशकी लक्ष्मी हमारे देशकी लक्ष्मीसे मिलने आवे तब हमारे घरकी लक्ष्मी प्रसन्न होती है; राजलक्ष्मीके साथ हमारे घरकी लक्ष्मीकी मित्रता हो तब गृहलक्ष्मी प्रसन्न होती है और पुराने खंडहरोंमें गड़ी हुई, खनिज रूपसे खानोंमें पड़ी हुई, वनस्पति रूपसे सड़ जानेवाली तथा उपज रूपसे खेतोंमें भरी हुई अपनी सहेली लक्ष्मी को बाहर निकालनेसे हमारे घरकी लक्ष्मी प्रसन्न होती है। इसके सिवा अपने सत्कर्मोंसे स्वर्गके देवताओंको प्रसन्न करके उनके पासकी लक्ष्मी यहाँ लानेसे हमारी लक्ष्मी प्रसन्न होती है। इस प्रकार अपने देशकी तथा अपने घरकी लक्ष्मीको प्रसन्न करनेका ही नाम लक्ष्मीपूजा है। कुछ दो एक रुपयेको दूधसे धोकर उसके सामने धूप दीप देनेसे लक्ष्मी प्रसन्न नहीं होती। इसलिये अगर सच्ची लक्ष्मीपूजा करनी हो तो ऐसा करना चाहिये जिससे लक्ष्मीकी वृद्धि हो और लक्ष्मीका सदुपयोग हो तथा लक्ष्मी डोलती फिरती रहे। इसके बदले दरिद्री रहें, मक्खीचूस बनें और रुपयेको सन्दूकमें बन्द कर रखें तो इससे लक्ष्मी प्रसन्न नहीं होती और लक्ष्मी पर ऐसा अत्याचार करनेके बाद धनतेरसके दिन कुछ रुपये

को दूधसे धोनेसे और उस पर फूल चढ़ानेसे लक्ष्मीदेवी अपनी पूजा नहीं मान लेने की। इसलिये अब हमें अपने त्योहारोंका ऐसा रहस्य समझ कर उनसे अच्छी तरह लाभ उठाना सीखना चाहिये।

शारदा-पूजा।

दीवाली शारदापूजाका दिन है* परन्तु हम सिर्फ बही-खातोंमें या बैठककी दीवारों पर "श्रीलक्ष्मीजीकी कृपा" "श्रीगणेशजी सहाय" "श्रीमहाकाली प्रसन्न" "शुभ लाभ" आदि जो जीमें आता है दस पांच अक्षर लिख देते हैं और बहीखाते पर चन्दन रोली छिड़कते हैं तथा उसकी आरती उतारते हैं या कलम दावातको धो धा कर फूल अक्षतसे पूजते हैं और मुंह मीठा करनेके लिये बताशा या गुड़ लावा खाते हैं और इसीको शारदापूजा मानते हैं। परन्तु अफसोस! किसी दिन हम यह भी नहीं विचारते कि क्या सरस्वतीकी पूजा ऐसी ही होती है! जिस सरस्वतीकी कृपासे सारी दुनिया आबाद रहती है; जिस सरस्वतीकी कृपासे प्राणीमात्र सुखी रहते हैं; जिस सरस्वतीकी कृपासे संसारमें स्वर्गका अनुभव किया जा सकता है; जिस सरस्वतीकी सहायतासे जीवात्माको उन्नतिके रास्तेमें उड़नेके पंख मिल सकते हैं; जिस सरस्वतीके सहाय होनेसे सब पर प्रभुत्व जमाया जा सकता है; जिस सरस्वतीकी सहायतासे महापाप जलाये जा सकते हैं; जिस सरस्वतीकी सहायतासे कूड़ेसे

* बम्बईकी तरफ दीवालीको, शारदापूजा होती है। उत्तर भारतमें भैयादूजको कलमदावात-पूजाके नामसे और बंगालमें वसन्तपंचमीको सरस्वतीपूजाके नामसे शारदापूजा होती है। अ०

सोना बनाया जा सकता है; जिस सरस्वतीकी सहायतासे अमरत्व प्राप्त किया जा सकता है, यहाँ तक कि जो सरस्वती (ज्ञान) स्वयं भगवानका ही रूप है और जिस सरस्वतीके सौंदर्यके आकर्षणसे, मोहिनी तथा रहस्यसे लुभाकर जगतको उत्पन्न करनेवाले स्वयं ब्रह्मा भी उसके पीछे दौड़े थे उस सरस्वतीकी सच्ची पूजा कोरे बही-खातोंमें एक पन्ने पर अपनी मरजी मुताबिक या पुराने दस्तूरके मुताबिक दस पाँच डाँड़ी लिख देने और उन पर फल चन्दन चढ़ाकर आरती करनेसे ही थोड़े हो सकती है? ऐसी पूजासे क्या अपनी आत्माको सन्तोष मिल सकता है? और ऐसी पूजासे क्या सरस्वती प्रसन्न होगी? भाइयो! कहिये कि नहीं। कुछ वर्ष पहले अन्धकारके जमानेमें जब और कोई अच्छा उपाय न था उस समय जिन लोगोंने इस प्रकार की नाम मात्रकी पूजा भी जारी रखी उनका यह बहुत बड़ा उपकार है और इसके बादके अज्ञानी लोगोंको "सांप गया और लकीर रह गयी" की तरह नाम मात्रकी शारदापूजासे सन्तोष होता रहा हो तो वह और बात है; परन्तु अब हमारी आँखें खुली हैं और जमाना बदलता जाता है। इसलिये अब हमें पहलेका रहस्य समझकर इस रीतिसे शारदाकी पूजा करनी चाहिये कि जिससे वह प्रसन्न हो। ऐसी पूजा कैसे होती है? इसके लिये विद्वान कहते हैं कि जो शारदाके उपासक हैं उन विद्वानोंकी सेवा करनेका नाम शारदापूजा है। धनवान लोग अपने घर पण्डितोंको बुलाकर उनकी ज्ञानचर्चा सुनें तथा उनका यथायोग्य सम्मान करें इसका नाम शारदापूजा है, नये ग्रन्थ लिखने तथा इनाम देकर लिखवानेका नाम शारदापूजा है। परीक्षामें उत्तीर्ण विद्यार्थियोंको इनाम देने और उनका उत्साह

बढ़ानेका नाम शारदापूजा है। जनताकी ओरसे कालेज तथा विश्वविद्यालय खोलनेका नाम शारदापूजा है; शिल्पकलाकी शिक्षा बढ़ानेका नाम शारदापूजा है; ऊँचे दरजेकी शिक्षा लेनेके लिये गरीबोंको सुबीता कर देनेका नाम शारदा पूजा है, देशकी आबादी बढ़ानेके लिये नये नये ढङ्गके आविष्कार करने तथा करानेका नाम शारदापूजा है; प्राचीन कालकी जो विद्याएँ नष्ट हो गयी हैं उनको सजीव करनेका नाम शारदापूजा है; आजकलके जमानेमें जो नया नया विज्ञान निकलता जाता है उसका प्रचार करनेका नाम शारदापूजा है; आरम्भिक शिक्षा मुफ्त और जरूरी बनानेका नाम शारदापूजा है, शास्त्रोंका रहस्य समझकर लोगोंके धर्मकी भावना दृढ़ करनेका नाम शारदापूजा है; अच्छी अच्छी पुस्तकोंका प्रचार सस्तेसे सस्ते दाममें करनेका नाम शारदापूजा है; नये नये पुस्तकालय खोलने और गरीबोंके लिये मुफ्त पुस्तकें पढ़नेका बन्दोबस्त करनेका नाम शारदापूजा है और अपने भाइयोंमें ईश्वरी महिमाका ज्ञान फैलाने, मनुष्यमें दबी हुई महान आत्मिक शक्तियोंको चमकाने और जगतका कल्याण करने योग्य अभी तक छिपे हुए प्रकृतिके भेद समझनेका उपाय करनेका नाम शारदापूजा है। अगर शारदापूजाके दिन असली रीतिसे शारदाकी पूजा करनी हो और शारदा देवीको प्रसन्न करके उसका आशीर्वाद लेना हो तो इस प्रकारकी पूजा करनी चाहिये। ऐसा किये बिना, सिर्फ चलते रिवाजके अनुसार कोरे बही खातेमें दस पाँच डांड़ी लिख देनेसे शारदा नहीं प्रसन्न होती। इसलिये अब अर्थ समझकर, उद्देश समझकर और अन्दरका रहस्य समझकर हृदयकी उमंगसे हमें हर एक काम करना चाहिये।

सब तरहके किलोंसे अन्नके किले बढ़कर हैं।

दीवालीके दूसरे दिन अन्नकूटका उत्सव होता है। यह बड़ा उत्सव है और इसमें बहुत बड़ा अर्थ भरा हुआ है; परन्तु अफसोस है कि इसका रहस्य हम लोग नहीं समझते और यह उत्सव भी बच्चोंका खेल सा हो गया है। इसमें वैष्णव धर्मके मन्दिरोंमें ठाकुरजीके सामने कई तरहकी मिठाई और सागभाजी इत्यादि खानेके पदार्थोंका ढेर लगाकर उनको दिखलाते और वह प्रसाद देकर कितने ही स्थानोंमें उससे भी पैसा पैदा करनेका रोजगार चलाते हैं। इससे ऐसी बातों पर शिक्षित लोगोंकी जैसी चाहिये वैसी श्रद्धा नहीं रह सकती। परन्तु हमारे त्योहारोंका मूल उद्देश समझनेवाले अनुभवी महात्मा कहते हैं कि अन्नकूटके उत्सवमें बड़ा गहरा अर्थ है। यह उत्सव दीवालीके दूसरे दिन होता है और इसका नाम ही "अन्नकूट" यानी अन्नका किला है। जिन लोगोंके घर लक्ष्मीपूजाके समय अन्नका कूट हो अर्थात् बहुत दिनों तक चलने योग्य अन्नका ढेर हो और अन्नका भण्डार भरा हो उनके पास अकाल क्योंकर आ सकता है? उस प्रजाके पास अन्नका किला तोड़कर तरह तरहके दुःख रोग कैसे आ सकते हैं? नहीं आ सकते। क्योंकि अन्नका ढेर सुखकी गारंटी है। जिस वर्ष अन्नकूटका उत्सव हो उस वर्ष अकाल नहीं पड़ सकता। क्योंकि यह उत्सव ही प्रजाकी सुखशान्ति और उन्नतिका प्रमाण है और यह उत्सव ही प्रजामें परस्पर, राजा प्रजाके बीच तथा मनुष्य और ईश्वरके बीच प्रतिष्ठाका सम्बन्ध प्रकट करनेका सार्टीफिकेट है। लकड़ीके कूट या किलेसे, मिट्टीके किलेसे, हथियारके किलेसे,

और चाँदी सोनेके किलेसे भी अन्नका किला अधिक मजबूत है। अगर अन्न न हो तो चाँदी, सोनेके, लोहेके या गोली बारूदके किले कुछ काम नहीं आ सकते। अगर अन्न न हो तो सब किलोंको छोड़कर भाग जाना पड़े। इसलिये याद रखना कि और सब तरहके किलोंसे अन्नका किला अधिक मजबूत है। मगर अफसोस है कि हमारी ज़िन्दगीका जो मुख्य आधार है वह अन्न अब परदेश चला जाता है। इससे दिन दिन हमारे देशमें महँगी बढ़ती जाती है; गरीबी बढ़ती जाती है और भिखमंगे बढ़ते जाते हैं। तो भी हमारे देशसे परदेश जाते हुए अन्नको वहाँ जानेसे रोकनेका उचित उपाय कोई नहीं करता और "साँप गया लकीर रह गयी" की तरह मन्दिरोंमें सिर्फ नामका और वह भी रोजगार करनेके लिये अन्नकूट होता है। आजकल हमारे त्योहारोंकी यह स्थिति है, हमारे त्योहारोंकी यह रीति है और हमारे त्योहारोंकी यह नीति है। जब महात्माओंके स्थापित किये हुए, प्रभुके लिये माने जाने योग्य त्योहारोंके उत्सवोंका यह बुरा हाल है तब हमारा अच्छा हाल कैसे होगा? अगर अपनी और अपने देशकी स्थिति सुधारनी हो तो हमें अपने त्योहारोंका ऊँचा उद्देश समझना चाहिये और उसके अनुसार चलनेकी कोशिश करनी चाहिये। ऐसा करें तो हम थोड़े ही समयमें बहुत आगे बढ़ सकते हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इसका सबूत ढूँढ़नेके लिये कहीं दूर नहीं जाना पड़ेगा। हम पहलेके बुद्धिमान मनुष्योंकी तरह अन्नकूट करें अर्थात् अन्नका भण्डार भर सकें तो हमारा पूरा वर्ष सुधर सकता है। सो अब देशके कल्याणके लिये हमें इस तरहका अन्नकूट करना सीखना चाहिये

जमानेके अनुसार दान करना चाहिये।

जैसे हम अन्नकूटके त्योहारका रहस्य नहीं समझते वैसे ही मकरसंक्रान्तिकी पुण्यतिथिको हमें जो दान करना चाहिये उसके नियम भी नहीं जानते। हम चलते रिवाजके अनुसार तिलका लड्डू, पतला सतला कपड़ा और खिचड़ी तथा मिट्टीका काला बर्तन दान करते हैं और ब्राह्मणभोजन कराते हैं। इस तरहके आडम्बरी और नामके दानमें ही हमारी संक्रांति समाप्त हो जाती है। परन्तु अनुभवी महात्मा लोग कहते हैं कि अब जमाना बदला है और अब हमारी आँखें खुली हैं इसलिये अब हमें जैसे तैसे रसूम अदा करके मनको समझानेवाले ऐसे दानमें नहीं रहना चाहिये। आप जानते है दानके माने क्या? महात्मा लोग कहते हैं कि दान माने प्रभुके दरबारका द्वार खोलनेकी कुंजी; दान माने जीवात्माके उड़नेका पंख, दान माने स्वर्गमें जानेका विमान; दान माने पापको जलानेकी आग, दान माने देवताओंकी कृपा पानेका उपाय, दान माने सब प्रकारके सद्गुण पानेका द्वार; दान माने भ्रातृभाव बढ़ानेकी कीमिया, दान माने जगतसे दुखियोंका दुःख दूर करनेकी हिकमत, दान माने अपने हृदयको विशाल बनानेकी युक्ति; दान माने जगतका मोह घटानेकी औषध और दान माने जीवोंको कर्मके बन्धनसे छुड़ानेवाला देवता। इतना ही नहीं बल्कि जीवों पर दया करनेके लिये निःस्वार्थ भावसे प्रभु जैसा करते हैं वैसा करने-का नाम दान है और उनको दयामें मददगार बननेका नाम दान है। भाइयो! दानमें ऐसी खूबी है। इसलिये हमेशा, जब बने तब अपनी हैसियतके अनुसार और सामनेके मनुष्य-की योग्यताके अनुसार वारंवार दान करना चाहिये। यह

शास्त्रका हुक्म है, यह महात्माओंका उपदेश है और यह ईश्वरकी इच्छा है। तो भी अज्ञानताके कारण जीवोंका स्वभाव बड़ा स्वार्थी, बड़ा लोभी, बड़ा शंकी और बड़ा संकीर्ण होता है; इससे वे अपनी शक्तिके अनुसार और सामनेके आदमीकी जरूरतके अनुसार हमेशा दान नहीं करते। परन्तु जब कोई बड़ा कारण होता है या कोई बड़ा लाभ होता है तभी बड़ी मुश्किलसे थोड़ा बहुत दान करते हैं। ऐसे लोगों पर कृपा करके उनके कल्याणके लिये महात्माओंने दान करनेके पवित्र दिन तथा पवित्र स्थान नियत कर दिये हैं। उनमें मकरसंक्राति एक मुख्य दिवस है। उस दिन हमें दान करना चाहिये परन्तु उसमें इतना विचार रखना चाहिये कि

*"हमारे शास्त्रोंमें दान करनेके लिये जो पात्र बताये हैं वैसे ज्ञानी, वैसे तपस्वी, वैसे निःस्पृही और वैसे योग्य मनुष्य आजकलके ज़मानेमें नहीं मिल सकते, हमारे पुराणोंमें दान करनेकी जो जो चीजें गिनायी हैं वैसी चीजोंसे आजकलके मनुष्योंकी अन्तर्वृत्ति तृप्त नहीं हो सकती; हमारे शास्त्रोंमें दान करनेके जो जो समय और जो जो स्थान नियत किये हैं उन सब मौकोंको आजकलके सब आदमी पूरे पूरे तौर पर, जमानेके फेर बदलके कारण, स्वीकार नहीं कर सकते और हमारे शास्त्रोंमें दान करनेकी जितनी आज्ञाएं हैं उनका हजारवाँ भाग भी आजकल हम लोग नहीं पाल सकते, इसलिये अपनी दानविधियोंमें कुछ फेर बदल करना चाहिये।

"हमें समझना चाहिये कि जिस समय हमारे ऋषियोंने दान करनेके नियम बनाये उस समय रेलोंके लड़ जानेकी

* "स्वर्गकी कुंजी" से।

शंका नहीं थी; उस समय 'बोलनेसे बांधे जायं और छींकनेसे सज़ा पावें' की तरह मकड़ीके जाल सा कानून नहीं था, उस समय प्लेगकी घरछोड़ हैरानी न थी। उस समय विलायती दवाओंकी बोतलोंकी पधरावनी हमारे देशमें नहीं हुई थी; उस समय आबकारी विभाग और जंगल विभागके कानून न थे; उस समय विदेशियोंका इतना अधिक समागम न था; उस समय देशमें आज कलकी सी दरिद्रता न थी और उस समय छप्पनके से अकाल बार बार नहीं पड़ते थे तथा उस समय आज कलकी तरह प्रपंची वृत्तिके मनुष्य न थे। इससे उस समय उनके सब नियम निबह सकते थे। परन्तु आज कल सब मामला बदल गया है; इसलिये अपनी दानविधिमें ज़मानेके अनुसार फेरबदल करनेकी जरूरत है।

"अब तो हमें गरीब विद्यार्थियोंकी मदद करनी चाहिये; नया आविष्कार करनेवाले कारीगरोंकी मदद करनी चाहिये; नये नये जो रोग बढ़ते आते हैं उन्हें दूर करनेके लिये वैद्यक शास्त्रकी मदद करनी चाहिये; अच्छे अच्छे ग्रंथोंके प्रचारमें सहायता देनी चाहिये, जो लोग अपना धर्म छोड़कर दूसरे धर्ममें चले जाते हैं, उनको समझा बुझा कर और प्रायश्चित्त कराके फिर जाति बिरादरीमें लेनेमें मदद करनी चाहिये; जाति बिरादरीके जो जो ज़ुल्म हैं और जनतामें जो जो वहम हैं उन्हें दूर करनेके उपायमें ध्यान देना चाहिये, धर्मके जो सैकड़ों मत मतान्तर हो गये हैं उन सब बाहरी झगड़ोंको छोड़कर भीतरसे एक होनेके प्रयत्नमें मदद करनी चाहिये, हाकिमोंकी ज्यादती घटाने और राज्यका कर कम करनेके सरकारी कानूनोंमें मदद करनी चाहिये; जिन गरीब ब्राह्मणों-का हमारे शास्त्रोंमें बड़ा मान है उनकी सन्तानें घर घर भीख

मांगती हैं और बहुत दुखी हैं उनको रोजगार धन्धेमें लगानेमें मदद करनी चाहिये; ऐसे काममें मदद करनी चाहिये कि जिससे लोग हमारे अति उत्तम शास्त्रोंका सच्चा अर्थ समझें; बेचारी गरीब विधवाओंकी दुर्दशा है उन्हें सूत कातना। सीना पिरोना या पढ़ना लिखना सिखाने या इज्जत आबरूके साथ गुजारेका बन्दोबस्त करनेमें मदद देनी चाहिये; ऐसे काममें मदद करनी चाहिये कि जिससे व्यापार वाणिज्य बढ़ानेके लिये लोग विदेश जा सकें; जो अनाथ निराधार बालक मोरियोंमें फेकी हुई पत्तलें चाटते फिरते हैं उनको उद्योग-शालामें ले जानेके काममें मदद देनी चाहिये; कितने ही बे भक्तिके मूर्ख साधु भीख मांगनेका ही पेशा करते हुए देशके बोझ रूप बन रहे हैं उनको सुधारनेमें मदद करनी चाहिये; जिन निराश्रय जीवोंको प्रभुने हमारे आसरे छोड़ दिया है उनके बचानेमें मदद करनी चाहिये और आदर करने योग्य सच्चे साधु सन्तोंकी, धर्मका तत्त्व जाननेवाले पण्डितोंकी तथा हरिजनों-की और हर तरहके विद्वानोंकी तथा अपने जाति भाइयोंकी जब बने तब यथाशक्ति मदद करनी चाहिये। इसीका नाम सत्य दान है। इस प्रकार जमानेके अनुसार दान करना हम सीखेंगे तभी हम और हमारी सन्तानें सुखी हो सकेंगी। इसलिये भाइयो और बहनो! परम कृपालु अनन्त ब्रह्माण्डके नाथको रिझानेके लिये इस रीतिका दान कीजिये जिससे दुनियामें धर्म बढ़े, हमारे दुखिया भाई बहनें सुखी हों और हमारा चौपट होता हुआ देश उन्नत हो। यह हमारे पवित्र शास्त्रका उपदेश है और यह ईश्वरकी आज्ञा है। सो प्रभुकी कृपा पानेके लिये फलकी आशा छोड़कर भगवानके प्रीत्यर्थ जमानेके अनुसार यथाशक्ति अवश्य दान कीजिये, दान कीजिये।"

वसन्तोत्सवका आनन्द लेना हो तो हमें खेती बारी सुधारना चाहिये।

तिलसंक्रातिके बाद वसन्तपञ्चमीका महान उत्सव आता है। इस उत्सवकी कीमत आज कलके जमानेमें लोग ठीक ठीक नहीं समझते, परन्तु प्राचीन कालमें पवित्र ऋषि, महान राजा, पण्डित और शहर तथा गांवके लोग इस उत्सवकी बड़ी महिमा समझते थे और इसको बड़ी आनन्ददायक रीतिसे मनाते थे। क्योंकि वसन्त ऋतुओंका राजा है, वसन्त ऋतु स्वास्थ्यका समय है,-वसन्त समशीतोष्ण ऋतु है अर्थात् इसमें न अधिक सर्दी न अधिक गर्मी और न वर्षाकी अड़चन है। ऐसी अनुकूल ऋतु यह है। इतना ही नहीं, इस ऋतुमें जौ, गेहूं, चावल, रहर, मूंग, आदि नया अन्न लोगोंके घर आने लगता है, इससे खाने पीनेमें लोग बहुत सुखी होते हैं। और इस ऋतुके आरम्भमें ईख तथा कपासकी फसलें तय्यार हो जाती हैं इससे देहाती लोग भी चार पैसेवाले बने रहते हैं। इस कारण वसन्तका उत्सव मनानेमें उनको बड़ी बहार आती है। इसके सिवा वसन्तके उत्सवमें अधिक आनन्द होनेका एक मुख्य कारण यह भी है कि जंगलके अन्दर हर एक वनस्पतिमें सुन्दर और कोमल नये पत्ते लग जाते हैं तथा मीठी सुगन्धवाले फूलोंकी नाजुक कलियां खिलती जाती हैं जिससे वसन्त ऋतुमें जंगलकी अलौकिक शोभा होती है। ऐसे सुशोभित विशाल जंगलोंकी ताजी हवासे तथा सुन्दर दृश्यसे स्वाभाविक तौर पर मनुष्योंमें एक प्रकारकी ताजगी, एक प्रकारकी चमक, एक प्रकारकी मिठास, एक प्रकारका उल्लास और तन्दुरुस्ती तथा आनन्द आ जाता है। इससे

वसन्त ऋतु सब ऋतुओंमें श्रेष्ठ मानी जाती है और दूसरे उत्सवोंसे वसन्तका उत्सव अधिक आनन्द दायक समझा जाता था। परन्तु अब वह बात कहां है? अब तो वसन्त पंचमीके दिन स्कूलोंमें छुट्टी होती है इससे घरमें लड़कोंके ऊधम मचाने तथा धर्म-मन्दिरोंमें रंग उड़नेसे और जौकी भूनी बाल गुड़के साथ सामने आनेसे हम जानते हैं कि आज वसन्तपंचमीका त्योहार है। परन्तु इस त्योहारके स्वाभाविक आनन्दकी स्वाभाविक झलक अपनी जिन्दगीमें आती हुई हमें नहीं दिखाई देती। और अपने त्योहारोंका आनन्द जिन्दगीमें न आनेसे ही हम मुर्दे से बनते जाते हैं निस्तेज होते जाते हैं, ढीले सीले होते जाते हैं, निकम्मे होते जाते हैं और त्योहारोंके दिन जो खास नया आनन्द मिलना चाहिये और खास नया जीवन मिलना चाहिये वह हमें नहीं मिलता इसीसे हम दुर्बल होते जाते हैं। इसलिये ऐसा करना चाहिये कि जिससे हमें अपने त्योहारोंसे नया जीवन मिले। मगर अफसोस है कि त्योहारोंका अर्थ जाने बिना, उनका उद्देश समझे बिना और देशकाल देखे बिना भेड़िया धसान-की तरह हम दस्तूरके कोल्हूमें घूमा करते हैं इसीसे हमें नया जीवन नहीं मिलता और इसीसे हम निकम्मे बने जाते हैं। जैसे, हमारे मन्दिरोंमें वसन्तका उत्सव होता है और घर घर "नवान्न" यानी नया अन्न पहले पहल खाया जाता है तथा उसी दिनसे लड़के और नौजवान फगुआ गाने लगते हैं। इससे क्या हममें नया जीवन आता है? कहिये कि नहीं। क्योंकि वसन्तके उत्सवका सम्बन्ध जंगल तथा खेतीबारीके साथ है और जंगलके विषयमें सरकारी सख्त कानून होनेसे हमारे किसानोंको उससे जो लाभ मिलना चाहिये वह नहीं

मिलने पाता। इससे किसानोंमें जो उत्साह आना चाहिये वह नहीं आ सकता। एक ओर जंगलके बारेमें कड़े कानून और दूसरी ओर जंगलका नाश है, इससे वर्षाकी कमी है और वर्षाकी कमीसे फसलका ठिकाना नहीं। इससे खेतीके काममें गरीबी और भूखमरी है। इस कारण गरीब किसान साधनोंकी कोताहीसे खेतीबारीमें कुछ नया सुधार नहीं कर सकते, वे सैकड़ों वर्षोंकी पुरानी चाल पर खेती किया करते हैं। आज कल वर्षाकी कमी, खादकी कमी, बैलोंकी कमी और जमीनकी तंगी है; फिर फसलमें बरकत क्यों कर हो? तिस पर भी राजाका कर अधिक है और बढ़ता ही जाता है। इसका फल यह है कि हमारी खेतीबारी बिगड़ती आ रही है और गुड़ चीनी जैसी अपने देशकी पुरानी पैदावारकी चीजोंके लिये भी हमें विदेशका मुह ताकना पड़ता है, और हर साल हमें ६ करोड़ रुपयेकी विदेशी चीनी लेनी पड़ती है। खेतीबारीमें उन्नति न होनेसे हम लोग दुर्बल हुए और हमारी शिल्पकलाएं नष्ट हुई। इससे आज कल हम लोगोंको हर साल साठ करोड़ रुपयेका कपड़ा विदेशसे मंगाना पड़ता है। ईख और कपास ये दोनों चीजें वसन्तकी पैदावार हैं और हमारे ही देशकी सबसे पुरानी पैदावार हैं और इन्हीं पैदावारोंसे हम लोग खुशहाल रहते थे। परन्तु इन पैदावारोंका बहुत ह्रास हो गया है और हर साल ६ करोड़ रुपयेकी चीनी तथा ६० करोड़ रुपयेका कपड़ा विदेशसे मंगाना पड़ता है। अब विचार कीजिये कि जहां वसन्तमें उत्पन्न होनेवाली मुख्य चीजोंका यह हाल है वहां वसन्तका उत्सव क्या होगा? इसलिये अगर अपने वसन्तके उत्सवमें नया आनन्द भरना हो और उससे नया जीवन लेना हो तो

पहले ऐसा करना चाहिये कि वसन्त ऋतु अच्छी हो। और वसन्त ऋतुका अच्छा होना मुख्य कर जंगलोंकी बढ़ती तथा खेतीबारीकी उन्नति पर है। इसलिये अपनेमें नया जीवन लानेके हेतु हमें ऐसा करना चाहिये कि जिससे वसन्तका उत्सव उच्च उद्देश और आनन्द-युक्त बने और इसके लिये तन मन धनसे ऐसा उपाय करना चाहिये कि हमारे देशकी खेतीबारी तथा जंगलकी उन्नति हो। ऐसा किये बिना, सिर्फ मन्दिरोंमें पुजारियोंके अबीर गुलाब उड़ाने या जौकी बाल भून कर खानेसे वसन्तका उत्सव सार्थक नहीं हो सकता। इसलिये अब हमें अपने कल्याणके निमित्त अपने त्योहारोंके मूल उद्देश समझ कर उनसे काम लेना सीखना चाहिये। अगर ऐसा करना आवे तो हमें तथा हमारे देशको बहुत बड़ा लाभ पहुँचे। पहले हर एक त्योहारका उद्देश समझिये और फिर उसके अनुसार चलनेकी कोशिश कीजिये।

निमि एकादशीके दिन हम लोग कैसा नियम पालते हैं यह तो जरा देखिये!

आषाढ़में निमि एकादशी होती है। उस दिन कितने ही हरिजन चौमासेके लिये कितने ही तरहके नियम स्वीकार करते हैं। जैसे—कोई एक जून भोजन करनेका नियम करता है; कोई फलाहारका नियम करता है; कोई हर रोज गङ्गा नहानेका नियम करता है; कोई देवताका दर्शन किये बिना भोजन न करनेका नियम रखता है; कोई चौमासेमें एक स्थान पर रहनेका नियम करता है; कोई भोजन करते समय मौन रहनेका नियम करता है; कोई गाड़ी या घोड़े पर न चढ़नेका नियम करता है; कोई खाते समय भगवानका नाम लेनेका

नियम करता है; कोई हर रोज ब्राह्मणको सीधा देनेका नियम करता है; कोई हर रोज ब्राह्मणको लोटा या गगरा देनेका नियम करता है; कोई केलेके पत्ते या पलासकी पत्तलमें जीमनेका नियम करता है; कोई हर रोज गीता या रामायणका एक अध्याय पढ़नेका नियम करता है; कोई हमेशा ठंढे पानीमें नहानेका नियम करता है; कोई चौमासेमें, बैंगन, नेनुआ, भाजी आदि कई तरकारी न खानेका नियम करता है; कोई एक अन्न खाकर रहनेका नियम करता है; कोई अलोना खानेका नियम करता है और कोई कोई शनिवार या सोमवारको उपवास करनेका नियम करते हैं। इस प्रकार तरह तरहके छोटे छोटे व्रत नियम किये जाते हैं और यह सब बहुत करके स्त्रियाँ करती हैं। परन्तु इसका कुछ भी विचार नहीं किया जाता कि ये नियम हमारी प्रकृतिके अनुकूल हैं कि नहीं, इन नियमोंसे हमारे परिवारवालोंको सुभीता होता है कि नहीं, इनसे हमारी तन्दुरुस्ती ठीक रहती है कि नहीं, ये नियम आजकलके देशकालके अनुकूल हो सकते हैं कि नहीं और इन नियमोंसे हमें कुछ लाभ होता है या नहीं! इनमेंसे किसी बातका विचार किये बिना ही सिर्फ दूसरोंकी देखादेखी, पुराने रिवाजके कारण तथा इस विचारसे बहुत सी स्त्रियाँ ऐसे नियम करती हैं कि सब लोग कुछ करते हैं इसलिये हमें भी करना चाहिये। इससे कितनी ही बार बड़ी अड़चनमें पड़ जाती हैं। जैसे, गङ्गा नहानेका नियम किया है परन्तु बरसातका दिन होनेसे प्रायः वर्षा होती है इससे दूर तक भीगते भीगते जाना पड़ता है जिससे बीमारी पैदा हो जाती है। तो भी हठ रखती हैं तो बीमारी बढ़ती जाती है जिससे आगे जाकर और खराबी होती है। फलाहारका

नियम रखा है पर कितनी ही बार कितनी ही जगहोंमें मन माफिक फलाहारकी चीजें नहीं मिलतीं तथा कितनी ही स्त्रियोंके पास खर्चनेके लिये अधिक पैसा नहीं होता; इससे बारंबार न पचने योग्य चीजें आ लेती हैं जिससे कितनी ही स्त्रियाँ अब तब बीमार पड़ जाती हैं। खाने पीनेके लिये अड़चन भरे नियम रखनेसे स्त्रियोंकी तथा उनके दूधमुँहे बच्चोंकी तन्दुरुस्ती बिगड़ती है। इसके सिवा कोई कोई नियम उनकी मा, सास या पतिको पसन्द नहीं होते इससे बारबार घरमें तथा कुटुम्बमें कलह हुआ करता है। तो भी हमारी अज्ञान बहनें इस तरहके छोटे छोटे बाहरी नियमों पर बहुत जोर देती हैं और देशकाल बिना देखे तथा अपनी शक्ति समझे बिना 'नेम' या नियम करती हैं इससे उन नियमोंसे जो लाभ होना चाहिये वह लाभ उनको नहीं होता। इसलिये निर्मि एकादशीके दिन हमारी बहनें जो छोटे छोटे अड़चन भरे नियम करती हैं उनके बदले हमें जमानेके अनुसार सुभीतेके बड़े नियम या प्रतिज्ञा करनी चाहिये। यथा—

आजकल हमारे देशको कैसी प्रतिज्ञाओंकी जरूरत है ?*

"किसीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि मैं अपने देशमें अमुक प्रकारका शिल्प बढ़ाऊँगा और जबतक यह शिल्प न बढ़ा सकूँ तब तक अपना ब्याह नहीं करूँगा। किसीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि मेरे भाई बड़े अज्ञान हैं, उनको शिक्षा देनेमें मैं अपनी जिन्दगी बिताऊँगा। किसीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हमारे देशके लोगों पर विदेशोंमें

* स्वर्गकी जिन्दगीसे।

ज़ुल्म होता है उस ज़ुल्मको मिटानेके उपायमें मैं अपना सब धन खर्चूंगा। किसीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि मैं अपने देशका व्यापार बढ़ानेमें अपना सर्वस्व अर्पण करूँगा। किसीको यह प्रतिज्ञा लेनी चाहिये कि मैं छूआछूतका बन्धन तोड़नेमें अपना जीवन बिताऊँगा। किसीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि मैं अपने देशके लोगोंमें वीरता बढ़ानेके उपाय करनेमें अपनी जिन्दगी अर्पण करूँगा। किसीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि समाजके बुरे रिवाज़ोंको तोड़नेका आरम्भ मैं अपने घरसे करूँगा। किसीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि मैं स्वदेशवासी भाइयोंके विदेश जानेका रास्ता खोलनेमें अपनी जिन्दगी बिताऊँगा। किसीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि विधवा बहनोंकी जिन्दगी सुधारनेमें मैं अपना जीवन अर्पण करूँगा। किसीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि मैं अपने देशके स्वधर्म त्यागे हुए गरीब अज्ञान भाइयोंको फिर अपने धर्ममें लेनेमें अपना धन खर्चूंगा। किसीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि राजा प्रजाका सम्बन्ध और अच्छा करनेके लिये हाकिमोंका ज़ुल्म मिटानेका यथोचित आन्दोलन करनेमें मैं अपनी जिन्दगी बिताऊँगा। किसीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हमारे धर्म पर जो काई जम गयी है और हमारे धर्मके जो हाथ पैर बँध गये हैं, उसको सुधारनेमें और अपने धर्मको उसके असली उदार स्वरूपमें लानेमें मैं अपना सर्वस्व अर्पण करूँगा। किसीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये, कि मैं अपने देशमें नये नये किस्मके फल तथा नये किस्मकी कपास आदि पैदा करनेके लिये गरीब किसानोंका मुफ्त बीज पहुँचानेमें अपना सारा धन लगा दूँगा। किसीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि

अनाथ, निराधार, गरीब और गली गली भटकते हुए बालकोंको सुधारनेमें मैं अपना जीवन अर्पण करूँगा। किसीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि अपने देशमें तथा अपनी भाषामें शिल्प विज्ञानकी पुस्तकें रचवानेमें मैं अपना सारा धन खर्चूंगा। किसीको ऐसी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि गरीबोंके लिये खूब सस्ती पुस्तकें निकालनेमें मैं अपना सारा धन लगाऊँगा। किसीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि मेरी जातिमें विदेश यात्राकी चाल नहीं है परन्तु मैं अपने लड़कोंको नये नये शिल्प विज्ञान सीखनेके लिये विदेश भेजूँगा। किसीको ऐसी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि देशके पशुओंको मरनेसे बचाने तथा उनकी नस्ल बढ़ानेमें मैं अपना जीवन अर्पण करूँगा। किसीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि अकालके समय गरीबोंकी मदद करनेमें मैं अपना सारा धन लगाऊँगा। किसीको ऐसी प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि अपने भाइयोंमें स्वदेशाभिमान जगानेमें मैं अपनी जिन्दगी बिताऊँगा। किसीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हालकी मनुष्य-गणनाके अनुसार हिन्दुस्थानमें जो बावन लाख साधु हैं उनको सुधारनेमें मैं अपना सारा धन खर्चूंगा। किसीको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि हिन्दुस्थानमें छः करोड़ ऐसे आदमी हैं जिनके छूनेसे भी ऊँचे वर्णके लोग अपवित्र हो जाते हैं और वे सब बहुत गरीब तथा अज्ञान हैं, उनको सुधारनेमें मैं अपना सर्वस्व लगा दूँगा। और हमारे देशमें अभी सैकड़े एक भी स्त्री पढ़ी नहीं है इसलिये बहुत लोगोंको यह प्रतिज्ञा करनी चाहिये कि अपने देशमें स्त्रीशिक्षा बढ़ानेमें हम अपना सर्वस्व अर्पण करेंगे; इतना ही नहीं बल्कि जरूरत पड़ने पर देशके कल्याणके लिये हम अपने प्राण देनेको भी

तय्यार हैं। अब हमारे देशको इस किसकी प्रतिज्ञा करनेवाले मनुष्योंकी जरूरत है। अगर हमारे देशवासी ऐसी प्रतिज्ञा करनेको तय्यार हो जायँ, अगर देशवासी स्वार्थत्याग करनेको तय्यार हो जायँ और अगर लोग "देह पातयामि किंवा अर्थं साधयामि" कहकर देशके कल्याणके कामोंमें कमर कसे खड़े रहें तो थोड़े ही समयमें हमारे देशकी दशा पलट जाय। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। अजी! जिस देशमें ऐसी प्रतिज्ञा लिये हुए आदमी हों उस देशमें दुर्बलता कैसे रह सकती है? उस देशमें दरिद्रता कैसे रह सकती है? उस देशमें पराधीनता कैसे रह सकती है? उस देशमें अत्याचार कैसे हो सकता है? उस देशकी प्रजाकी बेइज्जती कैसे हो सकती है? और उस देशमें दुःख कैसे रह सकता है? कभी नहीं रह सकता। मगर अफसोस! ऐसी प्रतिज्ञावाले आदमी कहाँ हैं? और कितने हैं? ऐसी प्रतिज्ञावाले आदमी हों तो हमारे देशकी ऐसी दुर्दशा क्यों हो? और हम लोगोंको ऐसी अधम दशा ही क्यों हो? न हो।"

अब हमें अपने त्योहारोंके मूल उद्देश समझकर निमि एकादशीके दिन ऊपर लिखे अनुसार नियम या प्रतिज्ञा करनी चाहिये। अगर ऐसे नियम करें तो थोड़े ही समयमें हमारी तथा हमारे देशकी उन्नति हो सके; इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इसलिये प्रार्थना कीजिये कि हे परम दयालु पिता परमात्मा! इस किसकी प्रतिज्ञा करनेकी हमें सद्बुद्धि दे और ऐसी प्रतिज्ञा पालनेका बल दे। बल दे।

देशसेवक तय्यार करनेका त्योहार।

इसके बाद सलोनोका, रक्षाबन्धनका त्योहार आता है।

उस दिन ब्राह्मण नया जनेऊ पहनते हैं और दूसरोंके हाथमें राखी बांधते हैं। बम्बई प्रान्तमें उस दिन समुद्रके किनारेवाले हिन्दू समुद्रकी पूजा करते हैं। हिन्दुओंके मुख्य चार वर्णोंके लिये जो मुख्य चार त्योहार हैं उनमें सलोनोका नम्बर पहला है क्योंकि यह ब्राह्मणोंका त्योहार कहलाता है। इससे यह त्योहार बहुत बड़ा है और इसमें बहुत कुछ रहस्य है मगर अफसोस है कि आज कल सिर्फ पुराना जनेऊ निकाल कर नया पहनने और दूसरोंके हाथमें राखी बांधकर पैसे दो पैसे दक्षिणा मांगनेमें ही उसकी समाप्ति हो जाती है। प्राचीन ऋषियोंके समय सलोनो ब्राह्मणोंके ब्रह्मकर्मकी परीक्षा लेनेका दिन था। जो ब्राह्मण इस परीक्षामें पास होते थे उनको जनेऊ दिया जाता था और जो ब्राह्मण ब्रह्मकर्मकी परीक्षामें फेल होते थे उनका जनेऊ उतरवा लिया जाता था। जैसा कि आज जनेऊ सूतका धागा समझा जाता है और सिर्फ चाभी बाँधनेके काम आता है जैसा पहले नहीं था। बल्कि आजकल यूनीवर्सिटीकी बी० ए० एम० ए० की डिग्रीकी जितनी कीमत है उससे अधिक कीमत उस समय जनेऊकी डिग्री की थी। आज, जनेऊका उद्देश कोई नहीं समझता इससे जनेऊकी कुछ कीमत नहीं है; परन्तु उस समय इस दुनियामें सफलता पाने तथा परलोकके रास्तेमें आगे बढ़नेके दोनों काम जनेऊकी सहायतासे होते थे। आज जैसे यूनीवर्सिटीकी बी० ए० एम० ए० की डिग्रीवालेको तुरत नौकरी चाकरी मिल जाती है और अपसमाजमें उसकी कदर होती है वैसे उस समय जनेऊवालोंको, खास कर ब्राह्मणोंको बहुत आसानीसे गुजारेके साधन मिल जाते थे और लोगोंमें उनकी बहुत प्रतिष्ठा भी थी। इसके सिवा जैसे आनरेरी मजिस्ट्रेटकी सरकारमें

इज्जत होती है वैसे ही उस समय राज्यमें अनेऊवालोंका मान था। अर्थात् राज्यकी कृपा, लोगोंमें प्रतिष्ठा और गुजारेका सुबीता होनेसे उनका दुनियादारीका व्यवहार अच्छा था और ज्ञान प्राप्त करने तथा धर्मके काम करनेमें ही उनकी जिन्दगीका अधिक भाग बीतता था इससे उनका परलोक भी सुधरता था। क्योंकि अनेऊकी डिग्री और ब्राह्मणकी पदवी खास करके धर्ममें जीवन बिताने तथा ज्ञान प्राप्त करनेके लिये ही दी जाती थी। इसके सिवा उस समय यह कुछ नियम नहीं था कि जो ब्राह्मणके कुलमें जन्मे उसीको यह पदवी मिले; बल्कि उस समय तो यह रीति थी कि ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यमें जो योग्य हो और ब्राह्मण होना चाहे, अर्थात् शान्तिसे जीवन बितानेकी इच्छा रखे, इन्द्रियोंका निग्रह करे, ज्ञान प्राप्त करनेमें ही अधिक प्रेम रखे, अपना निजका स्वार्थ छोड़कर जगतकी सेवा करनेका काम स्वीकार करे और ईश्वर पर पूरी श्रद्धा रखकर उसे पहचाननेके लिये जी तोड़ परिश्रम करे उसको उसकी योग्यता देखनेके बाद ब्राह्मण समाजकी ओरसे सलोनोके दिन ऋषियों तथा गांवके मुखियोंके सामने ब्राह्मणकी पदवी दी जाती थी और आजकल जैसे यूनीवर्सिटीकी डिग्रियोंकी कागज पर लिखी हुई सनद दी जाती है वैसे उस समय ब्राह्मणकी पदवीकी सनदके तौर पर अनेऊ दिया जाता था। इससे उस समय सलोनोंका दिन बड़े महत्वका समझा जाता था। आजकलकी हमारी यूनीवर्सिटियां तथा सरकार जैसे अयोग्य आदमियोंसे अपनी दी हुई सनद छीन लेती हैं और उनकी पदवी रद्द कर देती हैं वैसे उस समय ब्राह्मणका कर्म करनेमें जो अयोग्य होता उस मनुष्यसे ब्राह्मणकी पदवी तथा उस पदवीका चिन्ह अनेऊ वापस

-के लिया जाता था और, थोड़ा दोष होता तो देहशुद्धिका प्रायश्चित्त कराके फिरसे जनेऊ दिया जाता था। इससे धर्ममें तथा देशसेवाके काममें गड़बड़ नहीं होने पाती थी। इसके सिवा उस पवित्र दिनको दूसरे हजारों आदमी नये ब्राह्मण बनते थे अर्थात् उस दिन हजारों नौजवान देश तथा धर्मकी सेवाका बीड़ा उठाते थे। इससे प्राचीन कालमें सलोनोंका त्योहार बड़े ही महत्वका समझा जाता था। परन्तु आज उसमें क्या रह गया है? आज तो ब्राह्मण भिखमंगे समझे जाते हैं; आज ब्राह्मण इस देश पर बोझ समान समझे जाते हैं; आज ब्राह्मण देशको पीछे धकेलनेवाले समझे जाते हैं; आज ब्राह्मण रिवाजोंके गुलाम, बहमके पुतले, अभिमानके अवतार और संकीर्ण हृदयके नमूने माने जाते हैं और आज दिन पुराने विचारके ब्राह्मण हालके शिक्षितोंकी निगाहमें 'पीर, बबर्ची, भिश्ती, खर' हैं। और सच पूछिये तो बहुत कुछ है भी ऐसा ही। ऐसे ही छोटे कामोंमें ब्राह्मणोंका बड़ा भाग पड़ा हुआ है; इससे वे दुर्दशामें हैं। दूसरी जातिवाले कितने ही तरहके रोजगार धंधे कर सकते हैं और चाहे जिस देशमें जा सकते हैं, इससे उनको उचित सुबीता हो जाता है जिससे वे सुखी रहते हैं। परन्तु धर्म चले जानेके डरसे, छूआछूतकी अड़चलसे और धार्मिक तथा सामाजिक संकीर्ण विचारोंके मारे ब्राह्मण किसीके हाथका पानी नहीं पीते; इससे उपाय रहने पर भी वे हैरान हुआ करते हैं और किसी रोजगारमें उनको अच्छी सफलता नहीं होती। इसका परिणाम यह है, कि वे बहुत गरीब बनते जाते हैं। उनकी गरीबी कहाँ तक बढ़ गयी है इसके लिये यह एक दृष्टान्त बस होगा कि एक अधिक बड़े राजाके यहाँ सहायता माँगनेके लिये जितनी

अर्जियां आती हैं उनमें सैकड़े पीछे नव्वे अर्जियाँ सिर्फ ब्राह्मणोंकी होती हैं और बाकी दस अर्जियाँ देशकी और सब जातियोंकी होती हैं। आजकल ब्राह्मणोंकी यह दशा है। अब विचार कीजिये कि जब ब्राह्मणकी पदवी देने तथा नये ब्राह्मण बनानेके लिये ही खास कर सलोनोका पवित्र त्योहार है और तिस पर भी उन पदवीधारियोंका ही ऐसा बुरा हाल है तब वह त्योहार हमें नया जीवन क्यों कर दे सकता है? ऐसी दशामें यह त्योहार हमारा व्यवहार कैसे सुधार सकता है? और ऐसी दशामें यह त्योहार हमारी आत्माकी उन्नति कैसे कर सकता है? नहीं कर सकता। क्योंकि पुराने रिवाजके अनुसार सिर्फ सूतका धागा अपने गलेमें डाल लेनेसे यह सब नहीं हो जाता; बल्कि जनेऊके योग्य जो ज्ञान प्राप्त करना आवश्यक है और जो सेवा आवश्यक है वह कर्तव्य पूरा करना आवे और दूसरे सद्गृहस्थ विश्वास करके ऐसा सार्टीफिकेट दें और इसके बाद भी उस सार्टीफिकेटका सदा सदुपयोग हो तभी ऊपर कहा लाभ होता है। ऐसा किये बिना इतना बड़ा लाभ नहीं होने का। आजकल तो जनेऊ बदलनेका त्योहार एक तमाशा सा हो गया है। क्योंकि बिना योग्यताके, बिना परीक्षा दिये, बिना ब्रह्मकर्म जाने और बिना किसी प्रतिष्ठित समाजके प्रमाणपत्रके आपसे आप जनेऊ पहन लिया जाता है। ऐसे जनेऊकी क्या कीमत हो सकती है? जैसे कोई आदमी वकालत या डाक्टरीकी परीक्षा पास किये बिना ही, उसका अध्ययन किये बिना ही, यूनीवर्सिटी जैसी किसी संस्थाके पास गये बिना ही अपने हाथ वकील या डाक्टरकी सनद लिख ले तो कौन मानेगा? और उस वकील या डाक्टरसे क्या काम सरेगा? कुछ नहीं।

उल्टे उसकी मिट्टीपलीद होगी। वैसे ही योग्यता बिना, ब्रह्म-कर्म सीखे बिना, विद्वानोंकी परीक्षामें पास हुए बिना और देशके नेताओंका प्रमाणपत्र प्राप्त किये बिना जो आपसे आप ब्राह्मण बन जाय उसकी क्या कीमत होगी? ऐसोंकी कीमत नाम भरकी हो और ऐसे लेभागू ब्राह्मण "पीर, बवर्ची भिश्ती खर"की गिनतीमें समझे जायं तो कुछ आश्चर्य नहीं है। जरा विचारिये कि जो त्योहार ब्राह्मण अर्थात् विद्वान बनानेके लिये है, जो त्योहार ब्राह्मण अर्थात् धर्मके स्तम्भ बनानेके लिये है. जो त्योहार ब्राह्मण अर्थात् परमार्थमें जीवन बिताने योग्य मनुष्य बनानेके लिये है; जो त्योहार ब्राह्मण अर्थात् प्रकृतिके गुप्त भेदोंकी चाभी ढूंढ़नेवाले तय्यार करनेके लिये है; जो त्योहार ब्राह्मण अर्थात् अपने देशके लिये स्वार्थत्याग करनेवाले सज्जन तय्यार करनेके लिये है; जो त्योहार ब्राह्मण अर्थात् इस जगतमें ईश्वरी स्नेह फैलानेवाले दयाके देवता उत्पन्न करनेके लिये है और जो त्योहार ब्राह्मण अर्थात् देशकी, धर्मकी तथा आत्माकी उन्नति करनेको देश सेवक—वालंटियर बनानेके लिये है वह त्योहार अगर अपने गलेमें आप सूतके तीन तागे पहन लेनेमें समाप्त हो जाय तो क्या यह अफसोस-की बात नहीं है? भाइयो! हम अपने त्योहारोंका रहस्य नहीं समझते और न उसके अनुसार चलते; इसीसे हमारी बुरी दशा हुई है। त्योहार बिजली भरनेकी बैटरियां हैं। जब उनमें बिजली हो तो उनसे हमारी जिन्दगीके तारको बिजली मिले। जब वे बैटरियां ही खाली होंगी और उन्हींमें कुछ न होगा तो फिर बिजली हमें कहांसे मिलेगी? नहीं मिलेगी। हमारे त्यो-हारोंकी ऐसी ही दयाजनक दशा है। तब हमको उनसे लाभ क्यों कर हो? नहीं होगा। और अगर ऐसा ही चलता रहा

तो फिर इसका परिणाम क्या है? इसका परिणाम यही है कि ऐसे निकम्मे बन गये हुए त्योहारोंका आपसे आप नाश हो जायगा। तब अन्तमें यह होगा कि पुराने जमानेमें महात्मा बुद्धके प्रतापसे हमारा जो जनेऊ नहीं उतरा, बिचले समयमें मुसलमानोंके जुल्मसे हमारा जो जनेऊ नहीं उतरा और आज कलके जमानेमें कृस्तानोंके उपदेशसे हमारा जो जनेऊ नहीं उतरा उस जनेऊको कुछ वर्षोंमें हमारी अश्रद्धा तोड़ डालेगी। ऐसा न होने देनेके लिये हमें अपने त्योहारोंका रहस्य समझ कर उसके अनुसार चलनेकी कोशिश करनी चाहिये। पुरानी रीतिके अनुसार योग्य मनुष्योंको ऊंचे उद्देश सहित पवित्र ब्राह्मण बनाना चाहिये। आज कलकी रीतिके अनुसार इसका यह अर्थ कर सकते हैं कि देशके कल्याणके लिये परमार्थमें ही जीवन बितानेवाले विद्वान देशसेवक बनाना चाहिये और ऐसे परमार्थी विद्वान देशसेवक बनानेमें ही सलोनों जैसे पवित्र त्योहारका उपयोग होना चाहिये। अगर जमानेके अनुसार इस तरहकी कुछ बात होगी तभी हमारी प्राचीन रीतियां थोड़ी बहुत टिक सकेंगी। नहीं तो इन सबसे अन्तिम राम राम ही करनी पड़ेगी और वह अपने ही कसूरसे यह ध्रुव समझना।

समुद्रकी सच्ची पूजा कैसे होती है?

सलोनोके दिन, श्रावणी पूर्णिमाके दिन—रक्षा बन्धनके दिन बम्बईकी तरफ समुद्रकी पूजा करनेका रिवाज है। वैशाख, जेठ, आषाढ़ और श्रावणके महीनोंमें समुद्रमें बड़ा तूफान रहता है इससे पालकी मददसे चलनेवाली छोटी छोटी नावें नहीं निबह सकतीं। परन्तु श्रावणकी पूर्णिमासे

नये सिरेसे नावोंकी गति शुरू होती है इससे बन्दरगाहवाले शहरोंमें उस दिन समुद्रकी पूजा करनेका रिवाज है। आजकल पूजा करनेके लिये लोग समुद्र किनारे आते हैं और वहाँ धूप दीपसे समुद्रकी आरती उतार कर उसमें नारियल या सुपारी फेंकते हैं तथा जरा दूध या दो चार फूल समुद्रमें डालते हैं। यह समुद्रकी पूजा कहलाती है। अब विचार कीजिये कि आजके सुधरे हुए जमानेमें ऐसी जंगली पूजासे क्या समुद्र सचमुच प्रसन्न होगा? जब कि जगतमें बहुत ज्ञान बढ़ा हुआ है तब क्या इस किस्मकी पुरानी पूजासे समुद्र प्रसन्न होगा? और जब कि मनुष्य पूजाके उद्देश तथा पूजाका स्वरूप समझने लगे हैं तब क्या ऐसी सड़ी पूजासे समुद्रदेवको सन्तोष होगा? कहिये कि नहीं। क्योंकि अब हम लोगोंका ज्ञान बढ़ता जाता है और ज्यों ज्यों हम लोगोंका ज्ञान बढ़ता जाता है त्यों त्यों हम लोगोंका कर्तव्य बढ़ता जाता है। इसके सिवा हमारे ज्ञानके अनुसार देवता हमसे आशा रखते हैं। इसलिये ज्यों ज्यों अपना ज्ञान बढ़े, ज्यों ज्यों अपने आस पासके साधन बढ़ें और ज्यों ज्यों अनुकूलता बढ़े त्यों त्यों अपनी पूजाकी विधिमें भी फेर बदल करना चाहिये। क्योंकि जिस रीतिसे जंगली लोग देवताकी पूजा करते हैं उस रीतिसे ज्ञानी जन देवताकी पूजा नहीं करते। और पहले समयमें जिस रीतिसे देवताकी पूजा होती थी उसी रीतिसे आजकलके जमानेमें नहीं हो सकती। तिस पर भी अगर हम उसी तरह किया करें तो हमसे देवता नहीं प्रसन्न होनेको। देवता हमारी पूजाके सामने नहीं बल्कि हमारी योग्यताके सामने देखते हैं, हमारे अधिकारके सामने देखते हैं, हमारे ज्ञानके सामने देखते हैं और देशकालके सामने देखते हैं। क्योंकि

देवता दिव्य, दृष्टिवाले हैं। इससे यह सब देख लेने पर जब उन्हें उचित जँचता है तभी वे हमारी पूजा लेते हैं और उसका बड़ा फल देते हैं। अगर इन सब बातोंको जाचने पर हमारी पूजामें पोल दिखाई दे तो वह पूजा मंजूर नहीं होती और उसका कुछ फल नहीं मिलता। बल्कि देवताके बड़प्पनके अनुसार और अपनी शक्तिके अनुसार पूजा न हो,तो देवता उल्टे नाराज होते हैं और इससे हमारी और खराबी होती है। ऐसा न होने देनेके लिये अनुभवी विद्वान कहते हैं कि अब हमें अपने देवताओंकी पूजा बहुत अच्छे ढङ्गसे करनी चाहिये। समुद्रकी पूजा बहुत अच्छे ढङ्गसे कैसे हो सकती है? इसके लिये जगतको-आगे बढ़ानेवाले ज्ञानी कहते हैं कि समुद्रकी महिमा बढ़ाना अर्थात् समुद्रके भीतरसे रत्न निकालना समुद्रकी सेवा है। अब तक छिपे पड़े हुए, काममें न आनेसे निकम्मे बने हुए दूरके टापुओंके पासके समुद्रसे लाभ लेना और दूसरोंको देना समुद्रकी सेवा है। समुद्रमें अनेक प्रकारके क्षार हैं,उन सबको काममें लाकर समुद्रका मोल बढ़ानेका नाम समुद्रकी पूजा है। सूर्यकी गर्मीसे कुदरती तौर पर समुद्रमें कितने ही तरहकी गैसें उत्पन्न होती हैं, उन सब गैसोंको काममें लाकर समुद्रकी इज्जत बढ़ानेका नाम समुद्रकी सेवा है। समुद्रमें अटूट बिजली भरी हुई है; उस बिजलीको सहज रीतिसे निकाल कर उसके उपयोगसे जगतकी समृद्धि बढ़ानेका नाम समुद्रकी सेवा है। ऐसा सुबीताकर देनेका नाम समुद्रकी सेवा है कि जो लोग समुद्रसे उचित लाभ नहीं उठाते वे अधिक लाभ उठावें। समुद्रके ज्वारभाटेके बलसे नये नये ढङ्गकी कलें चलाने और बलसे जगतके जीवोंका सुख बढ़ानेका नाम समुद्रकी सेवा है। समुद्रमें पैदा होनेवाली अनेक

प्रकारकी औषधियोंको काममें लाकर बीमार आदमियोंको उनसे आराम करनेका नाम समुद्रकी सेवा है। समुद्रके किनारे सीप, घोंघा, शंख, फेन, रेती आदि समुद्रकी बनायी हुई अनेक प्रकारकी चीजें होती हैं; उन सब चीजोंसे भली भाँति काम लेकर समुद्रका अधिक अधिक लाभ लोगोंको समझाने और देनेका नाम समुद्रकी सेवा है। समुद्रमें अनेक प्रकारके छोटे बड़े जीव जन्तु हैं और उन सबमें अलग अलग गुण होते हैं; जैसे—किसीसे तेल निकलता है, किसीकी हड्डीसे तरह तरहकी चीजें बनती हैं, किसीका चमड़ा उपयोगी होता है, किसीके दाँत कीमती होते हैं, किसीकी पूँछ कामकी होती है और किसीका खाद बनता है। इस प्रकार आजतक निकम्मी बनी हुई और व्यर्थ सड़ जानेवाली चीजोंसे काम लेकर जगत्‌का सौन्दर्य बढ़ाने और उन निकम्मी बनी हुई चीजोंको कीमती बनानेका नाम समुद्रकी सेवा है। कभी कभी समुद्रमें बड़ा भारी तूफान आता है इससे जानोमालकी बड़ी खराबी होती है जिससे समुद्रसे लोग डरते हैं और समुद्रकी इज्जतकी जाती है; इसलिये ऐसे तूफान आनेसे रोकनेके उपाय निकाल कर समुद्रकी कीर्त्ति बढ़ानेका नाम समुद्रकी सेवा है। नाव या जहाजमें चढ़नेवाले कितने ही आदमियोंको समुद्र लगता है जिससे उनको कय होती है और बेचैन रहते हैं; इस कारण लाखों आदमी समुद्रसे लाभ उठानेसे हिचकते हैं; ऐसा उपाय करना जिससे समुद्र न लगे, समुद्रकी सेवा है। जैसे जमीन पर पैदल चल सकते हैं वैसे समुद्र पर पैदल चलनेकी युक्ति निकालनेका नाम समुद्रकी सेवा है। कम खर्चमें तेजीसे चलने लायक और तूफानमें भी सहीसलामत रहने लायक फैशनके बोट बनानेका नाम समुद्रकी सेवा है, और

जगतका सुख बढ़ानेमें भिन्न भिन्न युक्तियोंसे मुफ्त मिलनेवाले समुद्रके अपार पानीसे काम लेनेका नाम समुद्रकी सेवा है। सारांश यह कि जगतकी उन्नतिके काममें जैसे बने वैसे समुद्रसे अधिक अधिक लाभ लेने और समुद्रकी कीमत तथा महिमा बढ़ानेका नाम समुद्रकी सेवा है और ऐसी सेवासे ही समुद्र प्रसन्न होता है। इसलिये अगर ठीक ठीक समुद्रको प्रसन्न करना हो तो उसकी सेवा ऊपर लिखे अनुसार करनी चाहिये। इसके बदले आजकल हम समुद्र या नदीमें थोड़ा अक्षत और पैसा डालने अथवा नारियल या फूल फल फेंकनेको ही समुद्र की सेवा समझते हैं। ऐसी सेवा वा पूजासे समुद्र या नदी कैसे प्रसन्न होगी और इससे क्या काम सिद्ध होगा यह विचारना कुछ कठिन नहीं है। भाइयो! अगर आपको सच्चा लाभ लेना हो तो अब ऐसी थोथी बातोंमें मत पड़े रहिये; बल्कि त्योहारोंका रहस्य समझकर सब विषयोंमें ऐसी उत्तम रीतिसे देवताओंकी पूजा करना सीखिये। उत्तम रीतिसे देवताओंकी पूजा करना सीखिये।

बन्धुओ! इस प्रकार अपने हर एक त्योहारका अर्थ समझकर और रहस्य समझकर उसका उत्तम रीतिसे उपयोग करना ही हमारा कर्तव्य है और इसीसे देवता प्रसन्न होते हैं। इसलिये अब हमें ऐसी उत्तम रीतिकी पूजा करना सीखना चाहिये और ऐसी उत्तम प्रकारकी पूजा करनेकी सामर्थ्य पानेके लिये सर्वशक्तिमान महान ईश्वरसे प्रार्थना करना चाहिये कि हे प्रभु! हममें ऐसी उत्तम रीतिसे अपने त्योहार मनानेकी प्रेरणा कर और ऐसा बल दे। इस प्रकार जो मनुष्य अपनी जिन्दगीके बड़े बड़े काम बहुत सोच विचार कर करते हैं उनको पीछे यह ख्याल होता है कि

अब हमें अपने हर रोजके कामोंको भी बहुत सोच विचार कर करना चाहिये। ऐसा ख्याल होनेके साथ उनका पहला ध्यान खानेपीने पर जाता है; क्योंकि यह हमारी जिन्दगीमें हर रोजका मुख्य और आवश्यक विषय है। इसलिये ग्यारहवीं पैड़ीमें खानेपीनेके नियमों पर कहा जायगा।

ग्यारहवीं पैड़ी।

खानेपीनेके नियम।

—:※:—

जिन्दगी सुधारनेके लिये अपनी हर रोजकी भूलें जाननी चाहियें।

दसवीं पैड़ीमें कहे अनुसार जो लोग त्योहारोंका रहस्य समझते हैं, उस रहस्यके अनुसार चलते हैं और उससे आनन्ददायक ऊँचा अनुभव करते हैं उनके जीमें धीरे धीरे यह ख्याल उठता है कि महीने दो महीने पर त्योहारके कारण एकाध दिन अच्छे बननेसे क्या होना जाना है? इससे जिन्दगी नहीं सुधरनेकी। इतनी ही अच्छाईसे भगवान नहीं मिल जानेके और महीने दो महीनेमें एकाध दिन विशेष प्रसङ्गके कारण कुछ देर अच्छे बननेसे आत्माका कल्याण नहीं होने का। इसलिये अब हमें अपना हर रोजका जीवन सुधारना चाहिये, ऐसा करना चाहिये कि हमारा हर रोजका जीवन उच्च श्रेणीकी रहन-सहनका हो; ऐसा करना चाहिये कि हमारा हर रोजका जीवन अधिक ज्ञान और भक्तियुक्त हो; ऐसा होना चाहिये कि हमारा हर रोजका जीवन हमारी आत्माको सन्तोष दे और अपना हर रोजका जीवन ईश्वरकी सेवामें तथा उसके बालकोंकी सेवा करनेमें बिताना चाहिये। सिर्फ त्योहारको जरा-मरा अच्छे बननेसे हम संसार-सागर नहीं
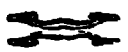
तर सकते। अपने हर रोजके पवित्र जीवनसे ही तरेंगे। इसलिये अपना हर रोजका जीवन पवित्र ऊँचे उद्देशयुक्त तथा प्रभुके पसन्द योग्य बनाना चाहिये। अब हमें यह जानना चाहिये कि हमसे अपनी रोज रोजकी जिन्दगीमें कहाँ कहाँ भूल होती है। भूल जान लेनेसे उसके सुधारनेका उपाय कर सकते हैं।

हमारी जिन्दगी खानेपीनेके लिये ही नहीं है, सेवा करनेके लिये है।

प्रभुके कृपापात्र जिन हरिजनोंका ऊपर लिखे अनुसार ख्याल होता है वे हरिजन अपनी हर रोजकी जिन्दगीकी भूलें ढूँढ़ने लगते हैं। उस समय उन्हें पहली बड़ी भूल अपने खान-पानमें दिखाई देती है। क्योंकि खानपान हर एक आदमीका हर रोजका काम है। इसके सिवा भोजन बनानेमें बहुत समय जाता है, बहुत पैसा लगता है और अधिकतर हाय हाय पेटकी खातिर तथा जीभके स्वादके लिये ही करनी पड़ती है। यह बात विचार करनेवाले मनुष्योंकी समझमें भली भाँति आ जाती है; इससे वे अपनी हर रोजकी जिन्दगी सुधारनेके लिये पहले हर रोजकी खुराक पर ध्यान देते हैं। उस समय प्रभुकी कृपासे उन्हें जान पड़ता है कि हमारी जिन्दगी कुछ खाने पीनेके लिये ही नहीं है; बल्कि परम कृपालु परमात्माकी सेवा करनेके लिये है और खानपान सिर्फ जिन्दगीको बनाये रखनेके लिये आवश्यक है।

आत्माको खाने पीनेकी जरूरत नहीं है।

ऐसा कह देना ही यथेष्ट नहीं है कि खानेपीनेके लिये ही जिन्दगी नहीं है बल्कि जिन्दगीको बनाये रखनेके लिये खाने

पीनेकी जरूरत है। क्योंकि संक्षेपमें ऐसा कह देनेसे साधारण समझवाले व्यवहारी आदमियोंके मनका समाधान नहीं हो सकता, उनको कुछ खुलासा करके समझाना चाहिये। इस-लिये आगे बढ़े हुए ज्ञानी महात्मा कहते हैं कि आत्माको कुछ खानेपीनेकी जरूरत नहीं है, वह बिना खाये पिये अनन्त काल तक अमर रह सकती है। याद रहे कि हमारी जिन्दगी आत्मासे ही है, कुछ अकेली देहसे नहीं है। इससे यह बात खूब अच्छी तरह समझमें आ सकती है कि खानपान देहका धर्म्म है, इन्द्रियोंका धर्म्म है, मनका धर्म्म है, वासनाओंका धर्म्म है और इर्दगिर्दके संयोगका धर्म्म है; परन्तु आत्माका धर्म्म नहीं है। इसके सिवा आत्मामें इतना अधिक बल है कि अगर उसको खिलने दें तो वह मन पर, बुद्धि पर, इन्द्रियों पर, शरीर पर, संस्कारों पर और जगतकी और सब स्थूल तथा सूक्ष्म वस्तुओं पर अधिकार जमा सकती है। फिर वह निर्लेप है, निराकार है, सूक्ष्मसे सूक्ष्म है और ऐसी है कि आगमें न जले, पानीमें न भीगे, पवनसे न सूखे और हथियारसे न कटे। तात्पर्य यह कि जगतकी कोई चीज आत्माको दुःख नहीं दे सकती और न उसका नाश कर सकती है। तब भूख प्यास जैसे साधारण विषय आत्माको कैसे हैरान कर सकते हैं? और ऐसी स्थूल वस्तुओंकी आत्माको क्या जरूरत हो सकती है? याद रहे कि आत्माको खानेपीनेकी कुछ भी परवा नहीं है। इसीसे ज्ञानी लोग कहते हैं कि खानेपीनेके लिये ही हमारी जिन्दगी नहीं है, बल्कि इस स्थूल शरीरको बनाये रखनेके लिये ही खानेपीनेकी जरूरत है। इससे खान पानके विषय पर महात्मा लोग जहाँ तक बनता है बहुत थोड़ा जोर देते हैं और इसीसे पहलेके पवित्र ऋषि मुनि पानी और

अन्न जैसी बहुत जरूरी चीजोंका ही उपयोग करते थे और सो भी बहुत नियमित रूपसे, बहुत हदमें रहकर तथा बहुत मिताहारपन से। वे लोग स्पष्ट रीतिसे यह समझते तथा अनुभव करते थे कि हमारी जिन्दगी खानेपीनेके लिये ही नहीं है, बल्कि स्थूल शरीरको टिकाये रखनेके लिये ही खान पानकी जरूरत है। यह विचार उनके मनमें बहुत मजबूतीसे बैठ गया था—उनके जीवनमें उतर गया था इससे वे खाने पीनेके बारेमें बहुत अंकुश रख सकते थे और इसीसे वे बड़ा ऊँचा जीवन बिताते थे। खाने पीनेकी वृत्ति उनके वशमें आ गयी थी, इससे खानेपीनेके शौकके मारे जगतमें जो जो झंझट उठाने पड़ते हैं उनसे वे बचे हुए थे। इससे खानेमें जो मिहनत, जो समय और जो खर्च लगता है तथा जो हाय हाय होती है उन सबसे वे बच जाते थे। और उस बचे हुए समय, पैसे और मिहनतको अपनी जिन्दगी सुधारनेमें लगाते थे। इससे वे प्रभुके प्यारे हो सकते थे तथा मोक्ष मार्गके अलौकिक सुख भोग सकते थे। इन सबका मूल कारण यही समझ थी कि खानेपीनेके लिये ही जिन्दगी नहीं है बल्कि जीवनके लिये खानपान है।

अपने शरीरको जिस स्थितिमें रखना चाहें उस स्थितिमें वह रह सकता है।

ऊपर कहा है कि आत्माको खाने पीनेकी जरूरत नहीं है। यह बात इतनी सच और सादी है कि धर्मका कुछ भी रहस्य जानने वाले मनुष्यको भी इसमें कुछ शंका नहीं हो सकती। कितने ही महात्मा तो इससे आगे बढ़कर यह भी कहते हैं कि इस स्थूल देहको भी खुराककी जरूरत नहीं है, वह भी बिना

खाये पिये टिक सकती है। और सो भी दस पाँच दिन या महीने दो महीने ही नहीं वल्कि हमारी देह ऐसी है कि सैकड़ों वर्ष तक बिना खाये पिये रह सकती है। प्रभुकी यही प्रभुता है तथा उसकी दया है कि उसने हमारे शरीरका गठन ऐसा किया है कि हम उसको जिस स्थितिमें रखना चाहें वह उस स्थितिमें रह सकता है। यह बात सुनकर बहुत आदमियोंको बड़ा अचम्भा होगा कि यह तुम क्या कहते हो? क्या यह सम्भव है कि बिना खाये पिये आदमी सैकड़ों वर्ष जी सके? यह बात मान भी ली जा सकती है कि आत्माको खुराककी जरूरत नहीं है पर यह बात कैसे मानी जाय कि देहको खुराककी जरूरत नहीं है? ऐसा प्रश्न स्वभावतः बहुतेरे मनुष्योंके मनमें उठेगा। इसके उत्तरमें यह जानना चाहिये कि—

भूखप्यास कहांसे पैदा होती है?

महात्मा पतंजलि भगवानने योगशास्त्रमें यह कहा है कि गलेमें कंठकूप नामका एक स्थान है। उस जगहसे भूख प्यास पैदा होती है। इसलिये खेचरी मुद्रा करना अर्थात् जीभको छेदन* तथा दोहनसे लम्बा करके कंठकूप तक पहुँचाना आवे और वहाँ इसे लगाये रखना आवे तो भूखप्यास नहीं लगती।

इसके सिवा भूखप्यास न लगने देनेका दूसरा उपाय

* जीभके नीचे तो चमड़ा लगा है उसको महीन औजारसे वारवार रेतते हैं। इसका नाम छेदन है। और जैसे गायके थनसे दूध दुहा जाता है वैसे दोनों हाथोंसे जीभको धीरे धीरे खींचकर लम्बी बनाते हैं; इसको दोहन कहते हैं। इस विषयका विशेष विवरण योगशास्त्रकी पुस्तकोंमें मिलेगा।

भी है। भूखप्यासका सम्बन्ध प्राणवायुसे है; इससे जिसकी प्राणवायु अधिक चलती है उसको अधिक भूखप्यास लगती है और जिसकी प्राणवायु कम चलती है अथवा जिसे प्राणवायुका रोकना आता है उसको भूखप्यास कम लगती है। जैसे, जो आदमी बहुत मिहनत करता है उसकी सांस अधिक चलती है, इससे उसको भूखप्यास अधिक लगती है। जो आदमी कसरत करता है, पहाड़ पर चढ़ता है, बहुत विषय भोगता है और बहुत उपद्रव मचाता है उसकी सांस अधिक चलती है; इससे उसको अधिक खाना पीना पड़ता है। इसके सिवा ज्वर आदि कई किसके रोगोंमें अधिक सांस चलती है तथा शरीरमें गर्मी बढ़ जाती है इससे बीमार आदमीको बार बार प्यास लगती है। इस प्रकार प्राणतत्त्व अधिक खर्च होनेसे भूखप्यास अधिक लगती है। और जिसका प्राणतत्त्व कम खर्च होता है उसको भूखप्यास कम लगती है। जैसे जो अमीर किसी तरहकी मिहनत नहीं करते और गद्दी तकिया लगाकर पड़े रहते हैं उनकी सांस कामकाजी आदमीकी अपेक्षा कम चलती है, इससे उनको कम भूख लगती है। इसके सिवा जो हरिजन या साधु संत शान्तिमें जीवन बिताते हैं और भजनमें अपना अधिक समय लगाये रहते हैं उन भाग्यशालियोंको बहुत कम भूख लगती है। क्योंकि भूखका सम्बन्ध प्राणतत्त्वसे है इससे जिसको अपनी प्राणवायु रोकना आता है उसको भूख प्यास कम लगती है। ऐसा नियम होनेसे ही पहलेके बहुतेरे महात्मा भूख प्यासको अपने वशमें रख सकते थे जिससे वे प्राणायाम करनेमें, ध्यानकी दशामें और समाधिके आनन्दमें अपना बहुत समय लगाते थे। इससे उनको भूखप्यास बहुत कम लगती थी।

अगर हमें भी भूख प्यासके दुःखसे बचना हो तो प्राचीन ऋषियोंके अनुभवसिद्ध इन उत्तम प्राकृतिक उपायोंसे लाभ-उठाना सीखना चाहिये ।

हमारी देहकी बनावट ऐसी है कि बिना खाये पिये भी आदमी जी सकता है ।

क्योंकि भूख-प्यासका सम्बन्ध कुछ अकेली देहसे नहीं है बल्कि प्राणतत्त्वसे है । इसके सिवा परम कृपालु परमात्माने हमारी देहकी बनावट ऐसी उत्तम की है कि वह बिना खाये पिये भी टिक सकती है । याद रहे कि यह मनगढ़न्त नहीं है बल्कि शास्त्रके प्रमाणकी और महात्माओंके अनुभवकी बात है । फिर आज दिन भी हम कितने ही स्थानोंमें देख सकते हैं कि कोई आदमी जानवरी खुराक पर रहता है, कोई आदमी केवल सागपात पर रहता है, कोई आदमी सिर्फ दूधके आधार पर रहता है और कोई कोई आदमी, मिट्टी, गोबर, राख, और घास खा कर भी अपनी जिन्दगी बनाये रखते हैं । आदमी जिस खुराक पर चाहे धीरे धीरे उसी खुराक पर रह सकता है । कितने ही जैन साधु दो दो तीन तीन महीने उपवास करते हैं और फिर भी लोगोंसे बात चीत करते हैं, चलते फिरते हैं तथा हर रोज सैकड़ों आदमियोंसे मिलते जुलते हैं । क्योंकि परम कृपालु परमात्माने हमारे शरीरकी रचना ऐसी की है कि वह बिना खाये पिये भी टिक सकता है । परन्तु इसमें मूल बात यही है कि बिना खाये पिये जीनेकी सच्ची और छोटी कुंजी हमें नहीं मिली है, इससे हमको यह विषय बहुत बड़ा मालूम होता है ।

अगर यह कुञ्जी मिल जाय तो यह कोई बड़ी बात नहीं है। क्योंकि प्रकृतिके शब्दकोषमें असम्भव शब्द नहीं है।

भूख न लगनेकी दवा।

इसके सिवा भूखप्यास न लगने या कम लगनेकी कितनी ही दवाएं हैं और उन दवाओंको कोई कोई साधु जानते हैं। जैसे, सुना है तथा कितने ही ग्रंथोंमें लिखा देखा है कि अपामार्गका बीज एक तोला लेकर दूधमें उसकी खीर बनाकर खानेसे पांच सात दिन भूख नहीं लगती। इसी तरह कितने ही ऐसी कंदें होती हैं जिनके खानेसे भी कई दिनों तक भूख नहीं लगती। यह बात अनुभवी साधुओंकी कही हुई है। इससे विचार करना चाहिये कि अगर भूखप्यासको रोकने योग्य शरीरकी प्रकृति न होती तो इस किसकी दवाएं भगवान क्यों पैदा करता? और वे दवाएं शरीरके अनुकूल क्यों आतीं? परन्तु हम देखते हैं कि भूखप्यासको रोकनेवाली दवाएं प्रभुने बनायी हैं और वे बहुतेरे आदमियोंकी प्रकृतिके अनुकूल आ सकती हैं। इससे भी विश्वास होता है कि हमारे शरीरका गठन परम कृपालु पिता परमात्माने ऐसा किया है कि अगर हम भूख प्यासको रोकना चाहें, तो आसानीसे रोक सकते हैं और इससे हमारे शरीरको कुछ बड़ा नुकसान नहीं पहुँच सकता। विचारना चाहिये कि जो चीज आसानीसे रुक सकती है उस चीजको न रोकने और उसीमें पैसा, समय और जिन्दगी गँवानेसे बढ़कर मूर्खता क्या है? इस मूर्खतामें साधारण लोग पड़े रहें तो दूसरी बात हैं परन्तु आगे बढ़े हुए हरिजन ऐसी भूलमें क्यों पड़े रहें? इसलिये अगर हमें भी आगे बढ़ना हो तो इस किसकी भूलोंसे बचनेकी कोशिश करनी चाहिये।

महात्मा लोग कहते हैं कि थोड़ा खानेसे अधिक जी सकते हैं ।

बहुत आदमियोंकी यह समझ होती है कि खाये पिये बिना शरीर नहीं टिक सकता और अगर हठ करके शरीरको बिना खाये पिये चलावें तो परिणाममें नुकसान हुए बिना न रहे । इस किसकी समझ हजारमें नौ सौ निन्नानवे आदमियोंकी हो गयी है । सबके मनमें बहुत करके ऐसे ही संस्कार जम गये हैं और बहुत करके ऐसा ही उन्हें दिखाई देता है । इससे मनुष्य बिना कुछ अधिक सोचे विचारे, ऊँचे दर्जेके विचार बिना जाने, अनुभवी महात्माओंका अनुभव बिना जाने और शास्त्रके सिद्धान्त तथा मनुष्यकी प्रकृतिका रहस्य बिना जाने राय दे देते हैं । ऐसी रायका कितना वजन है इसका विचार सब भाई बहनोंको करना चाहिये । खाये पिये बिना शरीरका नुकसान समझनेका डर रखनेके बदले अनुभवी महात्मा लोग तो यह कहते हैं कि न खानेसे शरीर अधिक टिक सकता है । क्योंकि शरीर और तरहके परमाणुओंसे बना है और अन्न और तरहके परमाणुओंसे बना है । इन दोनोंमें एक ही तरहके परमाणु नहीं हैं । इससे याद रखना कि जैसे अन्नसे देहका पोषण होता है वैसे ही सब तरहके रोग भी खानेपीनेसे ही पैदा होते हैं । इसका कारण यह है कि अन्नका स्वभाव जल्द सड़ जानेका है और देहका स्वभाव उसको अपने अन्दर पचाकर मिला लेने का है; इससे अन्नके कारण देहमें अनेक प्रकारके रोग घुसते हैं । अगर शरीरमें अन्न न जाय तो उसी अन्दाजमें रोगोंसे बचाव हो सकता है । परन्तु सवाल यह बड़ा होता है कि तब अन्न बिना शरीरका

पालन कैसे होगा ? शरीरके अन्दर अनेक प्रकारकी कलें चलती हैं। जैसे—साँस चलती है, लहू बहता है, रगें अपना अपना काम करती हैं, जठराग्नि चलती है, मगज़में विचार-शक्ति काम करती है, ज्ञानतन्तु अपना कर्त्तव्य करते हैं और बाल बढ़ते हैं, नख बढ़ते हैं तथा शरीरमें और कई तरहके फेरफार हर घड़ी हुआ करते हैं। सारांश यह कि बिना किसी क्रियाके एक क्षण भी शरीर नहीं रह सकता और हर एक क्रियामें शरीरका कुछ न कुछ घिसाव होता रहता है। क्योंकि क्रिया गति है, गतिमें गर्मी है और गर्मी कई तरहके परमाणुओं-का नाश करती है। इससे स्वाभाविक तौर पर शरीरमें हर रोज कुछ न कुछ घिसाव होता रहता है। इस घिसाईकी कमी बिना खुराकके कैसे पूरी हो सकती है ? ऐसा सवाल कितने ही आदमी पूछते हैं। इसके जवाबमें आगे बढ़े हुए ज्ञानी लोग यह कहते हैं—

शरीरको पालनेवाले सूक्ष्म तत्त्व।

इस जगतमें हम लोगोंके जाने हुए जितने तत्त्व और जितनी वस्तुएँ हैं उनसे कहीं अधिक ऐसी वस्तुएँ तथा ऐसे तत्त्व हैं जो हमें नहीं मालूम हैं और हमारी समझमें नहीं आये हैं। उनमेंसे सैकड़ों प्रकारके तत्त्व छिपे तौर पर हमारे जीवनका पोषण किया करते हैं। जैसे, ओजोन, आक्सिजन आदि वायु और जगतके हर एक परमाणुमें फैली हुई बिजली, ईथर इत्यादि कितनी ही चीजें जिन्दगीको बनाये रखनेमें मदद देती हैं। इतना ही नहीं, जो आगे बढ़े हुए हैं और जिनकी ज्ञानदृष्टि खिली हुई है वे पहुँचे हुए महात्मा तो यह कहते हैं कि जिन्दगीका पालन करनेवाले जितने स्थूल तत्त्व

हैं उनकी अपेक्षा हमारी समझमें न आए हुए सैकड़ों सूक्ष्म तत्त्व हमारी जिन्दगीको बनाये रखनेमें कहीं अधिक मदद देते हैं। इसलिये किसी आदमीको कभी ऐसी भूलमें न रहना चाहिये कि खानेपीनेकी वस्तुओंसे ही हमारा शरीर टिक सकता है। जब अनेक सूक्ष्म तत्त्वोंकी मददसे ही जिन्दगी टिक सकती है तब यह मानना बहुत बड़ी भूल है कि कुछ जड़ चीजोंकी मददसे ही हमारी जिन्दगी चलती है। अगर कुछ अधिक विचार करें तो इस भूलको साफ साफ देख सकते हैं। जैसे—जब मौत आती है तब खाने पीनेकी हजारों चीजें रहने पर भी कुछ काम नहीं आतीं, उन सब स्थूल वस्तुओंके रहते हुए भी प्राण चला जाता है। इसके सिवा इस जगतमें खानेपीनेकी तंगीसे पेट न भरनेके कारण जितनी मौतें होती हैं उनसे अधिक मौतें बहुत बेहद तौर पर खानेपीनेसे होती हैं। क्योंकि अन्न सड़नेवाली चीजें है उसमें तुरत ही अनेक प्रकारके कीड़े पैदा हो जाते हैं और वे अनेक प्रकारके रोग पैदा करते हैं। वे रोग प्राणियोंकी जिन्दगी लेते हैं। इसके विरुद्ध प्रकृतिसे हमारी जिन्दगीके पोषणके लिये जो सूक्ष्म तत्त्व स्वाभाविक तौर पर मिलते हैं उन तत्त्वोंमें खराब कीड़ोंको मार डालनेकी तथा रोगोंका नाश करनेकी शक्ति है। इसलिये खानेपीनेकी वस्तुएँ हमारी जिन्दगी बनाये रखनेमें जितनी मदद दे सकती हैं उससे कहीं अधिक मदद छिपे तत्त्व हमारी जिन्दगीको बनाये रखनेमें दे सकते हैं। ऐसे सूक्ष्म छिपे तत्त्व थोड़े नहीं हैं, वे हजारों किस्म के हैं परन्तु हमारा सायन्स अभी वहाँ तक नहीं पहुँचा है, इससे इस विषयको जितना जानना चाहिये उतना स्पष्ट हम नहीं जानते। इस कारण प्रकृतिमें मौजूद सूक्ष्म तत्त्वों पर

जो जोर देना चाहिये वह जोर उन पर हम नहीं देते। उसके बदले जड़ वस्तुओं पर अधिक जोर देते हैं। परन्तु यह नहीं समझते कि जो जड़ है वह डालपत्ता है जो और सूक्ष्म है वह मूल है। और याद रहे कि मूलसे ही डालपत्ते होते हैं डाल-पत्तोंसे मूल नहीं होता। इसी प्रकार सूक्ष्म परमाणुओंसे जिन्दगी टिक सकती है, खानेपीनेसे जिन्दगी नहीं टिक सकती। जिन महात्माओंने इन सब सिद्धान्तोंको भली भाँति समझा है वे खानेपीनेके विषय पर बहुत जोर नहीं देते। और इसीसे वे महात्मा हो सके हैं। अगर हमें भी उनके ऐसा जीना सीखना हो और उनके ऐसा होना हो तो खानपानके विषय-में हदमें रहना सीखना चाहिये।

देवता बिना खाये पिये जी सकते हैं।

इसके सिवा यह बात भी ध्यानमें रखने योग्य है कि दुनियाके हर एक ऊँचे धर्म्ममें कहा है कि देवता हजारों और लाखों वर्ष तक जी सकते हैं। उनका शरीर हमारे शरीरसे बहुत ही सुन्दर होता है; तिस पर भी आश्चर्यकी बात यह है कि हमारी तरह उनको जिन्दगी टिकानेके लिये कुछ जड़ वस्तुएँ नहीं खानी पड़तीं। मतलब यह कि वे बिना खाये पिये जी सकते हैं। और सो भी थोड़े दिन या थोड़े महीने नहीं, बल्कि लाखों वर्ष तक अन्न पानी बिना जी सकते हैं। याद रहे कि यह कुछ कल्पित बात नहीं है बल्कि हर एक महान धर्म्मके सिद्धान्तकी बात है, महात्माओंकी मानी हुई बात है और अनुभवियोंके अनुभवमें आई हुई बात है। इस-लिये देवताओंके नाम पर चलनेवाली अनेक प्रकारकी पोलोंमें न पड़े रहकर उनके ऐसे महान गुणोंको समझना चाहिये और इनको अपनी जिन्दगीमें लानेकी कोशिश करनी चाहिये।

मिताहारका लाभ।

खानेपीनेके विषयमें यह बात भी समझने योग्य है कि अन्न जड़ है और नाशवान है। उससे जो शरीर पलता है वह शरीर जड़तावाला रोगाह और जल्द मर जानेवाला होता है। जिसकी नीव ही ढही हुई है वह इमारत टिकाऊ कैसे हो सकती है ? इसके विरुद्ध जीवनका पोषण करनेवाले सूक्ष्म तत्त्व बहुत समय तक टिकने योग्य हैं; उनमें जल्द विकार नहीं होता और वे दूसरे सूक्ष्म तत्त्वोंको ग्रहण कर सकते हैं। जिस मनुष्यके शरीरमें ऐसे सूक्ष्म तत्त्व अधिक होते हैं उसकी इन्द्रियाँ उसके वशमें होती हैं, उसका मन पवित्र होता है, उसकी बुद्धि विशाल होती है, उसका अहंभाव सत्वगुणी होता है और उसकी आत्माको अनंततामें उड़नेके लिये छोटे छोटे पंख मिले होते हैं। इससे वह अपनी उन्नति बहुत जल्द कर सकता है और जगतको भी बड़ी मदद दे सकता है। परन्तु जो आदमी खानेपीनेमें ही रह जाता है और प्रकृतिके ऊँचे तत्त्वोंसे लाभ नहीं उठाता उसका शरीर बड़ा जड़ होता है, बहुत मलमूत्रवाला होता है, बहुत विकारवाला होता है बड़ी निद्रावाला होता है। इसके सिवा उसकी इन्द्रियाँ उसके वशमें नहीं रह सकतीं, उनका मन बहुत चंचल होता है; उसकी बुद्धि बहुत ऊँचा तत्त्व नहीं ग्रहण कर सकती और जीवात्मा, कालकोठरी की सी दशामें रहती है। इससे वह आत्माका उद्धार नहीं कर सकता और न जगतकी ही कुछ मदद कर सकता है। याद रहे कि इतना बड़ा नुकसान खाने पीनेमें नियम न रखनेसे ही होता है। इसलिये हमें खाने-पीनेके विषयमें बहुत सम्हलकर रहना सीखना चाहिये और

यह समझना चाहिये कि खानेपीनेके लिये हमारी जिन्दगी नहीं है बल्कि जिन्दगीको टिकाये रखनेके लिये जरूरत भर खानापीना आवश्यक है।

खुराककी बिना मददके पोषणकी युक्ति ।

यह सब जानने पर स्वभावतः कितने ही भाई बहनोंको यह पूछनेका जी चाहेगा कि तो हमें क्या करना चाहिये ? खानापीना कैसे घटाया जा सकता है ? और प्रकृतिके सूक्ष्म तत्त्वोंका लाभ किस तरह लिया जा सकता है ? इसके उत्तरमें जानना चाहिये कि इतने ऊँचे दर्जे पर पहुँचाना एकदम नहीं हो सकता। परन्तु क्रम क्रमसे हर रोज आहार विहारमें नियमसे रहनेकी कोशिश करनी चाहिये। जो हरिजन इस किस्मके सिद्धान्त समझते हैं तथा उनका अनुभव करते हैं उनके सत्सङ्गका लाभ उठाना चाहिये और जड़ वस्तुओंसे पोषण करनेकी जो आदत डाली है उसके बदले सूक्ष्म तत्त्वोंसे पोषण करनेकी आदत डालनी चाहिये। यह आदत सिर्फ कहनेसे नहीं पड़ सकती, बल्कि रोजके अभ्यास तथा निजके अनुभवसे आपसे आप पड़ सकती है। परन्तु इसके पहले प्रभु प्रेमकी, भक्तिकी और सात्विक त्यागकी खास जरूरत है। क्योंकि इन सबकी कुंजी यह है—

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः ।

इस कुंजीसे काम लेना सीखना चाहिये। इसके लिये सदा खूब दृढ़तासे यही भावना रखना कि हमारी आत्मा शुद्ध है, निरंजन है, निराकार है, सर्वव्यापक है और उसको जगत-की किसी वस्तुकी मददकी जरूरत नहीं है, क्योंकि उसका सम्बन्ध परमात्मासे है परमात्मासे उसको जीवन मिलता है।

इससे उसको रोग नहीं होता, दुःख नहीं होता, शोक नहीं होता और जगतकी किसी जड़ वस्तुकी मदद उसे दरकार नहीं। वह अमर है और अखण्ड आनन्दरूप है। तब हम छोटी चीजोंमें क्यों पड़े रहें? इस प्रकारकी भावनाको खूब दृढ़ता सहित जगानेसे धीरे धीरे जगतकी वस्तुओंका मोह घटता जाता है और ज्यों ज्यों यह मोह घटता जाता है त्यों त्यों हममें आनेके लिये स्वभाविक तौर पर तरसते हुए प्रकृतिके सूक्ष्म तत्त्व बिना बुलाये खुशीसे आने लगते हैं। उन तत्त्वोंके प्रभावसे आपसे आप भूखप्यास घट जाती है। उस समय खाने पीनेकी जड़ वस्तुओंसे पोषण होनेके बदले सूर्यके प्रकाशसे पोषण होता है, ताजी हवासे पोषण होता है, चन्द्रमासे अमृत मिलता है, तारोंसे तत्त्व मिलता है, पृथ्वीसे सुगन्ध मिलती है, पेड़ोंकी बयारसे तन्दुरुस्ती मिलती है, प्रकृतिकी सुघराईसे सौन्दर्य मिलता है, महात्माओंकी वाणीसे तृप्ति मिलती है, शास्त्रके वचनसे मिठास मिलती है, अपनी रहन सहनसे अपनी आत्माको सन्तोष मिलता है, यहाँ तक कि खास परमात्मासे उसको प्रकाश मिलता है। इससे वह आदमी हमेशा उजेलेमें ही रहता है और उस उजेलेमें इतनी नयी नयी चीजें देखनेको मिलती हैं कि भूखप्यासका कुछ ख्याल ही नहीं रहता और भूखप्यासकी गुंजाइश ही नहीं रहती। जहाँ ऐसी स्थिति होती है वहाँ खाने पीनेके मोहकी बातें भला कैसे टिक सकती हैं? इसलिये हे प्रभु! हमें अब ऐसी स्वाभाविक स्थिति दे। ऐसी स्वभाविक स्थिति दे।

खानेपीनेके बहुत शौकसे खराबी।

ऊपर जो बातें कहीं वे बड़े महत्वकी, बहुत ऊँचे दर्जेकी

और बहुत आवश्यक हैं तो भी अफसोस है कि अब तक हमारा ज्ञान बहुत अधूरा है; इससे ये ऊँचे दर्जेकी बातें सब आदमियोंके काम नहीं आ सकतीं। इसलिये साधारण व्यवहारी लोगोंके काम आने योग्य बातें जाननी चाहियें। ऊपरकी बातोंसे सब जिज्ञासुओंको इतना विश्वास हो आयगा कि खानेपीनेके लिये ही हमारी जिन्दगी नहीं है बल्कि जिन्दगीको टिकाये रखनेके लिये खानापीना है। इसलिये खानेपीनेमें हम जितना अधिक मोह रखते हैं उतनी ही हमारी भूल है; हम खानेपीनेमें जितना अधिक समय खोते हैं उतनी जिन्दगी हम व्यर्थ गँवाते हैं और खानेपीनेमें जरूरतसे जितना अधिक पैसा खर्चते हैं उतना पैसा पानीमें फेकते हैं। इतना ही नहीं बल्कि पैसा फेकनेके साथ एक तरहका बड़ा पाप भी करते हैं। क्योंकि खानेपीनेमें अधिक पैसा खर्चनेसे शरीरमें एक तरहका निकम्मा जोश उत्पन्न होता है और उस जोशसे काम, क्रोध, लोभ, अभिमान, डाह आदि भारी दुर्गुण पैदा होते हैं। इन दुर्गुणोंके कारण शरीरको बचानेके लिये हरदम अधिक सम्हाल रखनी पड़ती है। इसके सिवा खानेपीनेके शौकीन आदमियोंको बढ़िया बढ़िया कपड़े पहननेका शौक होता है; फिर बढ़िया मकानकी इच्छा होती है; फिर मौज-शौककी चीजें लानेकी इच्छा होती है; फिर जाति-बिरादरीमें और गाँवमें बड़ाई पाने तथा नाम करनेकी इच्छा होती है। खानेपीनेके शौकसे ही वासनाएँ इतनी बढ़ जाती हैं कि आदमी उन्हींमें डूब जाता है। क्योंकि ये सब चीजें आपसे आप झटपट नहीं हो जातीं, इनके लिये अनेक प्रकारकी हाय हाय करनी पड़ती है, अनेक प्रकारका कष्ट झेलना पड़ता है, अनेक प्रकारका अधर्म करना पड़ता है और आत्माके कल्याणदायक

ऊँचे विषयोंको छोड़कर उल्टे जीवको बांधनेवाले हलके विषयोंमें रहना पड़ता है। याद रहे कि यह सब नुकसान हदसे बाहर खानेपीनेके शौकसे होता है। ऐसा न होने देनेके लिये हमें खानेपीनेके नियम जानने चाहियें और इस विषयमें अंकुशमें रहना सीखना चाहिये।

खानेपीनेके लिये वैद्यक शास्त्रका क्या मत है?

ये सब बातें जिन हरिजनोंकी समझमें आती हैं उनको पीछेसे साफ मालुम हो जाता है कि खानेपीनेमें लापरवाही रखनेसे ही रोग होता है और खानेपीनेका जरूरतसे अधिक मोह रखनेसे ही अनेक प्रकारके पाप करने पड़ते हैं। ऐसा न होने देनेके लिये हमें खुराकके नियम जानने चाहियें, और यह जानना चाहिये कि इस विषयमें वैद्यक शास्त्रका क्या सिद्धान्त है, महात्माओंकी इच्छा है और प्रभुका क्या हुक्म है। यह जाननेकी चेष्टा करने पर विदित होता है कि—

प्राचीन ऋषियोंके वैद्यक, यूनानी हिकमत और आजकल अधिक जोरसे चलनेवाली युरोपियन डाक्टरीका खानेपीनेके विषयमें सर्व सम्मतिसे यही मत हैं कि जहाँ तक बने सादीसे सादी खुराक खानी चाहिये। पेटमें जितना अँटे उससे कुछ कम ही खाना चाहिये। अर्थात् पेटके चार भागोंमेंसे दो भाग अन्नसे भरना, एक भाग पानीसे भरना और एक भाग हवाके घूमने फिरनेके लिये खाली रखना, किसी प्रकारकी भारी या जड़ वस्तु न खाना, नशेकी कोई चीज न खाना-पीना, समय, समय-पर जरूरतके मुताबिक उपवास करनेकी आदत डालना और जहाँ तक बने प्रकृतिके नियमोंके अनुसार चलना तथा अँतड़ी या मगज पर किसी तरहका

अधिक बोझ न पड़ने देना तन्दुरुस्ती बनाये रखने तथा पानेके सच्चे उपाय हैं।

खानेपीनेके विषयमें महात्मा लोग कहते हैं कि खानेपीनेकी बात पर बहुत जोर न देना चाहिये; क्योंकि खानापीना कुछ बड़े महत्वकी बात नहीं है बल्कि पेटको भाड़ा देनेकी बात है। इसलिये इस रीतिसे जिन्दगी बिताना सीखना चाहिये कि इस विषयमें कम समय लगे, कम पैसा लगे, सादगीसे चलें और अधिक आसानीसे गुजारा हो सके। हमारी जिन्दगीमें खानेपीनेकी बातसे दूसरी ऊँची बातें इतनी हैं कि अगर हम उन सबका ठीक २ विचार करें और तुलना करें तो हमें यही जान पड़ेगा कि हम हीरा मोती छोड़कर भड़भूँजेकी दुकानमें पड़े रहते हैं। इतना ही नहीं बल्कि जिस चीजसे स्वर्ग मिल सकता है उस चीज़से लोग स्वर्गके बदले नरकमें जाते हैं। इसके सिवा हमने यह भी देखा है कि बहुत आदमी और कोई बड़ा पाप न करके सिर्फ खानेपीनेके मोहके कारण नरकमें जाते हैं। इस पापसे बचनेकी खास कोशिश करनी चाहिये।

श्रीमद्भगवद्गीताकी महिमा।

ऐसी कोशिश करते समय आगे बढ़े हुए हरिजनोंको यह जाननेकी इच्छा होती है कि खानेपीनेके विषयमें प्रभुका क्या हुक्म है। यह जाननेकी चेष्टा होने पर उनकी दृष्टि पहले गीता पर पड़ती है। क्योंकि धर्मके दूसरे ग्रंथोंके विषयमें भिन्न भिन्न सम्प्रदायोंके लोगोंके भिन्न भिन्न मत हैं परन्तु गीताको सब मानते हैं; यहाँ तक कि दुनियाके सब धर्मवाले विद्वान गीताकी प्रशंसा करते हैं और दूसरे धर्मवाले विदेशी विद्वान

भी गीताका रहस्य समझनेकी चेष्टा करते हैं तथा अपनी भाषामें अपने खर्चसे उसका उल्था कराते हैं। गीतामें इतना गहरा ज्ञान है, इतना आध्यात्मिक रहस्य है और जिन्दगी सुधारनेवाले इतने ऊँचे विषय हैं कि विद्वान चकित हो जाते हैं। और ऐसा ऊँचा ज्ञान अपने देशमें फैलाना बहुत बड़ी सेवा और पुण्यका काम समझ कर वे अपने खर्चसे अपनी जिम्मेधारी पर स्वयं बहुत परिश्रम उठा कर श्रीमद्भगवद्गीताका ज्ञान अपने भाइयोंमें फैलाते हैं। गीताकी ऐसी खूबी है। इससे प्रभुका हुक्म जाननेकी इच्छा रखनेवाले हरिजनोंकी पहली नजर गीता पर पड़ती है। उसको देखनेसे यह समझमें आता है कि बिना खाये पिये नहीं चल सकता; क्योंकि अन्नसे ही प्राणीमात्र उत्पन्न होते हैं। इसके लिये प्रभुने भी कहा है—

अन्नका महत्व।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भव ॥

अ० ३ श्लो० १४

अन्नसे प्राणीमात्र उत्पन्न होते हैं और वर्षासे अन्न उत्पन्न होता है। इसलिये अब यह जानना चाहिये कि वर्षाकी उत्पत्ति कैसे होती है। इसका खुलासा प्रभु यों करते हैं कि यज्ञ करनेसे वर्षा होती है और कर्म करनेसे यज्ञ होता है।

इस प्रकार परम्परा देखने पर पता लगता है कि अन्नसे यज्ञ होता है और यज्ञमें प्रभु बसते हैं। इसलिये अन्न मुख्य वस्तु है। इसका क्या विश्वास है कि यज्ञमें प्रभु बसते हैं? इसके लिये कुछ प्रमाण है? इसके उत्तरमें महात्मा श्रीकृष्ण भगवानने कहा है कि—

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥

अ० ३ श्लो०१५

कर्म ब्रह्मसे अर्थात् वेदसे—ज्ञानसे उत्पन्न होता है और वेद—ज्ञान अविनाशी ब्रह्मसे उत्पन्न होता है। इसलिये सर्वव्यापक अविनाशी ब्रह्म हमेशा यज्ञमें रहता है।

इस प्रकार अन्नसे यज्ञ होता है और यज्ञमें स्वयं परमात्मा रहते हैं। इससे अन्न कोई छोटी या घृणा करने योग्य वस्तु नहीं है, बल्कि अन्नसे यज्ञ होता है और यज्ञमें प्रभु रहते हैं, इसलिये अन्न बहुत आदर करने योग्य उत्तम वस्तु है।

अन्नमें ही प्रभु नहीं हैं बल्कि अन्नको पचानेवाली जठराग्निमें भी प्रभु हैं। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनां देहमाश्रितः ।
प्राणापानसमायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम् ॥

अ० १५ श्लो० १४

मैं जठराग्निरूपसे प्राणीमात्रके शरीरमें रहता हूँ और प्राण तथा अपानसे मिलकर चार प्रकारका अन्न पचाता हूँ।

यह श्लोक कह कर प्रभु हमें यह समझाते हैं कि प्राण—यानी जो वायु बाहरसे शरीरके भीतर जाती है—और अपान—यानी जो वायु शरीरके भीतरसे बाहर निकलती है—ये दोनों वायु जब शरीरके अन्दर मिलती हैं, तब उनसे एक प्रकारकी रसायन क्रिया उत्पन्न होती है और वह क्रिया अन्नको पचानेमें मदद करती है। इससे चबानेकी, चूसनेकी, चाटनेकी और पीनेकी; चार प्रकारकी खुराक पचती है और यह पचानेका काम प्रभु करते हैं। इसलिये प्रभु कहते हैं कि प्राणीमात्रकी जठराग्निमें रहकर मैं खुराकको पचाता हूँ।

अन्न तो चाहिये ही; अन्न बिना नहीं चलने का ।

इस प्रकार हमारी जठराग्निमें भी प्रभु हैं और अन्नमें भी प्रभु हैं और प्रभुकी हमें विशेष जरूरत है; इसलिये अन्न तो चाहिये ही, अन्न बिना चल नहीं सकता। क्योंकि प्रभुने कहा है कि जो लोग बहुत कड़ा तप करते हैं अर्थात् खाने पीनेके बारे में देहको बहुत कष्ट देते हैं और शरीरके अन्दरके पंच-महाभूतोंको दुःख देनेवाली चाल चलते हैं वे आसुरी निश्चय वाले हैं। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥
कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥

अ० १७ श्लो० ५,६

जो लोग दम्भके कारण, अहंकारके कारण, अपनी वास-नाओंके कारण, अपनी आसक्तिके कारण तथा सब कुछ मैं ही करता हूँ ऐसी डींगमें रहकर जिस तपके लिये शास्त्रमें नहीं कहा है वैसा कड़ा तप करते हैं और ऐसा करके शरीरमें मौजूद भूतों अर्थात् देवताओंको खींचते हैं तथा शरीरमें रहने-के कारण मुझे जो अपने हठसे दुःख देते हैं उनको तू आसुरी निश्चयवाला समझना।

यह श्लोक कहकर प्रभु हमको यह समझाते हैं कि किसी तरहका शरीर पर अयोग्य दबाव डालना उचित नहीं है। इतना ही नहीं बल्कि अपनी शक्ति बिना, देशकाल देखे बिना, इर्दगिर्दका संयोग जाँचे बिना, अवस्था हुए बिना, तत्त्व समझे बिना और कुछ भी शुभ उद्देश रखे बिना सिर्फ

अज्ञानताके कारण अथवा किसी तरहकी झोंकमें आकर बिना कारण या दम्भके कारण या बड़ाई पानेके लिये शरीरको दुःख देने और निर्दयतासे अपने ही शरीर पर घातकी परीक्षा करनेको प्रभु पाप कहते हैं। ऐसे पापसे बचनेके लिये हमें खानेपीनेका नियम जानना चाहिये। क्योंकि बिना अन्नके चल नहीं सकता। परन्तु इसमें इतनी बात ध्यानमें रखने योग्य है कि

अन्नके दो भेद हैं, स्थूल और सूक्ष्म।

गेहूँ, चावल, बाजरा, अरहर आदि चीजोंको ही हम अन्न कहते हैं। परन्तु महात्मा लोग अन्नका ऐसा छोटा अर्थ नहीं करते। प्रभुने कहा है कि "अन्नाद्भवन्ति भूतानि" अर्थात् अन्न से सब प्राणी उत्पन्न होते हैं। विचारनेकी बात है कि कितने ही तरहके जीव हवासे पैदा होते हैं, कितने ही तरहके जीव बरसातमें पानीसे पैदा होते हैं, कितने ही तरहके जीव पसीनेसे पैदा होते हैं, कितने ही तरहके जीव पृथ्वीसे पैदा होते हैं और कितने ही तरहके जीव बर्फसे, गर्मीसे तथा अग्निसे पैदा होते हैं। इन सबको क्या अन्न मिलता है? और प्रभु कहते हैं कि अन्नसे ही प्राणीमात्रकी उत्पत्ति होती है। इसलिये हमें अन्नका खुलासा और बढ़िया अर्थ समझना चाहिये। इसके लिये ज्ञानी लोग कहते हैं कि अन्न दो तरहका है; एक स्थूल अन्न और दूसरा सूक्ष्म अन्न। दाल, भात, रोटी आदि पकाया अन्न तथा चावल, गेहूँ, अरहर, ज्वार, बाजरा, मकई आदि कच्चा अन्न स्थूल है और यह स्थूल अन्न जिन तत्त्वोंसे बनता है वे तत्त्व जुदे हैं और उनको महात्मा लोग सूक्ष्म अन्न कहते हैं। जिन्दगीका पोषण करनेमें हवा, गर्मी, प्रकाश

आदि कितने ही तत्त्व मदद करते हैं; इतना ही नहीं जीवोंको उत्पन्न करनेमें भी ये तत्त्व बहुत मदद करते हैं। इसलिये अन्न शब्दसे केवल गेहूँ, चावल आदि स्थूल अन्न ही न समझना, प्रकाश, हवा, बिजली, आकाशतत्त्व आदि जिन्दगीका पोषण करनेवाले सब तत्त्वोंका समावेश अन्न शब्दमें होता है और तभी "अन्नाद्भवन्ति भूतानि" वाक्यका सच्चा अर्थ समझमें आता है।

इससे यह बात भली भाँति समझमें आ सकेगी कि अन्न बिना नहीं चल सकता। परन्तु यहाँ इतना ध्यानमें रखना चाहिये कि स्थूल अन्नकी कुछ जरूरत नहीं है और इससे पहले कही हुई बातसे (ऐसे अन्न बिना और अधिक पोषण हो सकता है) इस बातका (अन्न बिना नहीं चल सकता) विरोध भी जान पड़ेगा। इसका खुलासा यों समझना चाहिये कि स्थूल अन्न बिना चल सकनेकी बात योगियोंके लिये है, प्रकृतिके नियम समझनेवालोंके लिये है, ईश्वरका नियम पालनेवालोंके लिये है और धर्मका बल रखनेवालोंके लिये है। परन्तु ऐसे आदमी इस जगतमें कोई कोई ही होते हैं और साधारण व्यवहारी आदमी, जिनका स्थूल अन्न बिना नहीं चल सकता, करोड़ों होते हैं। यह लेख पिछली श्रेणीके लोगोंके लिये है। इससे ऊपर कही दोनों बातोंमें विरोध मत मानना बल्कि यह समझ लेना कि जुदे जुदे अधिकारियोंके लिये जुदी जुदी बातें हैं।

स्वार्थके लिये खानापीना पाप है।

इससे यह बात खूब अच्छी तरह समझ ली जा सकती है कि अन्न बिना नहीं चल सकता। क्योंकि अन्नसे ही

प्राणीमात्रकी उत्पत्ति होती है। इसके सिवा अन्नमें प्रभु हैं और जठराग्निमें भी प्रभु हैं। इसलिये अन्न बिना नहीं चल सकता। तो भी अन्नका उपयोग करनेमें अनेक प्रकारकी सावधानी दरकार है और इसमें कितनी ही शर्तें हैं। जैसे—बिना किसी प्रकारका ऊँचा उद्देश रखे, बिना परमार्थ किये, बिना गरीबोंका भाग काढ़े और बिना प्रभुका उपकार माने सिर्फ अपने ही लिये रांधना और खाना एक तरहका महापाप है। इसके लिये प्रभुने कहा है कि—

भुंजते ते त्वघं पापा ये पचंत्यात्मकारणात्।

अ० ३ श्लो० १३

जो सिर्फ अपने लिये रांधते हैं वे पापी पापको ही भोगते हैं।

प्रभु इससे भी आगे बढ़कर कहते हैं कि अपनी इन्द्रियोंको प्रसन्न रखनेके लिये ही जो आदमी खाता है और दूसरोंकी परवा नहीं करता, अपने मनमें कोई ऊँचा उद्देश नहीं रखता तथा नियम पर नहीं चलता उसका जीवन व्यर्थ है। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥

अ० ३ श्लो० १६

हे अर्जुन! (अन्नसे प्राणी, वर्षासे अन्न, यज्ञसे वर्षा, कर्मसे यज्ञ और ज्ञानसे कर्म तथा परमात्मासे ज्ञानकी उत्पत्ति होती है) इस प्रकार चलते हुए चक्रके अनुसार जो आदमी नहीं चलता उसका जीवन पापरूप है और इन्द्रियोंके सुखको ही जो आनन्द मानता है उसका जीवन व्यर्थ है।

जो स्वार्थी मनुष्य हैं, जो इन्द्रियोंके सुखमें ही रहनेवाले हैं, जो विषयोंके गुलाम हैं और जो खानेपीनेको सर्वस्व

माननेवाले हैं तथा, कुछ भी ऊँचा उद्देश रखे बिना, प्रभुके रास्ते चले बिना, परमार्थमें जीवन बिताये बिना और जिसका उपकार मानना चाहिये उसका उपकार माने बिना जो सिर्फ खानेपीनेमें आसक्त रहते हैं उनकी जिन्दगीको प्रभु व्यर्थ समझते हैं। इसलिये हे भाइयो और बहनो! अपनी जिन्दगी ऐसी व्यर्थ न हो जाय इसका ख्याल रखना।

प्रभुका दिया प्रभुके लिये न खर्च कर जो अपने स्वार्थमें ही खर्चता है उसको प्रभु चोर कहते हैं।

अपनी इन्द्रियोंको प्रसन्न रखनेके लिये जो आदमी खाता पीता है अर्थात् जो आदमी यह समझता है कि खानेपीनेके लिये ही यह जिन्दगी है उसकी जिन्दगी व्यर्थ है। इतना ही नहीं बल्कि जो वस्तु प्रभुकी है और प्रभुकी दी हुई है उस वस्तुको प्रभुके अर्पण किये बिना अर्थात् प्रभुके लिये काममें लाये बिना जो अकेले अपने ही स्वार्थमें लगाता है और दूसरोंकी परवा नहीं रखता उस आदमीको प्रभु चोर कहते हैं। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

> इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।
> तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥
>
> अ० ३ श्लो० १२

यज्ञसे अर्थात् कर्त्तव्यपालन करनेसे देवताओंका पोषण होता है इससे देवता प्रसन्न होते हैं; और जब देवता प्रसन्न होते हैं तब वे मनुष्योंको मनलायक भोग देते हैं। इसलिये देवताओंका दिया भोग देवताओंके अर्पण किये बिना अर्थात्

प्रभुके-लिये- परमार्थमें लगाये बिना जो आदमी अकेले आप ही उड़ाता है वह चोर है।

क्योंकि ऐसे आदमी प्रभुका उपकार नहीं मानते, प्रभुका दिया हुआ प्रभुके अर्थ नहीं खर्चते, जिन्दगीका कुछ उत्तम उद्देश नहीं समझते और न यही समझते कि सुख विलास भोगनेके लिये ही जिन्दगी नहीं है बल्कि जिन्दगीकी मदद करनेके लिये कामलायक सात्विक भोग आवश्यक है। वे देवताओंके दिये मालको अपना समझ कर अपनी इच्छानुसार उसका दुरुपयोग करते हैं, इसलिये वे चोर हैं। इस प्रकार प्रभुके घर चोर न बननेके लिये हमें अपनी खुराकसे, अपने धनसे और अपने भोगसे देवताओंका भाग देवताओंको देना चाहिये। अर्थात् प्रभुके लिये, प्रभुके नाम पर, प्रभुके प्रीत्यर्थ प्रभुके बालकोंको यथाशक्ति देकर तब हमें अपनी चीजें अपने काममें लानी चाहिये। अपना हर एक काम और अपनी खाने पीनेकी चीजें प्रभुके अर्पण करनेके बाद ही अपने काममें लानी चाहियें। यह प्रभुका हुक्म है, यह शास्त्रकी आज्ञा है और यह महात्माओंका उपदेश है। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें भी कहा है—

अपनी जिन्दगी प्रभुको अर्पण करनेके विषयमें प्रभुका हुक्म।

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥

अ० ९ श्लो० २७

हे अर्जुन! तू जो काम कर, जो खा, जो होम कर, जो दान कर और जो तप कर वह सब मुझे अर्पण कर।

बन्धुओ! प्रभुका ऐसा खासा हुक्म है। इसलिये हमें अपनी जिन्दगीका हर एक काम अहल दिलसे और शुद्ध अन्तःकरणसे प्रभुके अर्पण करना चाहिये। इसमें कितने ही आदमियोंको शंका हो सकती है कि हम जो काम प्रभुको अर्पण करें वह काम क्या प्रभुको अर्पण हो सकता है? क्या हमारा किया हुआ अर्पण प्रभुके पास पहुँच सकता है? इसका क्या सबूत है? इस प्रकारकी शंका किसी किसीको होना सम्भव है। इसका समाधान यह है कि अगर हमारा किया हुआ अर्पण प्रभुके पास न पहुँचे तो वह सिर्फ लड़कों-का खेल कहलावे। पर याद रहे कि यह बात लड़कोंका खेल नहीं है और न किसी सनकी आदमीकी मनगढ़न्त है; बल्कि यह शास्त्रके सिद्धान्तकी बात है, महात्माओंके निजके अनु-भवकी बात है और प्रभुके हुक्मकी बात है। इसके लिये प्रभुने कहा है कि—भक्तिके साथ दीनतापूर्वक जो कुछ मुझे अर्पण किया जाता है उसको मैं भक्तोंके कल्याणके लिये स्वीकार करता हूँ। इस विषयमें श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

अ० ९ श्लो० २६

जो आदमी आपसे आप भक्तिके लिये बार बार प्रयत्न करता है और भक्तिपूर्वक मुझे पत्ता, फूल फल, या जल, देता है उसका प्रेमपूर्वक दिया हुआ मैं स्वीकार करता हूँ।

यह श्लोक कह कर प्रभु हमको यह समझाते हैं कि तुम्हारा अर्पण मैं कबूल करता हूँ। परन्तु यह स्वीकार करते हुए भी प्रभु अपनी चतुराई दिखाते हैं और बीचमें कई शर्तें डाल देते हैं। पहली शर्त यह है कि अर्पण करनेवाला आदमी

प्रयत्न करनेवाला हो; दूसरी शर्त यह है कि अर्पण करनेवाला आदमी भक्त हो और तीसरी शर्त यह है कि प्रेमपूर्वक अर्पण किया जाय। इन तीन शर्तोंमें समझने योग्य बड़ी गूढ़ बातें हैं। क्योंकि यह प्रभुका वचन है और अलौकिक रहस्यसे भरा हुआ है। इसलिये गहरे उतर कर इसका अर्थ ढूंढ़ना चाहिये। यों ढूंढ़नेसे ध्यानमें आता है कि पहले तो अर्पण करनेवाले आदमीको भक्त होना चाहिये। इसलिये यह जानना चाहिये कि—

भक्त माने क्या ?

भक्त माने वह मनुष्य जिसकी आत्मा विशाल हो गयी हो; भक्त माने वह जिसके मनके संशय मिट गये हों; भक्त माने वह जिसकी इन्द्रियां वशमें हो गयी हों; भक्त माने वह जिसका मन मायासे निकल कर प्रभुमें रमता हो; भक्त माने वह जो अपने मनमें ऊंचे उद्देश रख कर परमार्थमें जीवन बिताता हो, भक्त माने वह जो जगतकी नाशवान वस्तुओंका मोह घटाकर किसी महान तत्त्वमें लग गया हो; भक्त माने वह जो श्रद्धाके मार्गमें प्रभुके कदम ब कदम चलता हो, भक्त माने वह जिसके हृदयमें नया बल आया हो; भक्त माने वह जिसकी आसक्ति घट गयी हो और जिसके मनमें सच्चा वैराग्य आ गया हो; भक्त माने वह जो जगतके जीवोंकी सेवा करनेमें अपने जीवनकी सार्थकता समझता हो; भक्त माने वह जिसमें अनेक प्रकारके उत्तम सद्गुण स्वाभाविक रीतिसे आ गये हों; भक्त माने वह जो प्रेमकी महिमा समझता हो और भक्त माने वह जो ईश्वरी ज्ञानमें रमा करता हो तथा भक्त उसे कहते हैं जिसका तार प्रभुके साथ जुड़ गया हो। महात्मा लोग ऐसे आदमियोंको भक्त कहते हैं। ऐसे भक्त जो अर्पण करते हैं उस अर्पणको प्रभु स्वीकार करते हैं।

प्रभुके मार्गमें प्रयत्न करनेवालेका लक्षण।

किया हुआ अर्पण प्रभुके स्वीकार करनेमें दूसरी शर्त यह है कि अर्पणकारी हरिजन प्रयत्न करनेवाला हो। अर्थात् धर्मके रास्तेमें अपनी आत्माका बल लगानेवाला हो; जगत्‌की सेवा करनेमें अपनी शक्ति लगानेवाला हो; अपने मनको वशमें रखनेमें अपनी आत्माका बल लगानेवाला हो; प्रकृतिके गूढ़ तत्त्व समझने और उनका लाभ प्रभुके बालकोंको देनेके लिये प्रयत्न करानेवाला हो, अपनी आत्मा जो मायाके जालमें फंस गयी है उसे छुड़ानेका यत्न करनेवाला हो, आत्माको उसके सच्चिदानन्द रूप, असल स्वरूपमें ले जानेके लिये मिहनत करनेवाला हो; इस ब्रह्माण्ड रूपी परमात्माके सुन्दर बगीचेसे ज्ञानके पुष्प चुननेका परिश्रम करनेवाला हो; ईश्वरी स्नेहकी कड़ीमें जुड़नेके लिये विनयके साथ श्रम करनेवाला हो, दीनता सीखने और मैंपन भूल जानेके लिये चेष्टा करनेवाला हो; जगतमें दुःख घटानेकी मिहनत करनेमें अपनी जिन्दगी बितानेवाला हो और प्रकृतिके हर एक तत्वमें ऊंचे दर्जेका तत्व चूसनेवाला तथा दूसरोंको पिलानेवाला हो। ऐसे भक्तको प्रभु 'प्रयतात्मन' कहते हैं। और ऐसे भक्तका किया हुआ अर्पण स्वीकार करते हैं।

प्रेमपूर्वक अर्पण करना चाहिये।

इसके बाद अर्पण करनेके विषयमें प्रभुकी तीसरी शर्त यह है कि जो दिया जाय वह प्रेमपूर्वक। इस दुनियामें बहुत आदमी भक्त होते हैं परन्तु उनके हृदयमें जब तक प्रेम न आवे तब तक उनके किये हुए अर्पणको प्रभु स्वीकार नहीं

करते। इसी तरह इस दुनियामें शुभ कामके लिये प्रयत्न करनेवाले भी बहुत आदमी होते हैं पर वे जब तक प्रेमपूर्वक अर्पण न करें तब तक प्रभु उनका अर्पण मंजूर नहीं करते। क्योंकि प्रभु केवल भक्ति या केवल प्रयत्नको नहीं देखते; बल्कि इन दोनोंके साथ जब प्रेम हो तभी वह अर्पण-स्वीकार करते हैं। इसलिये केवल भक्ति बस नहीं है और केवल प्रयत्न बस नहीं है; बल्कि उसके साथ प्रेमपूर्वक अर्पण होना चाहिये। तभी वह अर्पण मंजूर होता है। इसलिये हमें यह जानना आवश्यक है कि वह प्रेम कैसा होना चाहिये। इसके लिये प्रेमी सन्त कहते हैं कि प्रभुको अर्पण करते समय हरि-जनोंके हृदयमें जो प्रेम आता है उस प्रेमके समय वे जगतका ख्याल भूल जाते हैं; उस प्रेमके समय वे अपनी देहका ख्याल भूल जाते हैं; उस प्रेमके समय उनके हृदयका परदा उघड़ जाता है; उस प्रेमके समय उनका हृदय पिघल जाता है, उस प्रेमके समय वे एक प्रकारकी अलौकिक मीठी खुमारी-में होते हैं; उस प्रेमके समय उनकी रुचि प्रभुतावाली बन जाती है; उस प्रेमके समय उनकी आत्माको उड़नेका पंख मिल जाता है; उस प्रेमके समय वे प्रकृतिके साथ अभेद रूपमें आ जाते हैं और उस प्रेमके समय उनको जान पड़ता है कि अर्पण स्वीकार करनेवाला हमारा नाथ सामने खड़ा है और दी हुई वस्तु हाथसे ले रहा है। भाइयो! याद रखना कि इस प्रकारके प्रेमसे और ऐसी दशामें जो अर्पण होता है उसको प्रभु स्वीकार करते हैं और उस समय अगर सिर्फ एक पत्ता दिया हो, एक फूल दिया हो, एक फल दिया हो या एक चिल्लू पानी दिया हो तो उससे भी प्रभु प्रसन्न हो जाते हैं और देनेवालेका कल्याण कर देते हैं।

प्रभुकी प्रभुता।

यह श्लोक हमको सिर्फ अर्पणविधि नहीं सिखाता बल्कि प्रभुकी दया बताता है और उनकी प्रभुता समझाता है। कहाँ अनन्त ब्रह्माण्डका नाथ! कहाँ उसकी समृद्धि! कहाँ उसका वैभव! कहाँ उसका तेज! कहाँ उसका बड़प्पन! कहाँ उसका ज्ञान और कहाँ उसकी प्रभुता! और कहाँ एक पत्तेका अर्पण!! धन्य! धन्य! धन्य! प्रभु धन्य! उसने ऐसी सहजसे सहज चीजें अपने अर्पणके लिये पसन्द की है जो गरीबसे गरीब भक्त भी दे सकें। अगर वह प्यारा कहता कि मुझे तो सूर्य चन्द्रका अर्पण करना चाहिये, मुझे तो तीनों लोकोंका राज्य अर्पण करना चाहिये, मुझे तो नयी दुनिया अर्पण करनी चाहिये, मुझे तो जगतके सब रत्न अर्पण करना चाहिये और मुझे तो तुम्हें अपना सिर अर्पण करना चाहिये—तो भी उसकी महिमाके सामने, उसके आनन्दके सामने, उसके ज्ञानके सामने और उसके स्नेहके सामने यह कोई बड़ी बात न थी। परन्तु इसके बदले वह दयालु हमसे सिर्फ पत्ता, फूल, फल और पानी पाकर ही प्रसन्न हो जाता है और सो भी अधिक नहीं, बल्कि एक ही पत्ते, एक ही फूल, एक ही फल और एक ही चिल्लू पानीसे वह प्रसन्न हो जाता है। यही प्रभुकी दया है।

अर्पण विधिका गहरा अर्थ।

बन्धुओ! प्रभुकी इतनी बड़ी दया है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। परन्तु याद रखना कि जो आगे बढ़े हुए भक्त होते हैं, जो शुभ काममें डटे हुए प्रयत्नशील भक्त होते हैं और जो महान प्रेमी भक्त होते हैं वे कुछ ऐसे बाहरके पत्ते

और फूलके अर्पणमें ही नहीं रह जाते । वे तो यह समझते हैं कि यह श्लोक प्रभुके मार्गमें, भक्तिके मार्गमें, त्यागके मार्गमें, ज्ञानके मार्गमें और राजयोगके मार्गमें क्रम क्रमसे आगे बढ़नेका ढंग बतानेवाला है। वे सोचते हैं कि जीव जब पहले भक्तिके मार्गमें आता है तब वह कमजोर होता है और कृपण स्वभावका होता है इससे प्रभु उससे सहज और सस्तीसे सस्ती, फेंक देने योग्य चीज आपसे आप झड़ जानेवाला पत्ता माँगते हैं । अर्थात् इस जगतकी जो स्थूल वस्तुएँ हैं जो अन्तको बहुत काम नहीं आतीं और पड़ी रह जाती हैं संसारकी उन मायिक वस्तुओंका त्याग करनेको कहते हैं । इसके बाद जीवमें जब इतना बल आ जाय और वह कपड़े, पुस्तकें, खानेकी चीजें, पशु, धन तथा घर इत्यादि जड़ वस्तुओंको अर्पण कर सके तब प्रभु उसे फूल अर्पण करनेके लिये कहते हैं । पत्तेसे फूल श्रेष्ठ है। वैसे ही जगतकी जड़ वस्तुओंसे हमारी इन्द्रियाँ और मन श्रेष्ठ हैं। इसलिये बाहरका त्याग करने पर महात्मा लोग फूलकी जगह अपनी इन्द्रियाँ तथा मन अर्पण करते हैं । क्योंकि आँख, कान, नाक इत्यादि इन्द्रियाँ इस देह रूपी बागके बीच आत्माके पुष्प हैं, वे जीवात्माके पुष्प हैं और परमात्माके पुष्प हैं । इसलिये सर्वशक्तिमान महान परमात्मा ज्ञानी भक्तोंसे इस प्रकारके पुष्प माँगते है ।

जब फूल देना आ जाय तब भगवान और एक कदम आगे बढ़नेको कहते हैं और उस समय ये भक्तोंसे फूलसे जो श्रेष्ठ वस्तु फल है उसको माँगते हैं। क्योंकि फलमें बीज होता है और उससे पत्ते तथा फूल होते हैं । इसलिये पत्ते तथा फूलसे फल श्रेष्ठ है । और प्रभु हमें क्रम क्रमसे आगे

बढ़ाना चाहते हैं, इससे वह पहले हमसे पत्ता माँगते हैं, फिर फूल माँगते हैं और पीछे फल माँगते हैं। ज्ञानी भक्त पत्तेके बदले पत्तेकी सी निकम्मी जड़ वस्तुएँ अर्पण करते हैं; इसके बाद फूलोंकी जगह अपनी इन्द्रियाँ तथा मन प्रभुको अर्पण करते हैं और फिर फलकी जगह अपने अहंभावका अर्पण करते हैं। शास्त्रोंमें कहा है कि अहंकारसे सब उत्पन्न होता है। इसके सिवा जिन्होंने जगतकी मायिक वस्तुओंका त्याग कर दिया है, जिन्होंने अपनी इन्द्रियाँ जीत ली हैं और जिन्होंने अपने मनको वशमें रखा है उनमें भी अहंभाव रह जाता है। अहंकारसे मनकी, इन्द्रियोंकी तथा देहकी उत्पत्ति होती है। इसलिये अहंकार फल है और मन तथा इन्द्रियाँ इत्यादि फूल हैं। इससे फूलका अर्पण करनेके बाद फलकी जगह ज्ञानी भक्त अपने अहंभावका त्याग करते हैं अर्थात् मैंपन छोड़ देते हैं और यह अनुभव करने लगते हैं कि देह तथा इन्द्रियोंसे आत्मा भिन्न है।

पानीका अर्पण माने क्या?

इस प्रकार फलका अर्पण हो चुकने पर प्रभु पानीका अर्पण करनेके लिये कहते हैं और पानीकी जगह महात्मा लोग अपनी आत्मा अर्पण करते हैं; क्योंकि जैसे पानीका कोई आकार नहीं है वह जैसे बर्तनमें रखा जाता है वैसा आकार धर लेता है वैसे ही आत्माका कोई आकार नहीं है, वह जैसी देहमें आती है वैसे आकारकी दिखाई देती है। दूसरे, पानीसे पत्ता पैदा होता है, पानीसे फूल पैदा होता है और पानीसे फल पैदा होता है, पानी बिना ये सब चीजें नहीं हो सकतीं। वैसे ही आत्माकी सत्तासे मन, अहंकार,

इन्द्रियाँ, शरीर और जगतकी दूसरी स्थूल वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं। आत्माकी सत्ता बिना ये सब नहीं हो सकतीं। इसलिये महात्मा लोग पानीकी जगह आत्माको मानते हैं और पानी अर्पण करनेके बदले अपनी आत्मा अर्पण करते हैं। तभी धर्म्मकी परिपूर्णता होती है, तभी जन्म-मरणकी समाप्ति होती है, तभी जीवन सार्थक होता है, तभी प्रभु प्रसन्न होते हैं और तभी मोक्ष होता है। यह सब महा भाग्यशाली मनुष्योंको ही सूझता है और जो अतिशय भाग्यशाली हैं उन्हींको इसके अनुसार चलना आता है।

बन्धुओ! विचार कीजिये कि जब जगतकी सब वस्तुओं-का अर्पण करना है, जब इन्द्रियोंका अर्पण करना है, जब मन, बुद्धि, चित्त और अहंकारका अर्पण करना है और जब खास आत्माका भी अर्पण करना है, यहाँ तक कि जब यह सब अर्पण करें तभी पूरा पड़ सकता हैं तब भोजन जैसी साधारण परन्तु जिन्दगीके लिये बड़ी ही आवश्यक वस्तु अर्पण करनेमें क्या नयापन है? यह तो करना ही चाहिये। आज दिन हम अपनी अज्ञानताके कारण अर्पणका मूल्य नहीं समझते और समझते भी हैं तो बहुत कम। परन्तु—

अर्पणके लिये प्रभु क्या कहते हैं?

इसकी आपको खबर है? इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥

अ० ४ श्लो० २४

जो अर्पण है वह ब्रह्म है, जो होम करनेकी चीजें हैं वे ब्रह्म हैं, जो अग्नि है वह ब्रह्म है, जो होम करनेवाला है वह ब्रह्म

है। और इस प्रकार ब्रह्म कर्म करनेवाले ज्ञानीके जानेका जो स्थान है वह भी ब्रह्म ही है।

जब अर्पण ही ब्रह्म है और वह ब्रह्मको ही अर्पण किया जाता है तब उससे बहुत बड़ा लाभ होना क्या आश्चर्य है? कितना बड़ा लाभ है यह आप जानते हैं? इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है—

शुभाशुभफलैरेव मोक्ष्यसे कर्मबन्धनै।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥ अ० ९ श्लो० २८

जिन्दगीके सब कर्म अर्पण करनेसे अच्छे और बुरे फल देनेवाले कर्मबन्धनसे तू छूट जायगा, सच्चा संन्यासी बन जायगा। योगमें स्थिर रह सकेगा और एकदम मुक्त हो जायगा तथा मुझे पावेगा।

बताइये इससे बढ़ कर और क्या चाहिये?

भक्तोंपर भगवानकी दया।

इस श्लोकमें बहुत बड़ी खूबी है और इसमें भक्तोंपर प्रभुकी अतिशय कृपा दिखाई देती है। प्रभु कहते हैं कि तुम अब अपने जीवनके सब कर्म मुझे अर्पण कर दोगे तब कर्मके बन्धनसे मुक्त होगे। कर्म दो तरहके होते हैं—शुभ कर्म और अशुभ कर्म। शुभ कर्मका शुभ फल मिलता है और अशुभ कर्मका अशुभ फल मिलता है। जैसे खराब कर्मोंके खराब फलके कारण जीवको बन्धनमें आना पड़ता है वैसे ही अच्छे कर्मोंका अच्छा फल भोगनेके लिये भी जीवको बँधा रहना पड़ता है। अर्थात् खराब कामका बन्धन लोहेकी बेड़ी समान है और अच्छे कामका बन्धन सोनेकी बेड़ी समान है परन्तु परिणाममें दोनों बन्धन ही हैं। इससे जैसे पवित्र होनेके लिये खराब कर्मके बन्धनसे छूटनेकी जरूरत है वैसे ही मोक्ष

पानेके लिये शुभ कर्म्मके बन्धनसे भी छूटनेकी जरूरत है। इसलिये प्रभु कहते हैं कि अगर तुम अपने कर्म्म मेरे अर्पण कर दोगे तो कर्म्मके शुभ और अशुभ दोनों तरहके बन्धनसे मुक्त हो जाओगे। दोनों तरहके बन्धनसे मुक्त होने पर भी कुछ कसर रह जाती है। अर्थात् पहले किये हुए कर्म्मके बन्धनसे तो मुक्ति होगी पर जब तक देह है तब तक नये नये कर्म्म होंगे; उनका क्या होगा? इसके लिये प्रभु कहते हैं कि केवल पुराने कर्म्मके बन्धनसे नहीं छूटोगे बल्कि उसके बाद मुझे अर्पण करनेके फलसे तुम संन्यासी हो जाओगे अर्थात् तुमको नया कर्म्म नहीं करना पड़ेगा। संन्यासीको कर्म्म नहीं लगता। जिसको कर्म न लगे और जो सब कर्म्म छोड़ सके वही संन्यासी कहलाता है। संन्यासी होना ही बस नहीं है। संन्यासी हो और कर्म्मके बन्धनसे रहित भी हो पर रूखा सूखा हो तो किस कामका? इसलिये प्रभु भक्त पर अपनी कृपाकी वर्षा करते हुए कहते हैं कि कर्म्मके फलसे मुक्त करने और संन्यासी बना देनेपर उस संन्यासीकी आत्मा को मैं योगमें लगा रखता हूँ अर्थात् उसे ऐसी योगयुक्त आत्मा बना देता हूँ जिसका अखण्ड तार कभी नहीं टूटता।

बन्धुओ! प्रभुकी दया देखिये! योगयुक्त बना देनेपर भी उनको तृप्ति नहीं होती, इससे वह और अधिक कृपा करके कहते हैं कि मैं तुम्हें विमुक्त अर्थात् एकदम मुक्त कर दूँगा। मतलब यह कि अब भी अगर कुछ कचाई बाकी रह जायगी तो उसको बिलकुल दूर कर दूँगा। कचाई मिट जाय और भक्त मुक्त हो तो भी जब तक वह प्रभुसे दूर रहता है तब तक भक्तवत्सल भगवानको तृप्ति नहीं होती; इससे वह कहते हैं कि मुक्त होनेके बाद तुम मुझे पाओगे।

खानेपीनेकी चीजें प्रभुको अर्पण करनेसे क्या होता है ?

बन्धुओ! अपनी जिन्दगीके सब कर्म प्रभुको सौंप देनेका ऊपर लिखे अनुसार महान फल है। परन्तु हमारा विषय इस समय खानेपीनेका है और उसमें भी मुख्य बात यह है कि अपने खानेका पदार्थ प्रभुको अर्पण करना चाहिये। इसलिये हमें यह जानना चाहिये कि भोजनके अर्पणसे क्या फल होता है। इसके उत्तरमें प्रभु कहते हैं कि—

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।

अ० ३ श्लो० १३

यज्ञका बाकी बचा अन्न खानेवाले हरिजन सब पापसे मुक्त होते हैं।

भाइयो! प्रभुकी खूबी देखिये कि अपने पेटमें खाना, माल टाल उड़ाना और तिस पर पापसे भी मुक्त हो जाना इससे बढ़कर आनन्द और क्या है? धन्य प्रभु! धन्य तुम्हारी प्रभुताको धन्य है। हम अपने मुँहमें खाँय, स्वाद चखें, शक्ति पावें, बलिष्ठ हों, हट्टे कट्टे रहें और खानेपीनेमें ही मोक्ष! वाह प्रभु! वाह! तुम्हारी खूबीकी बलिहारी है। परन्तु यह सब कैसे होता है इसकी आपको खबर है? यज्ञसे बाकी बचा अन्न खानेसे यह सब होता है। इसलिये

यज्ञ माने क्या?

और यज्ञका बचा हुआ क्या है? यह हमें जानना चाहिये। इसके लिये महात्मा लोग कहते हैं कि अपने जीवनका कर्त्तव्य ठीक ठीक पूरा करनेका नाम यज्ञ है। आत्माको उसके असली सच्चिदानन्द स्वरूपमें ले जानेका रास्ता खोलनेका

नाम यज्ञ है; इस जगतके जीव प्रभुके बालक हैं, उनकी सेवा निःस्वार्थ भावसे करनेका नाम यज्ञ है; प्रकृतिके नियम समझने और उनका पालन करनेका नाम यज्ञ है; परमात्माने सृष्टिका जो चक्र चलाया है उसकी उन्नतिके लिये तन मन धन लगानेका नाम यज्ञ है; ईश्वरके गुप्त भेद ढूँढ़ने और उसका लाभ अपने भाइयोंको देनेका नाम यज्ञ है; जगतमें ईश्वरी स्नेह फैलानेका नाम यज्ञ है; जीवात्माके सामने जो जो परदे हैं उन्हें दूर करनेका नाम यज्ञ है; मनुष्योंकी अज्ञानतासे इस दुनियामें जो जो दुःख फैले हैं उन्हें मेटनेका उपाय करनेका नाम यज्ञ है; प्राणियोंमें ऊँचे दर्जेका ज्ञान फैलाने और उनकी दशा सुधारनेका नाम यज्ञ है और ईश्वरसे बिछुड़े हुए जीवको ईश्वरसे फिर मिला देनेका सुबीता कर देनेका नाम यज्ञ है। सारांश यह कि ऊँचा उद्देश रख कर आत्माके कल्याणके लिये प्रभुके प्रीत्यर्थ जो कुछ निष्काम कर्म किया जाय उसका नाम यज्ञ है।

यज्ञसे बाकी बचे हुएके माने क्या ?

इस प्रकार कर्त्तव्य करते हुए ईमानदारीसे जो धन मिले उसमेंसे सबको सबका भाग दे देनेके बाद जो बाकी रहे उसे आप भोगनेका नाम यज्ञसे बाकी बचा हुआ खाना कहलाता है और उसके खानेसे अर्थात् इसके अनुसार चलनेवाले सन्त सब प्रकारके पापसे मुक्त होते हैं। मतलब यह कि अपने ऊपर अपने मा-बापका, भाई-बहनोंका, बाल-बच्चोंका, कुटुम्बियोंका, मित्रोंका, राज्यका, देशका, अतिथियोंका और इस तरहके और किसीका जो हक हो वह सब हक चुकानेके बाद बची हुई चीजोंका नाम यज्ञसे बाकी बची हुई वस्तुएँ हैं और

उन्हें अपने काममें लानेसे कल्याण होता है। अगर कल्याणकी इच्छा हो तो इस प्रकार जीवन बिताना सीखना चाहिये।

'यज्ञसे बचा हुआ खानेवाला पापसे बचता है' इतना ही नहीं, इससे भी आगे बढ़कर प्रभु कहते हैं कि—

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।

'यज्ञसे बचा हुआ अमृत रूपी भाग जीमनेवाला सनातन ब्रह्मको पाता है।

प्रभुके वचनोंकी खूबी।

बन्धुओ! इसमें भी बड़ी खूबी है। रसिक कृष्ण अपने हर एक शब्दमें अलौकिक रस भरते जाते हैं, हर एक शब्दमें कुछ चमक भरा नया प्रकाश चमकाते जाते हैं, उनका हर एक शब्द किसी न किसी वृत्तिको जगाता आता है, उनका हर एक शब्द कुछ नया ज्ञान, नया स्नेह या नया जीवन देता आता है और उनका हर एक शब्द जगे हुए जीवोंके हृदयमें ऊँचे दर्जेका कोमल धक्का मारता जाता है। इसके सिवा उनका हर एक शब्द भक्तकी आत्माको परमात्माके रास्तेमें ले जानेका आकर्षण किया करता है। गीताके शब्दोंमें ऐसी खूबी है, श्रीकृष्ण भगवानके वचनोंमें ऐसा रहस्य है और धर्मके सिद्धान्तोंमें ऐसे दैवी तत्त्व हैं। इसलिये जरा और विचार करना चाहिये कि इस श्लोकमें प्रभु और विशेष बात क्या कहते हैं।

यज्ञसे बचे हुए भागकी खूबी।

यज्ञसे बचे हुए भागको प्रभु जो अमृत कहते हैं, यह विचारने योग्य विषय है। अमृत माने क्या यह आप जानते हैं? अमृत माने वह जिसका कभी नाश न हो; अमृत माने

वह जिससे अमरत्व आवे; अमृत माने स्वर्गके देवताओंके पास जो बढ़ियासे बढ़िया वस्तु है वह; अमृत माने सारे महासागरका मंथन करने पर उसमेंसे जो सबसे बढ़िया माल निकला है वह; अमृत माने वह वस्तु जिसको पानेके लिये जबसे दुनिया पैदा हुई है तबसे और जब तक दुनिया रहेगी तब तक सब आदमी तरसते हैं और तरसेंगे और अमृत माने ईश्वरकी कृपा और इससे भी आगे बढ़कर कहिये तो अमृत माने स्वयं ईश्वर। बन्धुओ! याद रखना कि यह अमृत यज्ञसे बचे हुए भागमें है। इसलिये अब हमें यह जानना चाहिये कि यज्ञसे बचे हुए भागमें ऐसा उत्तमसे उत्तम अमृत कहाँसे आ गया? बहुत आदमियोंको ऐसी शंका हो सकती है। इसके उत्तरमें जानना चाहिये कि यज्ञसे बचा हुआ जो भाग है उसमें एक प्रकारकी शान्ति है, उसमें एक प्रकारका आनन्द है, उसमें अपने कर्त्तव्य पालनका एक प्रकारका सन्तोष है, उसमें एक प्रकारका आत्मिक ढारस है, उसमें एक प्रकारका छिपा हुआ गहरा रहस्य है, उसमें कई प्रकारकी खूबियाँ हैं और उसमें हम जितना सोच सकते हैं, मान सकते हैं तथा कल्पना कर सकते हैं उससे कहीं अधिक तत्त्व है। यज्ञ करनेके बाद और सबको सबका भाग दे देने पर जो बाकी बचता है वह अमृत कहलाता है। इतने अधिक तत्त्वोंके मिलने पर उसमेंसे अर्क रूपी जो अन्तिम वस्तु निकले उसका अमृत रूप होना कुछ नयी बात नहीं है और जिसको ऐसा अमृत मिले उसे ब्रह्मके मिलनेमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इसलिये ऐसा अमृत पानेकी कोशिश कीजिये।

बन्धुओ! प्रभुकी प्रभुता देखी? अजी! उस रसीलेका रस तो देखिये! उस आनन्दस्वरूपका आनन्द तो देखिये!

उस प्रेमस्वरूपका प्रेम तो देखिये और प्रभुकी जरा प्रभुता तो देखिये कि छोटीसे छोटी चीजमें भी बड़ेसे बड़ा तत्त्व रख कर वह आप ही आप हाजिर हो जाता है और जगतकी हर एक वस्तुमें जरा अधिक गहरे जाने पर वह आप रूप सामने खड़ा दिखाई देता है !! इस प्रकार जब जगतकी हर वस्तुमें वह प्रत्यक्ष हो सकता है तब यज्ञके अमृतमें वह दिखाई दे और उस अमृतके चखनेवालेको मिले तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? परन्तु यह सब कैसे होता है? हम अपने जीवनके कर्म प्रभुको अर्पण करें और यज्ञसे बचा हुआ खायँ तब यह सब होता है। इसलिये हमें अपने खानेपीनेकी चीजें प्रभुको अर्पण करना सीखना चाहिये।

खराब चीजें प्रभुको अर्पण नहीं की जातीं।

इससे हमने यह भली भाँति जान लिया कि अपने खाने पीनेकी चीजें प्रभुको अर्पण करना चाहिये। परन्तु इतना ही बस नहीं है। इसके बाद भी और बहुत कुछ जाननेको बाकी रहता है। यह बात सच है कि अपने खाने पीनेकी चीजें प्रभुको अर्पण करना चाहिये परन्तु इसमें इतना ख्याल रखना चाहिये कि सब वस्तुएँ प्रभुको अर्पण नहीं की जा सकतीं। क्योंकि हमारी खुराकमें कितनी ही चीजें रजोगुणी होती हैं, कितनी ही चीजें तमोगुणी होती हैं और कितनी ही चीजें मलिन होती हैं तथा कितनी ही चीजें बिना शुद्ध भावनाके होती हैं। ऐसी वस्तुएँ प्रभुको अर्पण नहीं की जा सकतीं। किसी भलेमानसको भी कोई खराब चीज नहीं भेट की जाती। जैसे—किसी नौकरका मालिक बहुत बड़ा आदमी हो, बहुत भला आदमी हो और वह उस नौकर पर बहुत बड़ी कृपा

रखकर उसे आगे बढ़ाता हो और नौकर एक पैसेमें पाँच आये हुए सड़े, बू करते हुए आम उसे भेट देने जायं तो उसको कैसा लगेगा? जरा विचार कीजिये। यह भेट नहीं कहलायगी बल्कि उलटे उसका अपमान कहलायगा। अनन्त ब्रह्माण्डके नाथको खराब चीजें अर्पण करना इससे भी खराब है। इसलिये इस बातका खास ख्याल रखना चाहिये कि कोई खराब चीज प्रभुके अर्पण न हो जाय। प्रभुको उसकी प्रभुताका ख्याल करके उसके बड़प्पनके अनुसार अपनेसे बन पड़नेवाली चीजें अर्पण करना चाहिये। इसके लिये खाने पीनेकी चीजोंके गुण दोष तथा उनके भेद जानना चाहिये। यह जाननेके लिये भी हमें कुछ दूर नहीं जाना पड़ेगा। प्रभु ऐसे कृपालु हैं कि उन्होंने हमारे जीवनके उपयोगी सब तत्त्व और सब नियम श्रीमद्भगवद्गीता द्वारा हमसे कह दिये हैं। इसलिये कहीं दूर न जाकर आहारके भेद समझनेके लिये हमें गीतामें ही जाँच पड़ताल करनी चाहिये। जाँच पड़तालसे पता लगता है कि—

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।

अ० १७ श्लो० ७

आहार जो सबका प्यारा है वह तीन प्रकार का है।

आहारके भेद।

पहला प्रकार यह है—

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धना।
रस्या स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः॥

अ० १७ श्लो० ८

जिन वस्तुओंसे आयु बढ़े, सत्त्व बढ़े, बल बढ़े, आरोग्य

बढ़े, सुख बढ़े और स्नेह बढ़े तथा जो वस्तुएँ रसवाली हों, तरावटवाली हों, बहुत समय तक रहनेवाली हों और हृदय-को रुचनेवाली हों वे खानेपीनेकी चीजें सत्वगुणी मनुष्योंको प्रिय होती हैं।

इसके बाद प्रभु बताते हैं कि रजोगुणी स्वभावके मनुष्यों-को कैसी चीजें रुचती हैं।

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥

अ० १७ श्लो० ९

बहुत तीखे, बहुत खट्टे, बहुत गर्म, बहुत जल्द असर करनेवाले (तेजाब, सिरका, दारू इत्यादि) रूखे, जलन पैदा करनेवाले तथा जिनके खानेसे दुःख होता है, शोक होता है और रोग होता है वे पदार्थ रजोगुणी मनुष्योंको रुचते हैं।

इसके बाद प्रभु बताते हैं कि तमोगुणी मनुष्योंको कैसी चीजें रुचती हैं—

यातयाम गतरस पूति पर्युषित च यत्।
उच्छिष्टमपि चामेध्य भोजनं तामसप्रियम्॥

अ० १७ श्लो० १०

बासी, नीरस, अरुआया (सड़ा) या दुबारा रांधा हुआ या स्वाद फिरा हुआ। जूठा और देवताओंके काम न आने वाला भोजन तामसी आदमियोंको रुचता है।

बन्धुओ! जो हरिजन खानेपीनेके विषयमें यह भेद सम-झते हैं वे स्वयं सत्वगुणी वस्तुएँ खाते पीते हैं और अपने प्रभुकी महिमा याद कर उनके नामसे उनके लिये उनके बालकोंको सत्वगुणी वस्तुएँ अर्पण करते हैं।

खानपानमें नियमितपन रखना चाहिये।

इतना जान लेने पर भी आगे बढ़े हुए हरिजनोंको ऐसा लगता है कि अभी इस विषयमें हमें कुछ और जानना चाहिये। क्योंकि सत्वगुणी पदार्थ खाना और सत्वगुणी चीजें प्रभुको अर्पण करना ही बस नहीं है। इसमें किसी दिन कम और किसी दिन अधिक हो जाता है। ऐसा न होने देनेके लिये सत्वगुणी पदार्थ खानेके साथ साथ नियमितपन भी रखना चाहिये। जब तक खानपानमें नियमितपन न हो तब तक योग सिद्ध नहीं हो सकता। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकांतमनश्नतः।

अ० ६ श्लो० १६

न तो बहुत खानेवालेका योग-सिद्ध होता है और न एक दम भूखे रहनेवालेका योग सिद्ध होता है। परन्तु

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा॥

अ० ६ श्लो० १७

जिसका खानपान उचित तौर पर हो, जिसका भोग-विलास नियमपूर्वक हो, जिसके कामकाजमें नियमितपन हो और जिसका सोना तथा जागना समानभाव से हो उसीका योग दुःख नाश करनेवाला होता है।

योग सिद्ध करनेका उपाय।

बन्धुओ! इस श्लोकमें भी कुछ खूबी है। क्योंकि हर एक श्लोकमें और हर एक शब्दमें कुछ खास रसिकता, खास चमक, खास प्रकाश और बहुत गूढ़ अर्थ रख देना

महाज्ञानी महात्मा श्रीकृष्ण भगवानका ही काम है और उसमें भी यह श्लोक तो बड़े ही महत्वका है। इसलिये इसका रहस्य हमें ढूँढ़ना चाहिये। ढूँढ़नेसे इसका युक्त शब्द बहुत विचारणीय जान पड़ता है क्योंकि इसका बड़ा गूढ़ अर्थ है। जैसे—युक्त माने वाजिबपन, युक्त माने नियमितपन; युक्त माने मध्यमपन; युक्त माने जैसा होना चाहिये वैसा, युक्त माने देश कालको समझ कर किया जानेवाला काम; युक्त माने अपनी स्थिति तथा इर्दगिर्दका संयोग विचार कर किया जानेवाला काम; युक्त माने अपने शरीरका, प्रकृति, का तथा आदतका विचार कर किया जानेवाला काम; युक्त माने शास्त्रके हुक्मके मुताबिक और प्रभुकी आज्ञानुसार किया जानेवाला काम; युक्त माने महात्माओंकी इच्छानुसार तथा हरिजनोंके अनुभवके अनुसार किया जानेवाला काम और युक्त माने अपने अन्तःकरणकी प्रेरणाके अनुसार तथा अपनी आत्माके हुक्मके अनुसार किया जानेवाला काम। इन सब बातोंको ध्यानमें रखकर जैसा उचित जान पड़े वैसा खाना पीना चाहिये। इस प्रकारके युक्तपनसे ही दुःख मिटानेवाला योग होता है। इसलिये खानेपीनेके विषय पर जितना अधिक ध्यान दें और इस विषयमें जितनी अधिक सावधानी रखें उतना ही लाभ है और इसमें जितनी लापरवाही रखें उतना ही नुकसान है; क्योंकि इसमें लापरवाही रखनेसे योग नहीं सिद्ध होता और योगका सिद्ध न होना कितना बड़ा नुक-सान है यह आप जानते हैं?

योग माने क्या।

इसकी आपको खबर है? प्रभुने यहाँ पर "दुःख नाश करने

थाला योग" शब्द कहा है। इसका अर्थ आप जानते हैं? इसके लिये महात्मा लोग कहते हैं कि इस जगतमें अनेक प्रकारके दुःख हैं। जैसे—शरीरका दुःख, धनका दुःख, व्यवहारके जंजालका दुःख, मनका दुःख, इच्छानुसार न होनेका दुःख, विरुद्ध स्वभावके मनुष्योंके पल्ले पड़नेका दुःख, मनमें होनेवाली अनेक प्रकारकी इच्छाओं, तृष्णाओं तथा आशाओंके पूर्ण न होनेका दुःख, लोकाचारके रिवाजोंका दुःख, दस्तूरकी गुलामीका दुःख, राज्यके कितने ही असुविधाजनक कानूनोंका दुःख, धर्मके कितने ही तरहके बन्धनोंका दुःख और नरकका दुःख तथा परमात्मासे बिछुड़े रहनेका दुःख। ऐसे ऐसे अनेक दुःखोंमें मनुष्य बँधे हुए हैं। उन सब दुःखोंसे छुड़ानेवाला योग है और वह योग "युक्ताहार विहारस्य" से होता है। इसलिये खानेपीनेके विषयमें हमें खास सम्हाल रखनी चाहिये। योग माने क्या यह आप जानते हैं? महात्मा लोग कहते हैं कि योग माने जुड़ जाना। किसके साथ? और किसीके साथ नहीं, परम कृपालु पिता सच्चिदानन्द परमात्माके साथ। योग माने आत्मा और परमात्मामें जो इस समय जुदाई है उसको मिटा कर दोनोंका एक हो जाना; योग माने चित्तकी सब वृत्तियोंको रोक देना; योग माने आत्माको उसका स्वाभाविक आनन्द भोगनेकी स्थितिमें ले जाना; योग माने इस स्थूल जगतको छोड़कर हृदयके नये सूक्ष्म जगतमें जाना; योग माने अमरत्व पानेकी कुंजी और योग माने जगतके सब प्रकारके दुःखोंसे बचनेका असलीसे असली और श्रेष्ठसे श्रेष्ठ उपाय। ऐसा महान योग खानपानमें नियमितपन रखनेसे होता है। इसलिये हमारे सब भाई बहनोंको खानेपीनेमें संयम रखना सीखना चाहिये। खानेपीनेमें बदपरहेजी करके

इतना बड़ा लाभ खोना कितना खराब है इसका विचार हर एक हरिजनको करना चाहिये और इस किसकी भूलमें पड़े रहनेसे बचना चाहिये।

खानेमें नियमितपन रखनेसे लाभ।

खानेपीनेमें नियमितपन रखनेके लिये इतना कह आने पर भी भक्तों पर दया होनेके कारण प्रभुको तृप्ति नहीं होती। इससे श्रीमद्भगवद्गीतामें जो बारह तरहके मुख्य यज्ञ गिनाये हैं इनमें नियताहारा अर्थात् खाने पीनेमें नियम पूर्वक रहना भी रखा है। अर्थात् इसको भी यज्ञ माना है। यज्ञका फल कितना बड़ा है यह पहले कहा जा चुका है इसलिये फिरसे कहनेकी जरूरत नहीं है।

बन्धुओ! इसमें भी जानने योग्य खूबी है और इसमें भी प्रभुकी खास दया है। क्योंकि खाने पीनेमें नियमसे रहनेसे पैसा बचता है, समय बचता है, शरीर अच्छा होता है, रोग-से बचाव होता है, विकारोंसे बचाव होता है, बुढ़ापेके दुःख-से बचाव होता है, लम्बी आयु मिलती है, सद्बुद्धि रहती है और अच्छे कर्म किये जा सकते हैं। यह सब निजका लाभ है तिस पर भी नियमसे खानेको प्रभु यज्ञ समझें और हमारी आत्माका कल्याण करनेके लिये इसीसे यज्ञका फल दें तो इससे बढ़कर दया और क्या होगी? बन्धुओ! प्रभुकी प्रभुता तो देखिये! धन्य है प्रभु! तुझे धन्य है। तू तो तू ही है।

मिताहारी होनेका प्रभुका हुक्म।

ये सब नियम जाननेके बाद भी खानेपीनेके विषयमें और कुछ जाननेको रह जाता है। अर्पण विधि हो और नियमितपन हो परन्तु मिताहार न हो तो उतनी कसर रह जाती

है। बहुत आदमी नियमितपन रखते हैं अर्थात् समय पर भोजन करते हैं और अपनी आदतके मुताबिक तथा अपनी रुचिके अनुसार जितना सदा खाते हैं उतना ही खाते हैं पर वह मिताहार नहीं कहलाता। मिताहार और चीज है और नियमितपन और चीज है। इसलिये केवल नियमितपन बस नहीं है, बल्कि उसके साथ मिताहार भी चाहिये। तभी काम सिद्ध होता है। इसके लिये गीताके अठारवें अध्यायके बावनवें श्लोकमें प्रभुने कहा है कि लध्वाशी अर्थात् थोड़ा खाने और सादी खुराक खानेसे अन्तको ब्रह्म रूप बन सकते हैं। इसलिये हमें मिताहारी होना सीखना चाहिये।

मिताहार माने क्या ?

बन्धुओ ! मिताहार माने सिर्फ थोड़ा खाना नहीं है; यह तो साधारण अर्थ है। इसके विशेष अर्थमें कितने ही विषय आ जाते हैं। जैसे—मिताहार माने थोड़ा खाना; मिताहार माने हलकी खुराक लेना, मिताहार माने नियमसे खाना, मिताहार माने सत्वगुणी पदार्थोंका सेवन करना; मिताहार माने अपने परिश्रमसे मिला हुआ खाना; मिताहार माने ईमानदारीकी कमाई खाना; मिताहार माने अपने भाइयोंका भाग देनेके बाद जो बचे उसे खाना; मिताहार माने अपना कर्त्तव्य पालन करने पर उसके परिश्रमके इनामके तौर पर जो खाया जाय वह; मिताहार माने जब सचमुच भूख लगे तब खाना; मिताहार माने अपनी जठराग्निके अनुसार खाना; मिताहार माने वह खुराक खाना जो अपने अन्तःकरणके विचारके विरुद्ध नहो; मिताहार माने वह खुराक खाना जो अपने शरीरके अनुकूल हो और मन बुद्धिको लाभ पहुँचावे

और मिताहार माने प्रभुके अर्पण की हुई खुराक प्रभुको हाजिर नाजिर जानकर आत्माकी उन्नति होने योग्य विधि से खाना। यों देशकालके अनुसार और अपनी हैसियतके अनुसार तथा भगवद् इच्छाके अनुसार जो खाया पिया जाता है वह लघ्वाशी अर्थात् मिताहार कहलाता है और जब यह सब ध्यान रखकर यह विषय सिद्ध किया जाय तब ब्रह्म प्राप्त हो सकता है। इसलिये सब भाई बहनोंको खानेपीनेके बारेमें जहाँ तक बने ऐसे ऐसे उत्तम नियम पालनेकी कोशिश करनी चाहिये और जहाँ तक बने मिताहारी होना चाहिये।

हम मिताहारी क्यों नहीं होते ?

बन्धुओ! हम सब लोग जानते हैं कि मिताहारसे बहुत लाभ हैं और हम सबको मिताहारी होना चाहिये। तिस पर भी हम मिताहारी नहीं हो सकते। इसके कारण आप जानते हैं? कारण जानने योग्य है? इसके लिये कहा है कि

* १. बचपनसे ही हम लोगोंको अधिक खा लेनेकी आदत पड़ गयी है।

२. हम लोग यह समझते हैं कि अधिक खानेसे शरीरमें अधिक शक्ति रहती है इससे चाह कर अधिक खाते हैं।

३. कितनी ही चीजें मुद्दत बाद मिलती हैं इससे हम लोग उन चीजोंको चाह कर अधिक खा लेते हैं।

४. कितनी ही चीजें विशेष रुचती हैं इससे उन्हें अधिक खा जाते हैं।

५. कोई कोई चीजें कभी कभी बहुत बढ़िया बन जाती हैं इससे उन चीजोंको ठूस ठूस कर खाजाते हैं।

* "स्त्रियोंका स्वर्ग" से।

६. कितनी ही वार दूसरोंके आग्रहसे अधिक खा लेते हैं।

७. कभी कभी देरसे भोजन मिलता है इससे अधिक देर हो जानेसे बहुत भूख लगी है समझ कर अधिक खा लेते हैं।

८. कभी समयसे पहले खाना पड़े तो इस ख्यालसे अधिक खा लेते हैं कि फिर जल्द भूख न लग जाय।

९. कितनी ही चीजोंको बहुत पुष्टिकारक समझ कर चाहसे अधिक खा लेते हैं।

१०. कितनी चीज़ोंके बारेमें यह समझते हैं कि इनके अधिक खा जानेसे कुछ नुकसान नही होता इससे अधिक खा जाते हैं।

११. कितनी ही चीजें बहुत अच्छी और सस्ती होती हैं इससे उन्हें अधिक खा लेते हैं।

१२. कितनी ही चीजें अपने पास कुछ अधिक होती हैं पर किसीको दे देने या फेंक देनेको जी नहीं चाहता, इससे ठूस ठास कर अधिक खा लेते हैं।

१२. जब खाने बैठते हैं तब जब तक थोड़ा बहुत अधिक न खा जायँ तब तक प्रायः सब आदमियोंको यह ख्याल नहीं रहता कि हम अधिक खाते हैं; इससे अधिक खा लेते हैं।

१४. जो लोग अधिक खाते हैं उनके साथ हम अपनी खुराककी तुलना किया करते हैं इससे हमें अपनी खुराक थोड़ी मालूम होती है जिससे हम अधिक खानेका उपाय किया करते हैं।

१५. बहुत आदमियोंके जीमें यह वहम घुसा रहता है कि फलाने रोगके कारण या फलाने कारणसे हम पूरी खुराक नहीं खा सकते, इस वहमसे वे अधिक खानेकी हवस किया करते हैं।

१६. हम जब खाने बैठते हैं तब कितना खाते हैं इसको देखते हैं। जैसे एक लड्डू, चार पूरियाँ, दो रोटियाँ, दो करछी भात, एक कटोरी दाल, सात पकौड़िया, थोड़ी तरकारी और थोड़ा अंचार देखकर खाते हैं परन्तु अपनी जठराग्निका ख्याल करके नहीं खाते; इससे जरूरतसे ज्यादा खा जाते हैं।

ऐसे ऐसे कितने ही कारणोंसे हम सब सदा बहुत अधिक खा लेते हैं। इसीसे बीमार पड़ते हैं और इसीसे असमय मर जाते हैं। तो भी यह भूल सुधारनेकी चेष्टा नहीं करते। हम समझ नहीं सकते कि थोड़ा खाना किसे कहते हैं और अधिक खाना किसे कहते हैं। इससे अधिक खा जाने पर भी हम यही समझते हैं कि कम खाया है। जैसे—

अधिक खाना कब कहलाता है और कम खाना कब कहलाता है?

*"एक बार पंचवटीमें एकादशीके दिन हमने चार साधुओंको फलाहार कराया। एक साधुने दस तोले बरफी खायी, दूसरेने बीस तोले खायी, तीसरेने चालीस तोले खायी और चौथेने अस्सी तोले खायी। दूसरे दिन हमने उन चारोंको द्वादशीका पारन करनेको बुलाया। बातचीतसे मालूम हुआ कि जिसने सिर्फ दस तोले बरफी खायी थी वह आदमी बीमार पड़ गया था; क्योंकि उसे चीनी नहीं पचती थी और जब चीनीकी मिठाई वह खाता था तो उसे तुरत खाँसी हो जाती थी। वह बहुत दिनोंसे बीमार था। इससे पाँच तोलेसे अधिक नहीं खा सकता था। तो भी यह सुनकर कि बरफी

* "स्त्रियोंका स्वर्ग" से।

अच्छी है और कुछ हर्ज नहीं करेगी तथा बाकी तीन आदमियोंको अपनेसे अधिक खाते देखकर उसने जबरदस्ती दस तोले बरफी खा ली थी और इससे वह बीमार पड़ गया था। जिसने बीस तोले बरफी खायी थी उसने कहा कि मैंने अपनी खुराक भर खायी थी इससे मुझे कुछ कष्ट नहीं हुआ। जिसने चालीस तोले खायी थी उसने कहा कि मुझे अभी भूख नहीं लगी है और पेट भारी मालूम देता है; एक दस्त आ जाय तो पेट खुलासा हो जाय। इसका कारण यह है कि बरफी बहुत अच्छी थी इससे तथा दूसरोंकी देखादेखी मैंने दो टुकड़े बरफी अधिक खा ली। इससे अजीर्ण हो गया है। इसके बाद जिसने अस्सी तोले बरफी खायी थी उससे पूछा कि तुम्हारा क्या हाल है तो उसने कहा कि मेरा पेट तो बिलकुल साफ हो गया है और मुझे बड़ी भूख लगी है; क्योंकि मेरा आहार सरकारी तौलसे डेढ़-सेरका है परन्तु ये सब दो ही चार टुकड़ेमें हाथ उठा बैठे इससे मैं शरमा गया। शरमाते शरमाते भी सेर पक्का बरफी तो उड़ा ही गया। लेकिन इतनेसे मेरा क्या होता? इससे मुझे तो रातको ही भूख लग गयी। इस समय मैं बड़े आनन्दसे खाऊँगा। यह कहकर उसने अपनी पत्तलमें पहले ही चार लड्डू रखवाये।

अब विचार कीजिये कि इन चारोंमेंसे किसका खाना अधिक कहलायगा और किसका कम? अगर खुराकके वजनका ख्याल करें तो यह कहना होगा कि जिसने दस तोले खाया उसने सबसे कम खाया। परन्तु जठराग्निको देखें तो यह मालूम होता है कि जिसने अस्सी तोले खाया उसने सबसे कम खाया और जिसने दस तोले खाया उसने सबसे अधिक खाया। क्योंकि जिसे एक सौ बीस तोले

वजनकी खुराक पचानेकी शक्ति थी उसने सिर्फ अस्सी तोले खाया अर्थात् अपनी पाचन शक्तिसे चालीस तोले कम खाया। इसलिये उन चारोंमें उसने सबसे कम खाया। और जिसे पाँच तोले पचानेकी शक्ति थी उसने दस तोले अर्थात् उससे दूना खा लिया। इसलिये सिर्फ दस तोले खाने पर भी उसने सबसे अधिक खाया। इसी तरह हम भी दूसरोंके मुकाबिले कम खाते हों तो भी अपनी जठराग्निके हिसाबसे बहुत अधिक खा जाते हैं और इससे प्रायः सब प्रकारके रोग पैदा होते हैं। इसलिये जैसे बने वैसे हमें अपने खानपानमें सम्हाल रखनी चाहिये। खानपान जीवन भरके लिये हर रोजकी बात है; अगर उसमें थोड़ी थोड़ी भूल हो तो भी हर रोजकी भूल थोड़े समयमें बहुत बड़ी हो जाती है और अन्तमें प्राण ले लेती है। इससे बचना चाहिये। क्यों? यह बात समझमें आती है कि नहीं? सेठने कहा कि बहुत सच है। तुम जैसा कहते हो वैसा ही है और बहुत दुरुस्त है तो भी ये बातें आपसे आप समझमें नहीं आतीं। तुमने समझा दिया बहुत अच्छा किया। अबसे मैं खानेपीनेमें बहुत सम्हाल रखूँगा।"

इतना ही नहीं कि हम अधिक खा लेते हैं, बल्कि हम समय पर भी नहीं खाते और भूख लगनेसे ही नहीं खाते परन्तु इर्द गिर्दके संयोगोंके कारण अबेर सबेर खा लेते हैं। जैसे—

हम किस लिये खाते हैं?

*महाराज जीने कहा—क्या तू यह समझती है कि जब सचमुच भूख लगती है तभी हम लोग खाते हैं? नहीं बेटी! ऐसा नहीं है। हम लोग खानेका समय हो आनेके कारण खाते

* "स्त्रियोंका स्वर्ग" से।

हैं; अर्थात् भूख लगनेके कारण नहीं खाते बल्कि खानेका समय हो जानेसे खाते हैं। नौ बजे, दस बजे, ग्यारह बजे या बारह बजे जब हमारे जीमनेकी आदत पड़ जाती है उस समय उस आदतके कारण हम खाते हैं, कुछ भूख लगनेके कारण नहीं खाते। रसोई तय्यार हो गयी है अब देर करनेसे ठंढी हो जायगी और स्वाद बिगड़ जायगा यह सोचकर हम जीमनेकी जल्दी करते हैं, कुछ बहुत भूख लगनेके कारण नहीं। लड़केको दस बजे स्कूल जाना है, पतिको ग्यारह बजे आफिस जाना है और सासने कल एकादशीका उपवास किया है इसलिये सबेर सबेर खिला दिया जाता है कुछ सबेर सबेर भूख लगनेके कारण नहीं। बिरादरीके भोजमें चार बजे जीमनेका रिवाज है तो उस रिवाजके कारण हम बिरादरीके भोजमें चार बजे जीमने जाते हैं, कुछ भूख लगनेके कारण नहीं जाते। हमारे हित मित्र प्रसङ्गवश अपने घर हमें जीमनेको बुलाते हैं और चाहे जितने बे वक्त हमें जीमनेको बिठाते हैं; उस समय जो हम खाने बैठते हैं वह कुछ अपनी भूखका ख्याल करके नहीं बल्कि उनके मानकी खातिर तथा शिष्टाचारसे खाने बैठते हैं। इर्द गिर्दके संयोगोंके अनुसार हम यह सोचते हैं कि अमुक समय पर हमें भूख लगनी चाहिये इससे अपने मनके विश्वासकी खातिर हम खाते हैं कुछ कड़कड़ाती भूख लगनेसे नहीं खाते। इसी प्रकार, धर्म-के बन्धनसे, रिश्तेदारोंके लिहाजसे और अपने सुबीतेके कारण तथा कुछ लाभके लोभसे हम अबेर सबेर जीमते हैं, कुछ भूखके कारण नहीं जीमते। और ऐसा कभी कभी ही नहीं होता बल्कि धनिकोंके घर महीनेमें सत्ताईस दिन ऐसा अंधेर होता है, साधारण लोगोंके यहाँ महीनेमें बीस दिन

ऐसी पोल रहती है और, गरीबोंके यहाँ महीनेमें पन्द्रह दिन ऐसा गड़बड़ाध्याय चलता है। क्यों बेटी! यह बात समझमें आती है कि नहीं?

हम जून पर नहीं खाते।

*"महाराजजीकी यह बात सुनकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। क्योंकि मैं खुद ऐसे अन्धकारमें थी और तो भी अपने मनमें यह समझती थी कि जब भूख लगती है तभी खाती हूँ। मैंने पण्डित जीसे कहा कि आपने लाख रुपयेकी बात कही। सचमुच ऐसा ही है। आज ही मेरी मौसीने लड़कोंको जीमनेके लिये बुलाया था। ग्यारह बजेका समय दिया था और दो बजे भोजन हुआ। लड़कोंके रोज जीमनेका समय दस बजे है तो भी मैंने सोचा कि ग्यारह बजे ही सही, एक घंटा किसी तरह चल जायगा। परन्तु ग्यारहके बदले बारह बज गये तो भी वहाँ कुछ ठिकाना न था, इससे बारह बजे लड़कोंने कुछ कलेवा किया। इसके बाद एक बजे मौसी बुलाने आयी और बोली कि लड़कोंको झटपट भेजो। मैंने लड़कोंसे कहा कि आओ, खा आओ। लड़कोंने कहा कि हमने तो अभी खाया है इससे भूख नहीं है हम नहीं जायँगे। सुनते ही मौसी झल्ला उठी और मुझसे बोली कि तूने लड़कोंको खिला क्यों दिया? क्या तू नहीं जानती थी? भोज भातमें थोड़ी अबेर सवेर हो ही जाती है इससे क्या घर खा लिया जाता है? हाँ हाँ तुम लोग बड़े आदमी ठहरे, मुझ गरीबनीके घर खाने जाना तुम्हें कैसे अच्छा लगेगा? अच्छी बात है। लेकिन आज तू नहीं जायगी तो कल तेरे घर कौन आवेगा? इस

* "स्त्रियोंका स्वर्ग" से।

प्रकार भला बुरा कहने लगी और उसको बड़ा दुःख लगा। तब मैंने लड़कोंसे कहा कि तुम लोगोंको मौसीके घर जाना होगा। भूख न लगी हो तो भी जो रुचे वही दो एक कौर खाकर चले आना पर बिना गये नहीं बनेगा। यह कहकर मैंने जबरदस्ती लड़कोंको जीमनेके लिये भेजा। उन लोगोंको जरा भी भूख न थी, पर क्या किया जाय? दुनियाका दस्तूर तो मानना होगा!

महाराजने कहा—तुम्हारे दस्तूर तुम्हें मुबारक हों। मगर इस दस्तूरका फल क्या है इसकी कुछ खबर है? इस दस्तूरका फल है बीमारी; इस दस्तूरका फल है शरीरकी खराबी; इस दस्तूरका फल है नालायकी; इस दस्तूरका फल है दीया लेकर कुएमें गिरना और इस दस्तूरका फल है अनमोल जीवन घटाना। इसलिये मेरा तो यह विचार है कि किसीको लात मारना जितने बड़े पापका काम है उससे कहीं बड़ा पाप किसीको बे समय खिलाना है। क्योंकि मामूली लात मारनेसे कोई भयंकर रोग नहीं पैदा होता पर बे समय खानेसे कितने ही आदमियोंको असाध्य रोग हो गये हैं और होते हैं। इसलिये अपने बच्चोंको किसी कारणसे लात मारी जाय तो यह पाप किसी तरह माफ भी हो सकेगा पर बे जून खिलाकर उनका शरीर रोगी बना दिया हो और उनकी जिन्दगी घटा दी हो तो यह पाप सहजमें क्षमा नहीं हो सकेगा।"

क्यों मिताहारी होना चाहिये ?

बन्धुओ! यह न समझना कि मिताहारके लिये ये सब बातें गढ़ गढ़कर या अत्युक्ति करके कही जाती हैं, बल्कि वैद्यकशास्त्र कहता है कि मिताहारी होना चाहिये; अर्थशास्त्र कहता

है कि मिताहारी होना चाहिये; नीतिशास्त्र कहता है कि मिताहारी होना चाहिये; महात्मा लोग कहते हैं कि मिताहारी होना चाहिये; हमारी प्रकृति कहती है कि हमें मिताहारी होना चाहिये; हमारा अन्तःकरण कहता है कि हमें मिताहारी होना चाहिये; हमारा निजका अनुभव कहता है कि हमें मिताहारी होना चाहिये और धर्मशास्त्र कहता है कि हमें मिताहारी होना चाहिये। यहाँ तक कि खास प्रभुका यह हुक्म है कि हमें मिताहारी होना चाहिये। इसलिये भाइयो और बहनो! अगर ज़िन्दगी सुधारनी हो और खाते पीते नाचते कूदते, गाते बजाते, हँसते खेलते मोक्ष लेना हो तो मिताहार रखना—कर्त्तव्य पालन करके उससे बचा हुआ खाना और ब्रह्मार्पण करना सीखना। तब आसानीसे उन्नति कर सकेंगे।

भाइयो! यह सब जान लेनेपर भी खाने पीनेके विषयमें हम लोगोंसे वारंवार तरह तरहकी भूलें होना सम्भव है। उन भूलोंसे बचनेके लिये गीताके ग्यारहवें अध्यायके बयालीसवें श्लोकमें जैसे अर्जुनने माफी माँगी है वैसे हमें भी खाने पीनेके विषयमें जो भूल हो उसके लिये शुद्ध अन्तःकरणसे दीनतापूर्वक प्रभुको माफी माँगनी चाहिये और प्रार्थना करनी चाहिये। प्रार्थना किस रीतिसे करनी चाहिये? यह बात इस पुस्तककी नवीं पैड़ीमें आ गयी है इसलिये यहाँ फिरसे लिखनेकी ज़रूरत नहीं है।

सारांश यह कि खाने पीनेके इन सब नियमोंको जानकर उनपर चलनेकी कोशिश कीजिये और ऐसा कीजिये कि इससे आत्माका कल्याण हो और परमात्मा प्रसन्न हो।

ऊपर लिखे अनुसार खानपानके बारेमें जो आदमी अपने

मन पर अंकुश रखना सीखता है, उसकी दूसरी इन्द्रियाँ भी धीरे धीरे वशमें होती जाती हैं और सद्विचार आते जाते हैं। ऐसे हरिजनके जीमें यह ख्याल उठता है कि हमें निद्राके विषयमें भी कुछ सुधरना चाहिये। ऐसा ख्याल उठनेका कारण यह है कि आहारके साथ नींदका सम्बन
जो मिताहारी होकर सत्वगुणी खुराक खाता है
आपसे आप घट जाती है जिससे उसका मन नि
रखनेका होता है। इसलिये आगे बारहवीं
विषयमें जानने योग्य बातें कही जायँगी।

बारहवीं पैड़ी।

निद्राके विषयमें।

हमारी जिन्दगी पर जो जो विषय बहुत अधिक असर करते हैं उनमें आहारके बाद दूसरा नम्बर निद्राका है, क्योंकि हमारी जिन्दगीका तीसरा भाग नींदमें चला जाता है। इस-लिये हमें नींद सम्बन्धी जरूरी बातें जरूर जाननी चाहियें। इस पर विचार करनेसे पहला प्रश्न यह खड़ा होता है कि—

नींद माने क्या ?

इसके उत्तरमें पण्डित लोग यह कहते हैं कि नींद माने मृत्युकी छोटी बहन; नींद माने जिन्दगी लूट लेनेवाली राक्षसी; नींद माने प्राणियोंको बेहोश करनेवाला एक तरहका नशा; नींद माने जिन्दगीके अन्दर छोटी सी नकली मौत लानेवाला जादू; नींद माने आत्माका बल दबा देनेवाली एक महाशक्ति; नींद माने जगतका बाहरी होश भुला देनेवाली प्रकृतिकी एक कला और नींद माने परमात्मासे आत्माको बिछुड़ा देने वाली बला।

नींदसे नुकसान समझनेवाले विद्वान नींदको ऐसा कहते हैं। नींदसे लाभ समझनेवाले विद्वान कहते हैं कि—

नींद माने थकावट मिटानेवाली महाशक्ति; नींद माने व्यवहारके जंजालसे तपे हुए जीवोंको शान्ति देनेवाली ईश्वर-की कृपा; नींद माने अनेक प्रकारके दुःख शोक घटानेवाली एक तरहकी कुदरती अकसीर दवा; नींद माने दुखियोंको दुःख

भुलानेवाली, रोगियोंको रोग भुलानेवाली, दरिद्रियोंको दरिद्रता भुलानेवाली, पराधीनोंको पराधीनता भुलानेवाली, कैदियोंको कैदखाना भुलानेवाली, बड़ोंको झूठी बड़ाई भुलानेवाली, अपराधियोंका अपराध भुलानेवाली और ताजगी देनेवाली ईश्वरी बखशिश ।

नींद घटानेका उपाय ।

यों नींदके लिये दो प्रकारके मत हैं। इससे यह विषय अधिक विचारने योग्य है। हमें इस पर विशेष ध्यान देना चाहिये । ध्यान देनेसे विदित होता है कि नींदमें चाहे जितने दोष हों तो भी यह जिन्दगीसे बिलकुल दूर नहीं की जा सकती और नींदसे चाहे जितना लाभ हो तो भी बहुत अधिक सोनेके नियमको संसार स्वीकार नहीं कर सकता। इसलिये इन दोनोंके बीचका कोई रास्ता ढूँढ़ना चाहिये। उस पर विचार करनेसे यह मालूम देता है कि नींदका खुराक और आदतसे सम्बन्ध है। हम अगर अपना आहार सत्वगुणी रखें और मिताहारी रहें तो धीरे धीरे आपसे आप नींद कम होती जाती है । इसके बदले अगर रजोगुणी, तमोगुणी पदार्थोंका सेवन करें और हदसे अधिक खायँ तो बहुत अधिक नींद आती है। दूसरे नींदका बढ़ाना या घटाना अपनी आदत तथा इर्द गिर्दके संयोगों पर निर्भर है। हम चाहें तो नींदको घटा सकते हैं और चाहें तो बढ़ा सकते हैं। यद्यपि नींद कुदरती है तो भी उसे घटाना या बढ़ाना अपने हाथमें है। इसलिये जहाँ तक हो नींदको घटाना चाहिये क्योंकि अधिक सोनेसे जितना लाभ है उसके हिसाबसे कम सोनेसे बहुत अधिक लाभ है। इसलिये नींदको नियममें रखना

सीखना चाहिये। नींद नियममें कब आती है इसकी खबर आपको है? इसके लिये बुद्धिमान जन कहते हैं कि जब अपने सद्गुण खिलें और उनका जोर जमे तब नींद घटती है; क्योंकि नींद भोजन तथा टेवके आधार पर है और भोजन तथा टेव ज्ञान और सद्गुणपर मुनहसर हैं। अगर हृदयमें ज्ञान बैठा हो और सद्गुण खिले हों तो नींदको घटानेका मन करता है। जैसे—जो आदमी ज्ञानी होते हैं और अच्छे काम करनेमें लगे रहते हैं उनको यह पसन्द नहीं कि नींदमें अधिक समय जाय। जो आदमी चतुर होते हैं, प्रकृतिके नियम जानते हैं, आरोग्यताके नियम जानते हैं, धर्मशास्त्रके हुक्म जानते हैं, महात्माओंके उपदेश सुनते हैं और अपने अन्दरकी आवाज पर जोर देते हैं वे आदमी जानबूझकर अधिक नहीं खाते और अधिक न खानेसे अधिक नींद नहीं आती। इसी प्रकार जो सज्जन अच्छे कामोंमें लगे रहते हैं, मिताहारी होते हैं और अपने भाइयोंकी तथा प्रभुकी सेवामें लगे रहते हैं उन आदमियोंके साथी बहुत अच्छे आदमी होते हैं. क्योंकि ऐसे आदमी बुरी संगतमें नहीं रह सकते। इससे उनको सोये रहनेकी बुरी आदत नहीं पड़ती। वे जगे हुए हरिजनोंकी संगतमें ही रहते हैं, इससे उन्हें बहुत सोनेकी नहीं, बल्कि बहुत जागनेकी इच्छा होती है और ऐसा ही वे करते हैं। जब अनेक प्रकारके सद्गुण जमा हों तब नींद घट सकती है। जिनमें अनेक प्रकारके सद्गुण खिले हों वे सज्जन नींदको घटा सकते हैं और अपने वशमें रख सकते हैं।

जो नींदको नियममें रखता है उसका योग सिद्ध होता है।

समझना चाहिये कि जिस मनुष्यमें अनेक प्रकारके

सद्‌गुण आ गये हों, जिसे अच्छी आदत पड़ गयी हो और जो मिताहारी हो गया हो उस मनुष्यका योग सिद्ध होनेमें कुछ आश्चर्य नहीं है। यह बहुत सम्भव है। इसके लिये श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण भगवानने छठे अध्यायके सोलहवें तथा सत्रहवें श्लोकमें कहा है कि जो आदमी बहुत सोवे या बहुत जागे उसका योग नहीं सिद्ध होता, पर जो आदमी सोने और जागनेमें युक्त रहता है उसीका सब प्रकारका दुःख मिटानेवाला योग सिद्ध होता है।

युक्त निद्रा माने क्या ?

यह विषय बताते समय उक्त श्लोकमें प्रभुने युक्त शब्दका व्यवहार किया है। वह विशेष रूपसे विचारने योग्य है। भगवान जो कुछ कहते हैं उसमें एक विशेषता यह होती है कि वह थोड़ेमें बहुत रहस्य कह देते हैं। यहाँ युक्त शब्दमें भी वैसी ही बात है। जैसे—युक्त निद्रा माने जरूरत भर निद्रा; युक्त निद्रा माने शास्त्रकी आज्ञानुसार निद्रा; युक्त निद्रा माने ऐसी नींद जो शरीरको अधिक या कम न लगे; युक्त निद्रा माने देहको उसकी थकानके अन्दाजसे जितना विश्राम देना चाहिये उतनी निद्रा; युक्त निद्रा माने ऐसी नींद जिसमें खराब सपने न आवें तथा ओछे विचारोंमें मन न रमे; युक्त निद्रा माने ऐसी नींद जिसमें आत्मा अपनी सत्ताका ज्ञान न भूल जाय; युक्त निद्रा माने ऐसी नींद कि उस नींदमें भी कुछ उत्तम कार्य हो; युक्त निद्रा माने जीवको मायाकी उपाधिसे छुड़ानेवाली नींद; युक्त निद्रा माने इस जगतके संसारी आदमी जिस नींदमें सोते हैं उससे कुछ और ही तरहकी नींद; युक्त-निद्रा माने योग निद्रा; और युक्त निद्रा माने परमात्माको पानेकी

निद्रा। इस प्रकारकी नींद जब आती है तब सब प्रकारका दुःख नष्ट करनेवाला योग सिद्ध होता है।

युक्त जागरण माने क्या ?

बन्धुओ ! जैसे निद्राके लिये युक्त शब्दका प्रयोग किया है वैसे ही जागनेके लिये भी भगवानने युक्त शब्दका प्रयोग किया है। इसलिये हमें यह भी जानना चाहिये कि युक्त जागरण माने क्या। इसके लिये ज्ञानी लोग कहते हैं कि युक्त जागरण माने धर्मके नियमसे जागना; युक्त जागरण माने बुद्धिपूर्वक जागना; युक्त जागरण माने परमार्थमें जागना; युक्त जागरण माने सत्सङ्गमें जागना; युक्त जागरण माने जगतकी सेवामें जागना; युक्त जागरण माने प्रकृतिके छिपे भेद ढूँढ़नेमें जागना, युक्त जागरण माने आत्माके कल्याणके विचारोंमें जागना; युक्त जागरण माने सद्गुण चमकानेमें जागना; युक्त जागरण माने जगतका सौन्दर्य बढ़ानेमें जागना; युक्त जागरण माने अपने भाइयोंका सुख बढ़ानेमें जागना; युक्त जागरण माने पूर्ण पवित्रताकी दशामें जागना; युक्त जागरण माने जगतमें ईश्वरी स्नेह फैलानेके महान उत्तम काममें जागना; युक्त जागरण माने मनको वशमें रखनेके उपाय करनेमें जागना; युक्त जागरण माने प्रभुके साथ तार जोड़कर जागना; युक्त जागरण माने आत्माकी शक्तिमें जागना और युक्त जागरण माने प्रभुके कदम बकदम प्रकृतिके नादमें नाद मिलाकर और तालमें ताल मिलाकर चलना और उनके नियमोंमें मदद करना। ऐसी रीतिका जो जीवन हो उसको श्रीकृष्ण भगवानने युक्त जागरण कहा है। ऐसा युक्त जागरण जिसे आवे उसको अनन्तकालका दुःख दूर करनेवाला योग सिद्ध होता है।

नींद घटनेसे योग क्योंकर सिद्ध होता है ?

बन्धुओ ! नींदको नियममें रखनेसे तथा घटानेसे इतने बड़े बड़े फायदे होते हैं। जब बहुतसे सद्गुण खिलें, कई तरहकी आदत सुधरे और अनेक प्रकारके ऊँचे विचारोंमें रहा जाय तभी नींद घट सकती है। इसलिये अनुभवी जन कहते हैं कि भक्तोंकी जब ऊँची दशा होती है; ज्ञानी जब बहुत आगे बढ़ते हैं और योगी जब उत्तम कोटिमें चढ़ते हैं तब स्वभावतः उनकी नींद घट जाती है। उच्च उद्देश रखकर जो अपनी नींद घटाता है; योग साधनेके लिये जो अपनी नींद घटाता है; अपने मनको जीतनेके लिये तथा अपने विकारोंको रोकनेके लिये जो नींद घटाता है; आहार-विहारमें तथा काम-काजमें नियमसे रहकर तथा मिताहारसे सत्वगुणी पदार्थका सेवनकर जो अपने शरीरको सूक्ष्म प्रभाव ग्रहण करने योग्य बनाता है और उससे नींदको वशमें रखता है तथा परमार्थके लिये जो सदा नींदको वशमें रखता है उस भाग्यवान भक्तका कल्याण होता है और प्रभु उसको बड़ा पद देते हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

'नींदको जीतनेवाला' एक बड़ी पदवी है।

इस प्रकार नींदको जीतना एक बहुत बड़ी बात है। इस-लिये नींद जीतनेवाले अर्जुनको श्रीमद्भगवद्गीतामें श्रीकृष्ण भगवानने गुड़ाकेश अर्थात् 'नींदको जीतनेवाला' नामकी पदवी दी है। याद रहे कि यह पदवी ऐसी वैसी नहीं है। परंतप, धनञ्जय, महाबाहु, अनघ (निष्पाप) भरतर्षभ (भरत कुलमें श्रेष्ठ) कुरुश्रेष्ठ और पुरुषर्षभ (पुरुषोंमें श्रेष्ठ) आदि जो बड़े बड़े खिताब दिये हैं उनमें गुड़ाकेश यानी नींदको जीतनेवाला

भी एक बहुत बड़ा खिताब है। समझ लीजिये कि जो महाभाग्यशाली होता है उसीको भगवानकी ओरसे ऐसा बड़ा खिताब मिलता है। इसलिये हमें भी नींद घटाने तथा नींदको नियममें रखनेकी विशेष चेष्टा करनी चाहिये। नींदको जीतना छोटी बात नहीं है। इसके लिये प्रभुकी ओरसे एक बहुत बड़ी पदवी है। इसके सिवा इससे सब दुःख दूर करनेवाला योग सिद्ध होता है। इसलिये हमें नींदको वशमें रखना सीखना चाहिये।

नींद क्योंकर जीती जा सकती है ?

यह बात हमने जान ली कि नींदको अपने अधिकारमें रखना चाहिये और उसके जीतनेसे बहुत बड़ा लाभ होता है। अब यह जानना चाहिये कि हम आसानीसे नींदको जीत सकते हैं कि नहीं। अगर वह आसानीसे न जीती जा सके, अगर नींदको जीतना आत्माको नापसन्द हो, अगर नींदका जीतना शरीरके लिये नुकसान करता हो, अगर नींदका जीतना वैद्यकशास्त्रके नियमोंके विरुद्ध हो और अगर नींदका जीतना प्रकृतिके नियमविरुद्ध हो तो यह काम करनेमें अधिक कठिनाई पड़ेगी और तिस पर भी नहीं हो सकेगा। परन्तु याद रहे कि नींदको जीतनेमें ऐसी कोई अड़चल नहीं है। अगर किसी तरहकी खास कठिनाई होती तो प्रभु नींदको जीतनेकी आज्ञा ही न देते। वह परम कृपालु सच्चिदानन्द पिता परमात्मा भक्तों पर उतना ही भार देते हैं जितना उनसे उठ सके। न उठने योग्य बोझ वह कभी किसी पर नहीं रखते। इसके सिवा नींदको जीतनेसे योग सिद्ध होना उनकी खास कृपा है। क्योंकि मनको नींदकी ज़रूरत नहीं है,

बुद्धिको नींदकी जरूरत नहीं है, चित्तको नींदकी जरूरत नहीं है, अहङ्कारको नींदकी जरूरत नहीं है और आत्माको नींदकी जरूरत नहीं है। सिर्फ देहको थोड़ी सी नींदकी जरूरत है। परन्तु आजकल जो हम अघोरीसे बनकर पशुओंकी सी जड़निद्रामें पड़े रहते हैं वैसी नींदकी नहीं; बल्कि एक ऊँचे दर्जेकी नींदकी देहको कुछ जरूरत है। इसलिये हम आसानीसे नींदको जीत सकते हैं। हमारे पक्षमें बहुतेरे तत्त्व हैं और थोडी देर नींद चाहनेवाला एक शरीर ही है। इससे हम चाहें तो आसानीसे नींदको घटा सकते है और ऊँचे दर्जेकी नींद ले सकते हैं तथा इससे परमात्माको प्राप्त करनेका योग साध सकते हैं। इसलिये नींदको जीतनेकी कोशिश कीजिये, नींदको जीतनेकी कोशिश कीजिये।

आत्माको नींदकी जरूरत नहीं है।

बन्धुओ! मन तथा आत्माको नींदकी जरूरत नहीं है ऐसा कह देना ही बस नहीं है; क्योंकि इतने थोड़ेमें कह देनेसे सब लोग इसका असली अर्थ नहीं समझ सकते। इसलिये इसका खुलासा करना चाहिये।

शास्त्रोंमें कहा है कि हममें जो आत्मा है वह चैतन्यरूप है, वह निरंजन है, वह निराकार है, वह बड़ीसे बड़ी है, वह छोटीसे छोटी है, वह हथियारसे नहीं कटती, वह आगमें नहीं जलती, वह पानीमें नहीं सड़ती और हवासे नहीं सूखती। वह सदा रहनेवाली है, वह बिना क्रियाके है, वह बिना उपाधिके है; वह सत्स्वरूप है, वह ज्ञानस्वरूप है, वह आनन्द स्वरूप है और वह बिना जन्म मरणके है। वह बढ़ती नहीं, वह घटती नहीं और कभी उसमें किसी तरहका फेर-

बदल नहीं होता; वह सदा अपने निर्विकल्प शुद्ध स्वरूपमें ही रहती है।

बन्धुओ! विचार कीजिये कि ऐसी आत्मामें तमोगुणसे उत्पन्न हुई बेचारी निद्रा कैसे रह सकती है? नहीं रह सकती। इससे सिद्ध होता है कि आत्माको नींदकी जरूरत नहीं है।

मनको नींदकी जरूरत नहीं है।

आत्माको नींदकी जरूरत नहीं है यह जाननेके बाद यह जानना चाहिये कि मनको भी नींदकी जरूरत नहीं है। इसके प्रमाणमें श्रीकृष्ण भगवानने श्रीमद्भगवद्गीतामें कहा है कि—

नहि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्म्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म्म सर्वं प्रकृतिजैर्गुणैः॥

अ० ३ श्लो० ५

इस जगतकी कोई वस्तु या कोई प्राणी एक क्षण भी क्रिया किये बिना नहीं रह सकता। प्रकृतिसे उत्पन्न हुए गुणों द्वारा जो जो कर्म्म किये जाते हैं वे सब कर्म्म परवश होकर करने पड़ते हैं।

यह श्लोक कहकर प्रभु हमें यह समझाना चाहते हैं कि जगतके किसी पदार्थका कोई परमाणु एक क्षण भी बिना क्रिया किये नहीं रह सकता। जो वस्तु जड़से भी जड़ है और स्थिरसे भी स्थिर बनी रहती है उसमें भी स्वभावसे ही आपसे आप बहुत सूक्ष्म रीतिसे कुछ ऐसी क्रिया होती रहती है जो साफ साफ हमारी समझमें नहीं आती। हम जिसको मृत्यु कहते हैं, नाश कहते हैं और बिना प्राणकी वस्तु कहते हैं उसमें भी सदा कुछ न कुछ क्रिया हुआ ही करती है। यह

विचार कीजिये कि जब जगतकी जड़से जड़ और स्थिरसे स्थिर वस्तु भी बिना क्रियाके नहीं रह सकती तब चंचल स्वभाववाला मन बिना क्रियाके कैसे रह सकता है? मुर्देकी दशामें कैसे रह सकता है? और नींदकी हालतमें कैसे रह सकता है? मन कभी नहीं ऊँघ सकता। क्योंकि वह बड़ा ही चंचल और बड़ा ही बलवान है। इसके लिये अर्जुनने कहा है—

मनका स्वभाव।

चचल हि मन॰ कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।
तस्याह निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

अ॰ ६ श्लो॰ ३४

हे कृष्ण! मन चंचल है, हिलाडुला देनेवाला है, बलवान है और दृढ़ है। इससे जैसे वायुको रोकना बड़ा कठिन है वैसे मनको रोकना भी बड़ा कठिन है। ऐसा मेरा विश्वास है।

इससे भी आगे बढ़कर अर्जुनने कहा है कि—

एतस्याह न पश्यामि चंचलत्वात्स्थितिं स्थिरा।

अ॰ ६ श्लो॰ ३३

वह चंचल है इससे उसकी स्थिर दशा मुझे नहीं दिखाई देती। इसके उत्तर स्वय प्रभुको भी कहना पड़ा है कि

असंशय महाबाहो मनो दुर्निग्रह चलम्।
अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्यते॥

अ॰ ६ श्लो॰ ३५

हे बहुत बलवाले अर्जुन! मनको वशमें करना बड़ा कठिन है इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, परन्तु हे कुन्तीके पुत्र! अभ्यास और वैराग्यसे वह वशमें होता है।

बन्धुओ! मनको कुछ देर वशमें करना अर्थात् स्थिर रखना,

बिना संकल्पके रखना भी बड़ा मुश्किल है, यह बात प्रभु स्वीकार करते हैं परन्तु यह सोचकर कि इससे कहीं अर्जुन ढीला न पड़ जाय और अपने कर्त्तव्य-पालनसे मुँह न मोड़ ले, उसका उत्साह बढ़ानेके लिये इस एक ही श्लोकमें वे उसको दो प्रकारके विशेषण देते हैं और कहते हैं कि महा-तेजवाली, महाभक्तिवाली, महाबलवाली और बहुत सहने-वाली कुन्तीका तू पुत्र है और तू महाबाहु है अर्थात् तेरे हाथ बड़े बड़े हैं, जो न पकड़ाता हो उसको तू पकड़ सकता है और बहुत बलवाला है। तब तेरे लिये मनको वशमें करना कौन बड़ी बात है।

बन्धुओ! योग साधनेके लिये मनको स्थिर रखना चाहिये इसके लिये प्रभु अर्जुनको ऐसी ऐसी युक्तियोंसे समझाते हैं। जब ऐसे बड़े कामके लिये भी बहुत पुरुषार्थ करने पर भी मन स्थिर नहीं रह सकता तब नींद जैसी जड़तामें वह कैसे पड़ा रहेगा? और गाढ़ी निद्रामें कैसे सो जायगा? जरा विचार तो कीजिये। याद रखिये कि मन कभी स्थूल निद्रामें सोनेवाला नहीं है। उसकी बनावट ही ऐसी है कि उसको नींदकी जरूरत नहीं है और उसकी प्रकृति ऐसी है कि वह ऊँघ ही नहीं सकता। इसलिये फिरसे खूब अच्छी तरह समझ लीजिये कि हम आजकल अघोरीकी तरह जिस नींदमें सोते हैं उस नींदकी हमारे मन या आत्माको कुछ भी जरूरत नहीं है। ऐसा भ्रम कभी मत रखना कि हम मनको शान्ति देनेके लिये सोते हैं; बल्कि यही समझना कि हम निद्राका उद्देश, निद्राका स्वभाव और निद्राके नियम नहीं जानते इसीसे पशुओंकी सी नींदमें अपनी जिन्दगीका बड़ा भाग गँवा देते हैं। ऐसा न होने देनेके लिये सावधान हो जाइये।

देवता नहीं सोते।

सिर्फ यही नहीं कि आत्मा तथा मनको नींदकी जरूरत नहीं है, बल्कि सत्वगुणको नींदकी जरूरत नहीं है, ऊँची कोटियोंमें नींदकी जरूरत नहीं है और सूक्ष्म तत्वोंको नींदकी जरूरत नहीं है। इसीसे शास्त्रोंमें कहा है कि देवताओंको नींद नहीं आती, वे सदा जागते ही रहते हैं। इस विषयमें बड़े सिकन्दरका किस्सा जानने योग्य है। सिकन्दर बहुत बड़ा आदमी था, बड़ा पराक्रमी था और जहाँ जाता वहीं विजय पाता। यहाँ तक कि उसने दुनियाका तीन भाग जीत लिया था। वह यह समझता था कि मैं आदमी नहीं देवताका पुत्र हूँ क्योंकि आदमी देवताके ऐसा इतना बड़ा पराक्रम नहीं कर सकता। उसके साथी भी कहते कि तुम देवताके लड़के हो। इसके बाद देवताओंका चरित्र और चाल ढाल सुनने पर उसे खबर पड़ी कि देवताओंको विषय वासना नहीं होती और देवताओंको नींद नहीं आती परन्तु मुझमें तो ये दोनों बातें हैं। मुझे नींद भी आती है और मुझे विषयकी इच्छा भी होती है। इसलिये मैं देवता नहीं हूँ।

ये सब बातें जाननेके बाद भगवानके रास्तेमें आगे बढ़े हुए हरिजन समझ सकेंगे कि हमारी आत्मा या मनको नींदकी जरूरत नहीं है और देवता भी सदा जागते रहते हैं। हम जैसी नींदमें सोते हैं वैसी नींदमें वे तनिक नहीं सोते। महात्मा लोग भी जब नहीं रहा जाता तभी—तो भी बहुत थोड़ा—सोते हैं और योगकी ऊँची कोटियोंमें तथा भक्तोंकी ऊँची दशाओंमें स्वाभाविक तौर पर नींद बहुत घट जाती है। इसलिये हमें भी जैसे बने वैसे तमोगुणसे उत्पन्न जड़ निद्राको अपनी आत्माके कल्याणके लिये घटाना चाहिये।

थोड़ी सी नींद तो चाहिये ही; इसलिये नींदका सदुपयोग करना सीखना चाहिये।

बन्धुओ! ये सब बातें जान लेने पर भी जब तक देह है तब तक हमें कुछ देर तक तो सोना पड़ेगा ही, क्योंकि सोनेकी हमें आदत पड़ गयी है। हमारे मनमें पीढ़ी दर पीढ़ीसे इस प्रकारके संस्कार पड़ गये हैं और बचपनसे हम सोनेकी दशामें ही पले हैं। इसलिये यह सब एकदम नहीं बदल सकता; धीरे धीरे इसमें फेरबदल हो सकता है। दूसरे यह भी याद रखने योग्य है कि जब तक अधिक खुराक खायेंगे, व्यवहारी अज्ञानी आदमियोंकी संगतमें अधिक रहेंगे, मनमें पूरा वैराग्य नहीं आवेगा और किसी प्रकारके जगतके लोभमें तथा रजोगुण तमोगुणमें वृत्तियाँ भटकती रहेंगी तब तक नींद तो आया ही करेगी। जब तक ऐसी दशा रहेगी तब तक नींद हमारा पीछा नहीं छोड़ेगी। इसलिये हमें चाहिये कि नींदके समयका कुछ सदुपयोग करें और नींदमें भी कुछ काम करना सीखें। अगर ऐसा करना आवे तो हमें बहुत बड़ा फायदा हो।

क्या नींदमें काम किया जा सकता है?

यह बात सुनकर बहुत आदमी स्वभावतः पूछने लगेंगे कि क्या नींदमें काम किया जा सकता है? यह कैसे हो सकता है? नींद और कामसे क्या सम्बन्ध? अगर काम करना पड़े तो नींद कैसे कहलायगी? और अगर नींदमें काम हो तो वह नींद किस काम की? क्योंकि ये दोनों एक दूसरेके विरुद्ध हैं। अर्थात् नींद विश्रामके लिये है, शान्ति भोगनेके लिये है तथा ताजगी लेनेके लिये है। और काम करनेमें गर्मी है,

इसमें प्रवृत्ति है, उसमें थकान आती है और वह नींदसे बिलकुल जुदी हालत है। एक दूसरेसे विरुद्ध ये दोनों विषय निद्रामें कैसे हो सकते हैं? यह हमारी समझमें नहीं आता। बहुतेरे आदमियोंके जीमें ऐसे प्रश्न उठ सकते हैं और ऐसा होना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है। परन्तु इसके उत्तरमें निद्रावस्था, जाग्रत अवस्था, मनुष्यकी प्रकृतिका स्वभाव, मनका बल, इन्द्रियोंकी कारखाई, वृत्तियोंका स्वभाव, शरीरकी रचना और आत्माका बल इत्यादि अनेक विद्याओंके जाननेवाले अनुभवी विद्वान् बताते हैं कि—

नींदमें किस तरह काम किया जा सकता है।

जब हम सोते हैं तब हमारा शरीर शिथिल होता है; हमारी नसें तथा नाड़ियाँ शान्त होती हैं; हमारी साँस नियमित होती है; हमारी इन्द्रियाँ बाहर भटकनेसे रुककर अपने अपने दरबेमें शान्त बैठी रहती हैं; हमारा लहू नियमपूर्वक चलता है और मनकी बहुत सी वृत्तियाँ भी ठहरी हुई रहता है। क्योंकि जब नींद आती है तब बहुत सर्दी, बहुत गर्मी, बहुत तखड़ पखड, बहुत दौड़ धूप, बहुत ठंढक इत्यादि नहीं होती; बल्कि एक प्रकारका संयम होता है। इससे उस समय इन्द्रियाँ तथा वृत्तियाँ शान्त बनी रहती हैं। इसलिये निद्राकी अवस्थामें मन अधिक काम कर सकता है। क्योंकि उस समय उसको और किसी तरहकी अड़चल नहीं पड़ती। हम जब जाग्रत अवस्थामें होते हैं तब मनकी वृत्तियाँ जुदी जुदी इन्द्रियोंमें तथा जुदे जुदे कामोंमें जाती हैं। जैसे, जब आंखे रहते हैं तब कुछ देखनेका मन करता है, कुछ सुननेका मन करता है, कुछ सूँघनेका मन करता है, कहीं जानेका मन

करता है, किसीसे मिलनेका मन करता है, कुछ खानेका मन करता है, कुछ बाँचनेका मन करता है और कुछ विनोद करनेका मन करता है। इस प्रकार जुदे जुदे विषयोंमें मनका प्रवाह चला जाता है जिससे मनकी एकाग्रता तथा काम करनेकी शक्ति कम होती है। पर जब हम निद्राकी अवस्थामें होते हैं तब मनकी वृत्तियाँ इस तरह बाहर नहीं भटकतीं; इससे एक ही केन्द्रमें मनकी सारी शक्ति भरी रहती है जिससे उसमें अधिक बल होता है। अगर उस समय मन काम करना चाहे तो बहुत अधिक काम कर सकता है। क्योंकि उस समय वह स्वयं पूर्णतावाला होता है। दूसरा सुबीता यह है कि उस समय उसको बाहरकी ओर कोई अड़चल नहीं होती, इससे वह जाग्रत अवस्थाकी अपेक्षा निद्रावस्थामें अधिक काम कर सकता है।

निद्रावस्थामें मन अधिक काम कर सकता है।

जाग्रत अवस्थासे निद्रावस्थामें मन अधिक काम कर सकता है इसका दूसरा कारण यह है कि उस समय हमारी सूक्ष्म देह जागती रहती है, इससे सूक्ष्म मनको उसमें काम करना बहुत भाता है। दोनों सूक्ष्म तत्त्व मिलते हैं इससे उनको बड़ी बहार होती है। स्थूल देहमें और स्थूल अवस्थामें अर्थात् जाग्रत अवस्थामें मनकेकाम करनेमें कई तरहकी अड़चलें पड़ती हैं और जब वह अपनी बहुत शक्ति लगाता है तब थोड़ा सा काम होता है। क्योंकि देह जड़ है और जिन वस्तुओंके साथ जाग्रत अवस्थामें काम करना पड़ता है वे वस्तुएँ भी जड़ हैं; इससे जड़ वस्तुओंको चलानेमें मनको अधिक मिहनत पड़ती है। परन्तु निद्रावस्थामें सूक्ष्म

शरीरमें जो काम होता है वह काम स्थूल नहीं, सूक्ष्म होता है; इसके सिवा उस अवस्थामें जो काम होता है वह काम मानसिक होता है। और मानसिक काम करना मनका स्वभाव ही है, इससे उसमें उसको कुछ मुश्किल नहीं पड़ती बल्कि और मौज होती है। क्योंकि उसे जो भाता है वही उसे करना पड़ता है। इसलिये जाग्रत-अवस्थासे निद्रा-अवस्थामें मन अधिक काम कर सकता है।

नींदमें काम करनेसे शरीर या मनको कुछ नुकसान नहीं होता।

यह बात भी समझने योग्य है कि नींदमें काम करनेसे शरीर या मनको किसी तरहका नुकसान नहीं पहुँचता बल्कि मनकी शक्तियोंका अनुशीलन अच्छी तरह होता है। उसकी जड़ता घटती है और सूक्ष्म कोटिमें काम करनेकी आदत डालनेसे उसकी नयी नयी शक्तियाँ खिलती हैं और वे शक्तियाँ आत्माकी उन्नतिमें बहुत सहायता करती हैं। इसलिये जीमें यह खटका मत रखना कि नींदमें काम करनेसे मनको नुकसान होगा। जब नींद आती है तब भी मन नहीं सोता, वह तो सदा जागता ही रहता है और जागनेके साथ उसे कुछ काम चाहिये। अगर उसे कोई अच्छा काम न दें तो वह अपनी जिन्दगीमें बीती हुई घटनाओंके चित्रों तथा यादगारोंके साथ खेला करता है, और विचित्र सपने उपजाता है। इतना ही नहीं, वहाँसे धीरे धीरे अधिक खराबीमें उतरता जाता है और इससे चार दिन आगे पीछे अपनी खराबी होती है। ऐसा न होने देनेके लिये हमें नींदकी दशामें भी अपने मनको कुछ अच्छा काम करनेके लिये देना चाहिये।

नींदमें मनके अधिक काम कर सकनेका कारण ।

जाग्रत अवस्थासे निद्रावस्थामें मनके अधिक काम कर सकनेका यह भी एक कारण है कि जब स्थूल देह निद्रा अवस्थामें शान्त पड़ी हो तब मन उसमेंसे बाहर निकल सकता है और हम उसे जहाँ हुक्म दें वहाँ वह आसानीसे जा सकता है । इसमें उसको घरकी दीवारें, किलेकी दीवारें, अन्धकार, हवा या गर्मी आदि कोई चीज रुकावट नहीं डाल सकती । यहाँ तक कि देशकाल भी उसे नहीं रोकता । अर्थात् उसमें ऐसी शक्ति है कि वह चाहे जिस समय चाहे जिस देशमें जा सकता है । उसको समय भी नहीं रोकता, अर्थात् सैकड़ों वर्ष पहलेकी घटनाएँ भी वह उस दशामें जान सकता है । इतना ही नहीं, अगर किसी आदमीको सुधारना हो तो वह उसके मनमें जाकर असर डाल सकता है । इस प्रकारके कितने ही बड़े बड़े काम वह बड़ी आसानीसे स्वाभाविक तौर पर कर सकता है । कसर इतनी ही है कि हमने उसे शिक्षा नहीं दी है । अगर हम उसे ऐसी शिक्षा दें तो ये सब काम और इनसे भी बढ़कर कितने ही बड़े बड़े काम आसानीसे, बातकी बातमें हो सकते हैं ।

अब यह बात उठती है कि जब नींदमें इतना बड़ा काम होता है तब उस दशामें मनको पहुँचानेकी कुंजी हमें जानना चाहिये । इसमें कितने ही मनुष्योंको ऐसा मालूम देता है कि वह कुंजी बहुत मुश्किल होगी । परन्तु अनुभवी लोग कहते हैं कि वह कुंजी बहुत सहज है; क्योंकि जो कुछ करना है वह प्रकृतिके नियमके विरुद्ध होकर नहीं करना है, बल्कि उसके नियमके अनुसार करना है; मनके स्वभावके अनुसार करना

है और आत्माके बलके अनुसार करना है । इससे इन सब चीजोंकी स्वभावतः मदद मिलती है । इससे जो काम इस समय बड़ा कठिन मालूम देता है वह भी आसानीसे हो जाता है। नींदमें काम करनेमें हमें इस समय जो कठिनाई जान पड़ती है वह कठिनाई असलमें है नहीं; परन्तु हम नींदमें काम करनेके नियम नहीं जानते इसीसे कठिनाई जान पड़ती है और हमने नींदमें काम करनेकी आदत नहीं डाली है इससे कठिनाई जान पड़ती है । वह कठिनाई वास्तवमें है नहीं । सच बात यह है कि मनके बलसे जो जो काम किये जा सकते हैं, वे सब काम निद्रावस्थामें बहुत आसानीसे हो सकते हैं । इसलिये, नींदमें मानसिक शुभ काम करनेकी आदत डालिये । आदत डालिये ।

नींदमें अच्छा काम करनेकी रीति ।

सोनेका समय हो तो, परमात्माका नाम स्मरण करते समय सोना । गर्मीके दिन हों तो रातको नहानेके बाद सोना और जाड़ा हो तो हाथ, पैर तथ मुँह धोकर सोना । उस समय प्रभुका नामस्मरण छोड़कर और कोई खयाल मनमें न आने देना । अगर भजन गानेकी आदत हो तो सोनेसे पहले प्रभुके गुणगानके, अपनी फुर्सतके अनुसार, भजन गा लेना; इससे दूसरे ख्याल हट जाते हैं । इसके बाद नींदमें जो काम करनेका इरादा हो या जो काम सीखना हो या जिस विषयका खुलासा जानना हो उस विषयके विचार करना और हृदयसे प्रार्थना करना कि हे प्रभु! इस कामको पार लगानेकी कृपा कर । ऐसी प्रार्थना करनेके बाद अपने मनको मजबूतीसे हुक्म देना कि नींदमें इसीके अनुसार करना । यों बारंबार प्रस्तावके तौर पर अपने मनको कहना । फिर जो काम करना

हो उसीके विषयमें विचार करते करते उसी ख्यालमें मस्त होकर सो जाना। जैसे—कोई बात भूल गयी हो और उसे फिरसे याद करना हो तो ऐसा संकल्प करना कि यह भूला हुआ विषय मुझे नींदकी दशामें याद आ जाय। अगर कोई चीज याद न रहती हो तो सोते समय यह संकल्प करना कि यह पाठ मुझे याद रहे। अगर भक्तिमें जी न लगता हो तो सोते समय यह ठहराव करना कि ऐसा हो कि मेरा मन सदा भक्तिमें लगा रहे। अगर काम, क्रोध, लोभ आदि विकारोंमेंसे कोई विकार बहुत दुःख देता हो और बहुत परिश्रम करने पर भी न जाता हो तो रातको प्रभुसे यह प्रार्थना करना कि हे प्रभु! यह पाप मेरे मनसे निकाल डालनेकी कृपा कर और मनसे कहना कि फिर कभी ऐसा बुरा विचार हृदयमें मत आने देना। उस समय और कोई ख्याल मनमें न आने देना। अगर अपना लड़का, पति या मित्र अपनी सच्ची बात भी न मानता हो तथा किसी तरहके दुर्गुण वा व्यसनमें फँस गया हो और किसी तरह न समझता हो तो रातको सोते समय प्रभुसे प्रार्थना करना कि हे प्रभु! इसको सद्बुद्धि दे। यों वार-वार प्रार्थना करना और अपने मनको हुक्म देना कि तू इसके मनमें जा और मेरे इस शुभ विचारको इसके मनमें जमा। इस प्रकार मनको दृढ़तासे आज्ञा देना और उसी ख्यालमें सो जाना। बहुतेरे आदमी छोटी छोटी बातों पर बहुत अफसोस किया करते हैं; कितने ही आदमी बात बातमें डरा करते हैं; कितने ही आदमी आगे पीछेकी निकम्मी चिन्ता भरे विचार किया करते हैं; कितने ही आदमी पासमें बहुत धन होने पर भी, जीके न चाहनेसे उसका सदुपयोग नहीं कर सकते; कितने ही आदमियोंमें अनेक प्रकारका ज्ञान होता है

पर वे उसके अनुसार चल नहीं सकते और कितने ही आदमियोंमें कोई न कोई बड़ा दोष होता है वे उस दोषका मिटाना चाहते हैं तो भी आसानीसे नहीं मिटा सकते। ऐसे आदमी अपने उस मुख्य दोषको मिटानेके लिये रातको सोते समय भगवानसे प्रार्थना करें कि हे प्रभु! यह दोष मुझमेंसे दूर करनेकी कृपा कर। फिर अपने मनको हुक्म दें कि अबसे तू यह भूल छोड दे। छोड़ दे। छोड़ दे। इस प्रकार दृढतापूर्वक कहकर सो जायँ। कितने ही आदमियोंको कितनी ही बार किसी विषयमें बहुत आवश्यक शंका-समाधानकी जरूरत होती है परन्तु वह समाधान मित्रोंसे नहीं होता; वैद्य, वकील या ज्योतिषीसे नहीं हो सकता और न दूसरे किसी आदमीसे हो सकता; इससे वे बहुत परेशान रहते हैं। वे रातको सोते समय शुद्ध अन्तःकरणसे प्रार्थना करें कि हे प्रभु! इस प्रश्नका उत्तर देनेकी कृपा कर और मनको हुक्म दें कि तू नींदमें इसी ख्यालमें रमा करना और हृदयमें बहुत गहरे उतरकर इसका उत्तर प्राप्त करना। फिर इसी विचारमें सो जायँ। किसी आदमीको या उसके हित मित्रको कोई महारोग हुआ हो और वह असाध्य न होने पर भी मुद्दतसे न मिटना हो तो उस रोगके लिये वह रातको सोते समय भगवानसे प्रार्थना करे कि हे प्रभु! यह रोग मिटानेकी कृपा कर और फिर अपने ऊर्ध्व मनको हुक्म दे कि इस रोगको मिटा; चाहे इसकी दवा बता चाहे ऐसा कोई आदमी बता जो इस रोगको मिटा सके या ऐसा कोई मानसिक उपाय बता जिससे यह रोग मिट सके या तू अपनी शक्तिके बलसे स्वयं इस रोग को मिटा। चाहे जैसे हो शीघ्र आराम कर। इस प्रकार मनको हुक्म देकर इसी ख्यालमें सो जाय।

निद्रामें व्यवहारके काम भी हो सकते हैं।

इस प्रकार जो काम करना हो वह बहुत आसानीसे हो सकता है। निद्रामें ऐसे मानसिक काम हो सकते हैं। इतना ही नहीं घर गृहस्थीके छोटे छोटे काम भी हो सकते हैं। जैसे—कितनी ही स्त्रियाँ नींदमें उठकर अपने लड़कोंकी आँखोंमें काजल करती हैं और फिर जागती हैं तो काजलकी हुई आँखें देखकर आश्चर्य मानती हैं और सोचती हैं कि यह काम कोई देवी देवता या कुटुम्बके मरे हुए आदमी कर गये है। कोई स्त्री नींदमें उठकर आटा पीसती है और उसे इस बातका होश नहीं रहता। इससे सवेरे उठकर जब पिसा पिसाया आटा देखती है तो आश्चर्य मानती है और सोचती है कि कोई भूत प्रेत यह काम कर गया है। किसी आदमीको नींदमें चलनेकी आदत होती है इससे वह आँखें बन्द किये सोये सोये बहुत दूर तक चला जाता है और फिर अपनी जगह पर आकर सो जाता है परन्तु उसे नींदमें किये हुए अपने इस कामकी खबर नहीं होती। कोई आदमी नींदमें उठकर अपने दरवाजेकी सिटकनी खोल देता है और दूसरे कमरेमें घूमता फिरता है, फिर सिटकनी लगाना भूल जाता है। सवेरे उठता है तो भीतरसे किवाड़ खुला देखकर आश्चर्य मानता है कि सिटकनी किसने खोली? कोई कोई आदमी नींदमें चिट्ठी लिखते हैं, कविता बनाते हैं तथा लेख लिखते हैं और सवेरे उठकर जब अपना लिखा देखते हैं तो चकित होते हैं कि यह कैसे हुआ! यह हमने कब लिखा? हमें तो कुछ मालूम नहीं। यों वे बड़े सोचमें पड़ जाते हैं। इस प्रकार कितने ही तरहके गृहस्थीके काम भी नींदमें किये जा सकते

है और इसके कितने ही दृष्टान्त मौजूद हैं। परन्तु हम ऐसे मामूली कामोंमें नींदको लगानेके लिये नहीं कहते बल्कि यह समझाना चाहते हैं कि जीवन सुधारनेके काममें मानसिक बलसे लाभ उठाना चाहिये और यह लाभ उठानेके लिये इस समय व्यर्थ चली आती हुई निद्राका उपयोग करना चाहिये।

प्रार्थनाएँ स्वीकार करानेका उपाय।

यह बात जान लेने पर भी कितने ही आदमी सोचेंगे कि क्या ऐसा हो सकता है? क्या नींदमें ऐसे बड़े बड़े काम हो सकते हैं? क्या ऐसी प्रार्थनाएँ मंजूर होती हैं? और क्या मनको कहें कि ऐसा कर तो वह वैसा ही करेगा? अगर ऊर्ध्व मन यों हमारा हुक्म मान लिया करे तो फिर और चाहिये ही क्या? कितने ही आदमियोंके जीमें ऐसे ऐसे सवाल पैदा हो सकते हैं, इसमें कोई नयी बात नहीं है। इसका खुलासा जानना चाहिये।

हमारी जो प्रार्थनाएँ मंजूर होती हैं वे प्रार्थनाएँ कैसी होती हैं, कहाँसे होती हैं और कैसे होती हैं यह आप जानते हैं? अगर जानते हों तो उन प्रार्थनाओंके मंजूर होनेमें कुछ आश्चर्य नहीं मालूम होगा। परन्तु अफसोस यह है कि हम लोग न जानने योग्य दुनियादारीकी हजारों बातें जानते हैं लेकिन जिन्दगी सुधारनेवाली, संसारमें स्वर्गका अनुभव करानेवाली और मोक्ष दिलानेवाली विशेष रूपसे जानने योग्य कामकी बातें नहीं जानते। महात्मा लोग कहते हैं कि हमारी जो प्रार्थनाएँ ईश्वरके दरबारमें मंजूर होती हैं वे निजके स्वार्थकी या नीच उद्देशकी नहीं होतीं; बल्कि वे प्रार्थनाएँ मानसिक बल बढ़ानेकी होती हैं, परमार्थकी होती

हैं, ऊँचे उद्देशवाली होती हैं, आत्मिक बल विकसित करनेवाली होती हैं और प्रभुके रुचने योग्य उनकी इच्छानुसार होती हैं; इससे वे प्रार्थनाएँ जल्द मंजूर होती हैं। दूसरे ऐसी उत्तम प्रार्थनाएँ भी अगर ऊपरी मनसे की जायँ तो उनका कुछ मोल नहीं है। परन्तु वे प्रार्थनाएँ हृदयके भीतरसे की जाती हैं; पवित्रतासे की जाती हैं; आत्माका बल समझकर की जाती हैं; सच्ची दीनतासे तथा सब तरहके हथियार छोड़कर की जाती हैं; ऐसी दृढ़ श्रद्धासे की जाती हैं कि अवश्य फलीभूत होंगी; हृदयके उल्लाससे प्रेमपूर्वक की जाती हैं; प्रकृतिके विरुद्ध नहीं बल्कि उसके नियमके अनुसार की जाती हैं; आत्माके कल्याणके लिये की जाती हैं और प्रभुकी तथा प्रभुके बालकोंकी सेवा करनेके लिये की जाती हैं। इसलिये वे प्रार्थनाएँ सहजमें और जल्द मंजूर होती हैं।

अपने मनको किस प्रकार हुक्म देना चाहिये।

अपनी प्रार्थनाओंके मंजूर होनेके लिये जैसे इन सब बातोंको ध्यानमें रखनेकी जरूरत है वैसे ही निद्रामें काम करनेके लिये अपने मनको हुक्म देते समय भी कितनी ही बातें ध्यानमें रखना चाहिये। वे बातें ये हैं—

दूसरेके मनसे जो हुक्म दिया जाय उस हुक्मको मन नहीं मानता; ढीला-सीला रहकर जो हुक्म दिया जाय उस हुक्मको मन नहीं मानता; काम होगा कि नहीं मनमें ऐसा शक रखकर जो हुक्म दिया जाय उस हुक्मको मन नहीं मानता; रोते रोते या चिन्तातुर होकर जो हुक्म दिया जाय उस हुक्मको मन नहीं मानता; आत्माका बल समझे बिना जो हुक्म दिया जाय उस हुक्मको मन नहीं मानता; बिना

शुभेच्छा रखे तथा बिना वस्तुस्थिति समझे जो हुक्म दिया जाय उस हुक्मको मन नहीं मानता और बिना प्रभु प्रेमके, अपने मतलबके लिये जो हुक्म दिया जाय उसको मन नहीं मानता। जब हृदयके बलसे हुक्म दिया जाय; पूरे विश्वाससे दिया जाय; जगतका अस्तित्व भूलकर दिया जाय; ऊँचे उद्देशोंमें मस्त होकर दिया जाय; जगतकी सेवा करनेके लिये दिया जाय और प्रभुके पवित्र नामसे उसकी महिमा समझकर हुक्म दिया जाय तभी मन हुक्म मानता है और तभी कार्यकी सिद्धि होती है। इसलिये भाइयो और बहनो! अगर नींदमें काम करना हो और जिन्दगीको सेवाके उपयोगी बनाना हो तो इस तरहका हुक्म चलाना सीखिये, इस तरहका हुक्म चलाना सीखिये।

बन्धुओ! जब नींदमें कहा हुआ काम ऊर्ध्व मन करता है उस समय उस मनकी दशा कैसी होती है यह आपको मालूम है? उस समय मन बिलकुल एकाग्र हो जाता है; उस समय उसकी धाराएँ और किसी तरफ नहीं जातीं; उस समय व्यवहारकी और सब बातोंसे वह अपनी वृत्तियोंको खींच लेता है; उस समय वह एक ही मुख्य केन्द्रमें होता है; उस समय वह अपने पूरे बलसे अपने सपुर्द काममें लगा रहता है; उस समय वह कुछ अधिक गहराईमें उतर जाता है; उस समय उसमें कुछ खास नया बल आ जाता है; उस समय उसको वह काम करनेके सिवा और कुछ नहीं सूझता और उस समय वह अपने भीतरके हुक्मके ऐसा अधीन हो जाता है तथा उस हुक्मकी तामील करनेमें ऐसा तदाकार हो जाता है कि उसका ठीक ठीक ख्याल इस समय हमें नहीं हो सकता। मनकी ऐसी दशा होनेसे यह परिणाम होता है कि

भारी काम करनेका कठिनसे कठिन रास्ता भी उसे आसानी-से मिल जाता है और इस दशामें वह विचित्र चमत्कार कर सकता है। क्योंकि उस समय उसमें बाढ़ आयी रहती है; उसका सारा वेग एक ही तरफको होता है और वह बहुत गहराईमें उतर सकता है। इससे उसे रोकनेवाली सब बाधाएँ दूर हो जाती हैं और उसके सामने उस समय हृदयकी सृष्टि खुल जाती है, इससे वह ऐसे बड़े बड़े चमत्कार कर सकता है जिन पर इस समय हमें विश्वास नहीं हो सकता। जरा अधिक विचार कीजिये तो आपको भी भली भाँति विदित हो जायगा कि जो मन ऐसी दशामें पहुँच जाय उस मनका निद्रावस्थामें सौंपा हुआ काम कर देना कोई बड़ी बात नहीं है। इसलिये अगर निद्रावस्थामें भी शुभ काम करना हो तो मनको ऐसी एकाग्रताकी ऊँची दशामें ले जानेकी कोशिश कीजिये।

मन जब नींदमें काम करने लगता है उस समयकी उसकी पहली स्थिति।

जब इस प्रकार सच्चे बलसे, पूर्ण वेगसे, सच्चे उत्साहसे और गहरे प्रेमसे रातको सोते समय शुभ संकल्प करने लगें तब उन संकल्पोंके बलके अनुसार और अपने मनकी ग्रहण-शक्ति तथा उसकी योग्यताके अनुसार दो दिनमें, चार दिनमें आठ दिनमें, पन्द्रह दिनमें या १ महीनेमें कुछ सपना सा आता हुआ मालूम होने लगता है। जैसे ऐसा जान पड़ता है कि कुछ समाधान हुआ पर समझमें नहीं आया; कुछ मालूम तो हुआ पर क्या मालूम हुआ यह ठीक समझ नहीं पड़ा। इस प्रकार अस्पष्ट रीतिसे कुछ कुछ मालूम होने लगता है। क्योंकि

उस समय मनको और किसी तरहकी अड़चल बाधा नहीं देती; इससे जो हो गया है तथा जो होनेवाला है वह सब दिखाई देता है, सब सुनाई देता है और सब समझमें आता है। क्योंकि उस अवस्थामें उसके सामने देश और कालका भेद नहीं रहता इससे उसे अनेक प्रकारका ज्ञान हो जाता है। उस ज्ञानको बाहर निकालने तथा हमें बतानेके साधन इन्द्रियां हैं परन्तु इन्द्रियां सिर्फ एक पहलुका काम कर सकती है। जैसे—हमारी आंखें एक समय एक ही दिशाकी ओर देख सकती हैं; किन्तु मन उस समय दसो दिशाओंमें देख सकता है। इससे मन जितना देखता है उतना आंखें सम्हाल नहीं सकतीं। दूसरे, हमारी इन्द्रियाँ एक समय एक ही तरहका काम कर सकती हैं। जैसे—जिस घड़ी हम तदाकार होकर आँखोंसे कुछ देख रहे हों उस घड़ी तदाकार होकर सुन नहीं सकते। इसी तरह जिस घड़ी तदाकार होकर सुन रहे हों उस घड़ी तदाकार होकर सूंघ नहीं सकते। इस प्रकार हमारी इन्द्रियोंको अपना काम करनेके लिये अलग अलग समय दरकार है; कुछ एक ही समय सब इन्द्रियां जैसा चाहिये वैसा काम नहीं कर सकतीं। परन्तु हृदयमें गहरे पहुँचा हुआ ऊँची दशावाला मन एक ही समय सब इन्द्रियोंका काम देख सकता है; इससे मनका यह महा अनुभव इन्द्रियोंसे सम्हल नहीं सकता। इस कारण उस समय हमें ऐसा जान पड़ता है कि कुछ होता अवश्य है पर क्या होता है यह हम नहीं समझते। ऐसा होनेका कारण यह है कि मनको उस समय बड़ेसे बड़ा मेला देखनेको मिल जाता है जिससे वह बहुत सी चीजें देखनेमें लग जाता है और उन सबको हमारी अब तक संकीर्ण बनी हुई वृत्तियां ग्रहण नहीं कर सकतीं। इससे

निद्रामें इतना ही आभास होता है कि कुछ दिखाई देता है अवश्य; कुछ समझमें आता है अवश्य और कुछ जान पड़ता है अवश्य; पर वह सब क्या है यह बताना कठिन है क्योंकि कहना या समझाना हमें नहीं आता।

नींदमें काम करते हुए मनकी दूसरी स्थिति।

जब ऐसा हो तब मनको हुकम देना कि तू इन सब चीजोंके देखनेमें ही मत रह जा बल्कि मैंने जो काम तुझे सौंपा है उसी काम पर ध्यान दे, उसीका सामाधान कर। जब इस प्रकार वारंवार हुकम दीजियेगा तब थोड़े दिनमें वह वैसा ही करने लगेगा और आपके बताये हुए एक ही कामके पीछे लग जायगा। परन्तु ऐसा होने पर भी एक अड़चल पड़ेगी। वह यह कि आपका पूछा हुआ समाधान निद्रा अवस्थामें ठीक ठीक हो जायगा पर जब जागियेगा तब याद नहीं रहेगा। इसलिये मनको हुकम देना कि जो समाधान नींदमें होता है और जो दृश्य नींदमें दिखाई देता है, ऐसा कर कि, वह जागने पर याद रहे। इस प्रकार रातको सोते समय वारंवार मनको हुकम देना और उसी ख्यालमें सो जाना। तब कुछ दिनमें नींदकी घटनाएँ जाग्रत अवस्थामें भी याद रहने लगेंगी।

नींदमें काम करते हुए मनकी तीसरी स्थिति।

ये सब विषय जब सिद्ध होते हैं और इनमें मन बहुत आगे बढ़ जाता है तब कर्मयोगियोंको यह ख्याल होता है कि जब हम नींदसे जागते हैं तब वह दशा जाती रहती है। ऐसी उत्तम दशाका गायब हो जाना ठीक नहीं। इससे वे चाहते हैं कि रातको निद्रावस्थामें जब हम ऐसी दशामें पहुँचें तब

हम नींदमें रहकर ही जाग्रत हों और उन सब बातोंको नोट-बुकमें लिख लें। यह सब नींदमें ही हो और हमारे मनकी यह 'आन्तरिक' गहरी दशा मिट न जाय। तब वे इस तरहके संकल्प करते हैं और धीरे धीरे उनके ये संकल्प पूरे होते हैं। वे नींदमें ऊँचे दर्जेकी स्वप्नावस्था पाते हैं; मन मनचाहा समाधान कर देता है; उसमेंसे नोट करने योग्य बातोंको वे नोट कर लेते हैं और फिर भी नींदकी दशामें ही रहते हैं और जागने पर वे सब बातें ठीक ठीक याद रहती हैं। परन्तु यह बहुत ऊँची दशाका, बहुत अभ्यासका और बहुत परि-श्रमका फल है। अगर ऐसी दशा प्राप्त करनी हो तो ऊपर बताये नियमसे शुभ उद्देश रखकर उत्साह सहित लगे रहिये। आपके पुरुषार्थके अनुसार और आपकी भावनाके बलके अनुसार कृपालु ईश्वर आपको अवश्य सफलता देंगे।

मनको धीरे धीरे हुक्म देनेका कारण।

यह सब सुनकर शायद किसी ड्योढ़ी अकलवालेको यह सूझे कि इस तरह मनको एक एक करके क्यों हुक्म दिया जाय? सब हुक्म एक साथ ही दे दें तो क्या हर्ज है? इसके उत्तरमें जानना चाहिये कि आरम्भमें जब हम अपने मनको हुक्म देते हैं उस समय मन हमारे वशमें नहीं होता इससे वह हमारे बहुतसे हुक्म एक साथ नहीं मानता; परन्तु धीरे धीरे मुश्किलसे दो एक हुक्म मानने लगता है और उसमें भी पहले आधा टुकड़ा ही मानता है। ऐसे समय अगर एकदम सब हुक्म साथ ही दे दें तो वह कुछ न कर सके बल्कि उल्टे बिचक जाय। इसके सिवा हम जो हुक्म करते हैं उसे करनेके लिये उस समय मनकी शक्ति भी खिली हुई नहीं होती। इससे

मन हमारे सब हुक्मोंकी ठीक ठीक तामील उस समय नहीं कर सकता। इसलिये क्रम क्रमसे उस पर हुक्म करना चाहिये और सीढ़ी सीढ़ी उसे ऊपर चढ़ाना चाहिये। ऐसा करें तो वह आसानीसे वशमें हो जाता है और अगर उस पर एकदम सब बोझ लाद दें तो उससे कुछ नहीं हो सकता। इसलिये धीरे धीरे और क्रम क्रमसे आगे बढ़नेकी टेव डालनी चाहिये। यही सफलता पानेका उचित मार्ग है।

नींदमें काम करनेमें सफलता पानेकी सम्भावना कितनी है ?

भाइयो! अगर इस तरह विधिपूर्वक क्रम क्रमसे काम करना आवे और ईश्वर-प्रार्थनाका बल रखकर मनको हुक्म देना आवे तो नींदमें कितने ही बड़े बड़े काम किये जा सकते हैं और रुपयेमें पन्द्रह आने सफलताकी सम्भावना है। सिर्फ एक आनेकी कसर रह सकती है और वह भी अपनी ही भूलके कारण, अपने ही स्वार्थके कारण, प्रकृतिके नियम न समझ सकनेके कारण और हम थोडा मांगते हों और वह अधिक देना चाहता है इस कारणसे रुपयेमें एक आनेकी गड़बड़ होती है। बन्धुओ! नींदकी नींद और कामका काम; यहाँ तक कि बड़े २ काम किये जा सकते हैं। इसलिये नींदका ऐसा सदुपयोग करनेकी कोशिश कीजिये। कोशिश कीजिये।

नींदमें काम करनेसे शरीरको नुकसान नहीं पहुँचता बल्कि बहुत फायदा होता है।

कोई आदमी इस बातका जरा भी भय न रखे कि इस प्रकार नींदमें काम करनेसे शरीर बिगड़ेगा क्योंकि जिस समय मन एकाग्र अवस्थामें और हृदयकी तहमें रहता है उस

समस्त कर्मेन्द्रियां बहुत शान्त होती हैं और शरीर भी इतना शांत और ऐसी मीठी नींदमें रहता है कि वैसी गहरी नींद और कभी उसे नहीं मिलती। मन जितना चंचल रहता है शरीरकी रगड़ उतनी अधिक होती है और मन जितना शान्त रहता है शरीरको उतना ही अधिक आराम रहता है। और नींदकी इस स्थितिमें मन बहुत एकाग्र दशामें और बहुत गहराईमें रहता है, इससे उस समय शरीर और इन्द्रियोंको बहुत आराम होता है। इसके सिवा लगभग मूर्छा अवस्था सी शरीरकी दशा होती है। इसलिये यह भय कभी मत करना कि नींदमें काम करनेसे शरीरको नुकसान पहुँचेगा, बल्कि यह विश्वास रखना कि इस दशामें रहनेसे शरीरको बड़ा फायदा होता है।

नींदमें काम करनेसे मनको नुकसान नहीं पहुंचता बल्कि विशेष लाभ होता है।

नींदमें काम करनेसे जैसे शरीरको नुकसान नहीं होता, उल्टे फायदा होता है वैसे ही मनको भी कुछ नुकसान नहीं पहुँचता उल्टे बहुत लाभ होता है। बहुत लोग यह सोच सकते हैं कि एक तो मनको दिनमें काम करना पड़ता है, फिर जो समय उसके विश्राम लेनेका है उस समय भी उसे काम करना पड़े तो वह बिना थके कैसे रहेगा? और उसको कैसे नहीं नुकसान होगा? इसके जवाबमें जानना चाहिये कि मनको वैसे विश्रामकी जरूरत नहीं है जैसा कि साधारण लोग समझते हैं और वह ऐसा विश्राम लेता ही नहीं; वरंच उसे अच्छे कामोंमें न लगावें तो वह नींदके समय अगली पिछली निकम्मी घटनाओंमें रमा करता है और उल्टे दिन पर

दिन खराब होता जाता है। इससे बचनेके लिये नींदके समय अवश्य उसे अच्छे विचारोंमें लगा रखना चाहिये। मनको विश्रामकी जरूरत नहीं है। अगर उसे किसी तरहके विश्रामकी जरूरत है तो एकाग्रताकी ही जरूरत है और नींदमें काम करते समय मन एकाग्रताकी दशामें जाता है। इसलिये उसको कुछ काम न सौंपनेसे जितना विश्राम मिलता है उससे अधिक विश्राम उसको नींदमें अच्छा काम सौंपनेसे मिलता है क्योंकि वह जगह जगह भटकनेसे रुकता है और एक जगह बैठता है। इससे भटकनेकी अपेक्षा अधिक शान्ति में रह सकता है। इसके सिवा जब मन नींदमें काम करता है उस समय वह हृदयकी गहराईमें उतर जाता है; उस समय वह बाहरकी उपाधियोंसे मुक्त हो जाता है; उस समय वह आत्माके नजदीक पहुँच जाता है और उस समय वह स्थूल देह तथा इन्द्रियोंकी वासनाओंसे छूट जाता है और एकाग्र होता है इससे उसमें कुछ विशेष अद्भुत बल आ जाता है तथा उस समय गहराईमें उतरनेसे आत्माका प्रकाश मनको मिल जाता है। इससे वह नया उत्साह और नयी उमंग लेकर बाहर निकलता है जिससे उसमें नया बल, नया जोश नयी बिजली और नयी शक्ति आ जाती है। इसलिये ऐसा कभी मत समझना कि नींदमें काम करनेसे मनको नुकसान पहुँचता है, बल्कि यह विश्वास रखना कि उसको विशेष लाभ होता है।

महात्माओंकी सोते समयकी भावना।

बन्धुओ! जिनको व्यवहारका मोह है, जिनकी आध्यात्मिक शक्तियाँ खिली हुई नहीं हैं और जिनको प्रभुके रास्तेमें थोड़ा थोड़ा आगे बढ़नेकी इच्छा है वे हरिजन ऊपर कहे

कामोंमें निद्राका उपयोग करते हैं। परन्तु इनसे जो आगे बढ़े हुए हैं वे ज्ञानी भक्त निद्राका इससे अच्छा उपयोग करते हैं और वे नींदके समय ऐसी भावना रखकर सोते हैं कि अनन्त ब्रह्माण्डके नाथसे हमारा सम्बन्ध है, प्रभुके साथ हमारा तार लगा हुआ है, हम उसमें हैं, उस अविनाशी परमात्माके हम अंश हैं और हम हर घडी उसकी कृपामें हैं। इसलिये हमें रोग न हो, हमें शोक न हो, हमें दुःख न हो और हमें विकार न हो। बल्कि हममें उसके सद्गुण ही हों; हममें उसका स्नेह ही हो, हममें उसका ज्ञान ही हो; हममें उसका प्रकाश ही हो; हममें उसका आनन्द ही हो और वही हमें मिले, वही हमें मिले।

ऐसी भावनाएँ सिद्ध करनेमें वे अपनी निद्राका उपयोग करते हैं और फिर जब शोकसे—दुःखसे छूट जाते हैं तथा आनन्दस्वरूप बन जाते हैं, तब अभेदभावसे यही भावना रखते हैं कि हमारी आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप है। यह समझकर वे शिवोहं शिवोहं शिवोहं की भावना सिद्ध करनेमें निद्राका उपयोग करते हैं। परम कृपालु पवित्र पिता परमात्माकी कृपासे उनका यह अभेद भाव सिद्ध होता है और अन्तको वे सच्चिदानन्द स्वरूपमें लीन हो जाते हैं।

बन्धुओ! निद्रा जैसी बेखबरीकी दशामें भी महात्माजन ऐसी अनमोल सार्थकता कर लेते हैं। अतएव ऐसी सार्थकता करनेकी कोशिश कीजिये, कोशिश कीजिये।

ॐ

शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

जय सच्चिदानन्द।

अनुक्रमणिका।